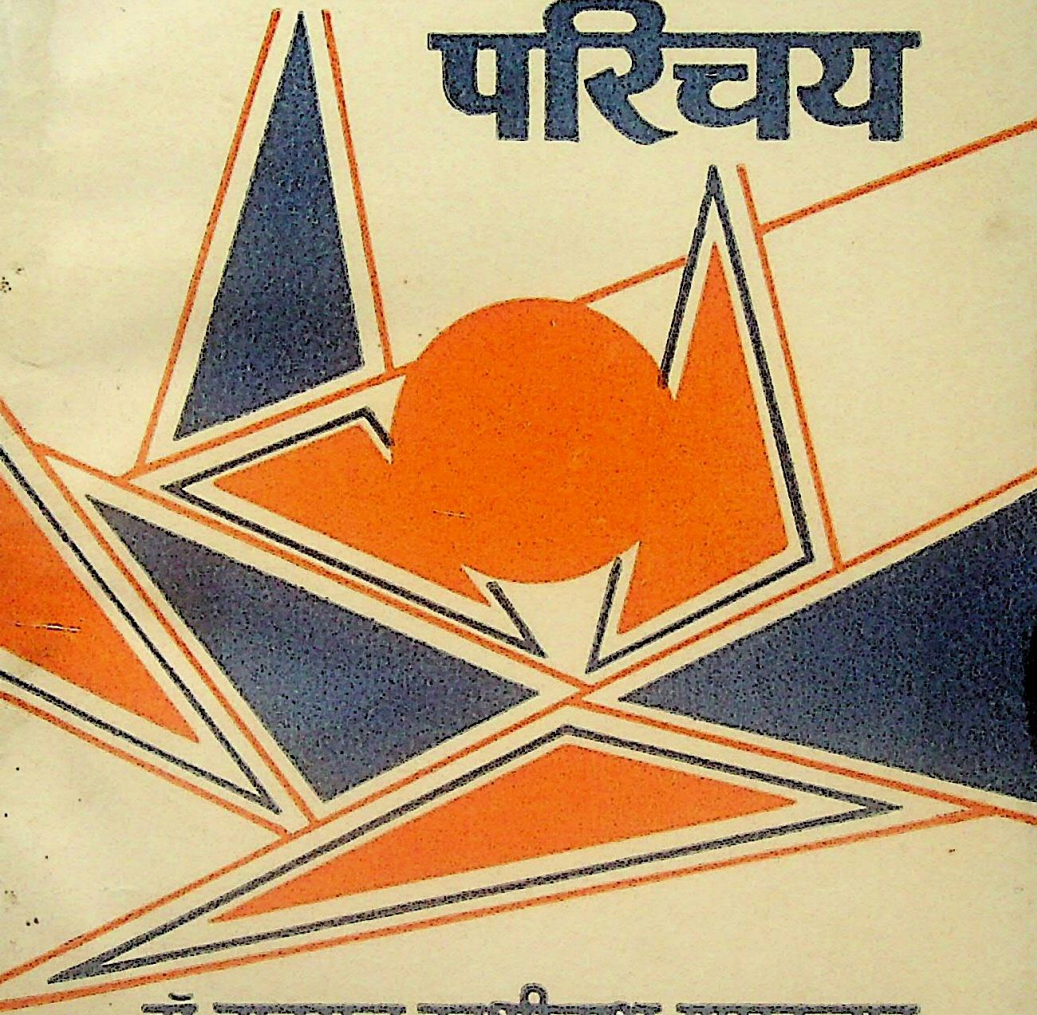
हिन्दी भाषा विज्ञान परिचय



डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़

हिन्दी भाषाविज्ञान परिचय

लेखक
डॉ० ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़
रीडर एवं अध्यक्ष
स्नातक तथा स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी
सोलापुर (महाराष्ट्र)

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–2
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–3

© लेखक

प्रथम संस्करण : 1995

मूल्य : 30.00

ISBN-81-7457-027-6

कम्पोजिंग : नवीन कम्पोजिंग हाउस, आगरा
मुद्रक : रवि मुद्रणालय, आगरा–2

अर्पण

आदरणीय ससुरजी विनायक उद्धव शिवशरण

और

आदरणीया सासुजी सौ. हिराबाई वि. शिवशरण

को

—डॉ० ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़

कथनीय

स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं के हिन्दी पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में 'भाषाविज्ञान' का अध्यापन तथा अध्ययन होता है, जिससे मैं एक प्राध्यापक के रूप में अच्छी तरह परिचित हूँ। इस संदर्भ में मैं कुछ कठिनाइयों से भी परिचित हो गया हूँ।

प्राध्यापकों तथा छात्रों को भाषाविज्ञान के विविध विषयों से सुव्यवस्थित रीति से तथा सरलता से परिचित कराने के उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने 'हिन्दी भाषा-विज्ञान परिचय' नामक प्रस्तुत पुस्तक का निर्माण निर्धारपूर्वक किया है। मेरा निर्धार सफल होने के लिए मुझे उत्साही रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य मेरी धर्मपत्नी सौ० लता उर्फ़ लतिका ने और प्रिय सुपुत्र राहुल, उज्ज्वल तथा सुनीतकुमार ने किया है।

भाषाविज्ञान के विवेचन में हिन्दी भाषा की ध्वनियों, हिन्दी पद-रचना (रूप-रचना), हिन्दी वाक्य-रचना, हिन्दी शब्दों की अर्थ-स्थिति, हिन्दी शब्द और हिन्दी भाषा के लेखन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली देवनागरी लिपि का ही आधार लिया जाता है। इसलिए मैंने अपनी भाषाविज्ञान की पुस्तक का नाम रखा है—'हिन्दी भाषाविज्ञान परिचय'।

प्रस्तुत पुस्तक में जो विषय-विवेचन हुआ है, उसके लिए हिन्दी के संस्मरणीय भाषाविज्ञान वेत्ता डॉ० भोलानाथ तिवारी का ग्रन्थ 'भाषाविज्ञान' बहुत सहायक बनकर रहा। साथ ही डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा लिखित 'भाषाविज्ञान की भूमिका,' डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' लिखित 'भाषाविज्ञान सिद्धान्त और प्रयोग,' डॉ० मनमोहन गौतम लिखित 'हिन्दी भाषाविज्ञान' और डॉ० सुरेशचन्द्र त्रिवेदी लिखित 'संक्षिप्त भाषाविज्ञान' से भी उपयोगी सहायता मिली है। इन सब भाषावैज्ञानिकों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

मेरा विश्वास है कि मेरी पुस्तक 'हिन्दी भाषाविज्ञान परिचय' पढ़ाने वालों तथा पढ़ने वालों को अवश्य सहायक सिद्ध होगी। प्रकाशक रवि अग्रवाल जी के विनोद पुस्तक मन्दिर, इस सुविख्यात प्रकाशन ने प्रस्तुत पुस्तक उत्कृष्ट रीति से प्रकाशित कर मुझे अनुगृहीत किया है।

रीडर एवं अध्यक्ष,
स्नातक तथा स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी.
3 जून 1994

—डॉ० ज्ञानराज काशीनाथ
गायकवाड़

विषय-सूची

अध्याय

पृष्ठ

1—भाषा और भाषाविज्ञान 1–52

1. भाषा की परिभाषा और उसका स्वरूप 1, 2. भाषा के लक्षण और उसकी प्रकृति 5, 3. भाषा की उत्पत्ति और विविध वाद या सिद्धान्त 10, 4. भाषा के विविध रूप 20. 1. भाषा (मूल भाषा या सामान्य भाषा 21, 2. व्यक्तिबोली 22, 3. उपबोली या स्थानीय बोली 22, 4. बोली 22, 5. उपभाषा 25, 6. परिनिष्ठित भाषा 27, 7. राज्यभाषा 28, 8. राज-भाषा 29, 9. राष्ट्रभाषा 30, 10. भाषा एक और रूप अनेक 32, 5. भाषा-परिवर्तन (भाषा-विकास) के कारण 33, 6. भाषाविज्ञान की परिभाषा तथा उसके प्रकार 34, भाषाविज्ञान विज्ञान है या कला ? 38, 8. भाषाविज्ञान के अध्ययन से लाभ 40, 9. अन्य ज्ञान-विज्ञान से भाषाविज्ञान का सम्बन्ध 42, 10. भाषाविज्ञान के अंग (भाषाविज्ञान के अध्ययन के विभाग) 49।

2—ध्वनि-विज्ञान 53–103

1. ध्वनि 53, 2. भाषा-ध्वनि 53, 3. ध्वनिग्राम 54, 4. संध्वनि 56, 5. ध्वनि-यंत्र (सचित्र परिचय) 57, 6 ध्वनियों का वर्गीकरण—(प) स्वर-वर्गीकरण और उसके आधार 63, (फ) व्यंजन-वर्गीकरण और उसके आधार 67, 7. ध्वनि-गुण— 1. मात्रा 73, 2. आघात 76, 8. ध्वनि-परिवर्तन के कारण 79, 9. ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ 85, 10. अक्षर 90, 11. ध्वनि-नियम 92, 1. ग्रिम नियम 93, 2. ग्रेसमैन नियम, 95, 3. वर्नर नियम 96, 12. स्वनिमविज्ञान (ध्वनि ग्राम विज्ञान) 97।

3—पद-विज्ञान (रूप-विज्ञान) 104–130

1. पद की परिभाषा 104, 2. अर्थ तत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व का परस्पर सम्बन्ध 105, 3. सम्बन्ध तत्त्व के प्रकार 110,

अध्याय पृष्ठ

4. अर्थ तत्त्व के साथ सम्बन्ध तत्त्व के कार्य 115, 5. पद-परिवर्तन के कारण 121, 6. पद-परिवर्तन की दिशाएँ 123, 7. रूपिमविज्ञान या रूपग्रामविज्ञान 125. 1. रूप और रूपिम 126, 2. रूपिम का वर्गीकरण 128, 3. उपरूप या संरूप 129।

4—वाक्य-विज्ञान 131–151

1. वाक्य की परिभाषा 131, 2. वाक्य में पद-विन्यास की विशेषताएँ 134, 3. वाक्य के प्रकार 138, 4. वाक्य-परिवर्तन के कारण 143, 5. वाक्य-परिवर्तन की दिशाएँ 147, 6. वाक्य सम्बन्धी रचना के प्रकार 148, 7. वाक्य के निकटस्थ अवयव 150।

5—अर्थ-विज्ञान 152–169

1. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध 152, 2. अर्थ-परिवर्तन के कारण 154, 3. अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ 161, 1. अर्थ-विस्तार की दिशा 162, 2. अर्थ-संकोच की दिशा 163, 3. अर्थादेश की दिशा 165, 4. अर्थोत्कर्ष की दिशा 165, 5. अर्थापकर्ष की दिशा 166, 4. बौद्धिक नियम 167।

6—शब्द-विज्ञान 170–181

1. शब्द की परिभाषा 170, 2. शब्दों का वर्गीकरण 171, 3. शब्द-समूह 174, 4. नवीन शब्दों का स्रोत 176, 5. कोश-विज्ञान 178, 6. व्युत्पत्तिशास्त्र 180, 7. नाम विज्ञान 181।

7—लिपि-विकास-क्रम 182–199

1. लिपियों के माध्यम से लिपि का विकास-क्रम 182, 2. भारतीय लिपियाँ 187, 1. खरोष्ठी लिपि 187, 2. ब्राह्मी लिपि 189, 3. नागरी लिपि (देवनागरी लिपि 193, 4. देवनागरी लिपि की विशेषताएँ 194, 5. देवनागरी की वैज्ञानिकता 195, 6. देवनागरी लिपि के दोषों का सुधार 197।

1

भाषा और भाषा विज्ञान

1. भाषा की परिभाषा और उसका स्वरूप

भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा के वैज्ञानिक स्वरूप का विश्लेषण करने के लिए भाषा की वही परिभाषा महत्वपूर्ण होती है, जो भाषा विज्ञान के वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुकूल होती है। अतएव भाषा विज्ञान के वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुकूल भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"भाषा, मनुष्य के ध्वनि-यन्त्र से सम्बन्धित उच्चारण अवयवों से उच्चारित, यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों के समूह की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से एक भाषा समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

प्रस्तुत भाषा की परिभाषा भाषा विज्ञान के वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुकूल होने के कारण वह अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भाव्यता इन दोनों से मुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा के वैज्ञानिक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए भाषा की इस परिभाषा में भाषा के विषय में उतना ही कहा गया है, जितना अत्यावश्यक है। साथ ही भाषा के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह वस्तुनिष्ठ है। इसलिए भाषा की प्रस्तुत परिभाषा से भाषा की ऐसी निम्नलिखित विशेषताएँ सूचित होती हैं, जिनसे 'भाषा का वैज्ञानिक स्वरूप' अपने आप स्पष्ट हो जाता है।

(1) भाषा ध्वनिमयी होती है—भाषा विज्ञान अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर और वस्तुनिष्ठ प्रमाणों के आधार पर उस भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करता है, जो मनुष्य के ध्वनि-यंत्र से सम्बन्धित उच्चारण-अवयवों से उच्चारित ध्वनियों के रूप में अस्तित्व में आ जाती है। इसका अर्थ यह है कि भाषा विशिष्ट ध्वनियों के मूलभूत आधार पर 'ध्वनिमयी' बनी रहती है और सभी प्रकार की अन्य ध्वनियों से अर्थात् अन्य आवाजों से मुक्त रहती है, चाहे वह मनुष्य की अन्य प्रकार की आवाज हो, चाहे पशु की आवाज हो, चाहे पक्षी की आवाज हो, चाहे वाद्य की आवाज हो, चाहे यन्त्र की आवाज हो, चाहे अन्य किसी भी प्रकार की आवाज हो। भाषा विज्ञान की मान्यता के अनुसार तो वही भाषा है, जो मनुष्य के ध्वनि-यन्त्र से सम्बन्धित उच्चारण-अवयवों से उच्चारित ध्वनियों के मूलभूत आधार

पर 'ध्वनिमयी' बनी रही है। इस कारण से ही भाषा विज्ञान अपने वैज्ञानिक दृष्टि-कोण के आधार पर 'ध्वनिमयी भाषा' का अध्ययन और विश्लेषण करने में सफल हो जाता है।

(2) **भाषा का ध्वनिमय रूप ध्वनि प्रतीकों पर आधारित होता है**—मनुष्य के ध्वनि यन्त्र से सम्बन्धित उच्चारण-अवयवों से उच्चारित ध्वनियाँ ध्वनि प्रतीकों के रूप में हो जाती हैं। इस कारण से ही हिन्दी भाषा की ध्वनियाँ ध्वनि प्रतीकों के रूप में ही प्रचलित हुई हैं। इससे ज्ञात होता है कि मनुष्य जैसे-जैसे अपने ध्वनि-यन्त्र से सम्बन्धित उच्चारण अवयवों से नयी-नयी ध्वनियों का उच्चारण करने लगा होगा, वैसे-वैसे उसने उन सभी ध्वनियों को ध्वनि प्रतीकों के रूप में स्वीकार किया होगा। इसलिए ही हिन्दी भाषा की सभी ध्वनियों को ध्वनि प्रतीकों के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

भाषा विज्ञान अपने ध्वनि-विज्ञान के माध्यम से मनुष्य के ध्वनि-यन्त्र से सम्बन्धित स्वर-यन्त्र, स्वर-तन्त्री, काकल, अभिकाकल, कंठ, अलिजिव्ह, कोमल तालु, मूर्धा, कठोर तालु, वर्त्स, जिह्वा तथा उसके विविध भाग, दाँत और ओठ इन उच्चारण-अवयवों का अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत करता है और यह भी स्पष्ट करता है कि प्रश्वासरूपी हवा के सहयोग से मुख-विवर में ये उच्चारण-अवयव भाषा की उन ध्वनियों को उत्पन्न करते हैं, जिन्हें ध्वनि प्रतीकों के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप ही हिन्दी भाषा की 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' इन स्वर-ध्वनियों को तथा 'क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, ट् ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब् भ, म्, य्, र्, ल्, व्, श्, स्, ह्' इन व्यंजन-ध्वनियों को अलग-अलग और स्वतन्त्र 'ध्वनि-प्रतीक' के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका अर्थ यह है कि भाषा का ध्वनिमय रूप ध्वनि प्रतीकों पर ही आधारित होता है और प्रत्येक ध्वनि प्रतीक दूसरे ध्वनि प्रतीक से अलग और स्वतन्त्र होता है।

(3) **भाषा के ध्वनि प्रतीक यादृच्छिक होते हैं**—वास्तव में भाषा का प्रयोग जिस एक भाषा-समाज में होता है, वही अपनी व्यापक सामूहिक इच्छा के अनुसार अपनी भाषा की ध्वनियों को अलग तथा स्वतन्त्र 'ध्वनि प्रतीकों' के रूप में मान्यता देता है और अपने भाषा व्यवहार में उन ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग करता है जिससे वे ध्वनि प्रतीक ही रूढ़ तथा प्रचलित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप प्रायः प्रत्येक भाषा समाज के भाषा-व्यवहार में अपनी-अपनी इच्छा तथा मान्यता के अनुसार अपनी-अपनी भाषा की ध्वनियों का प्रयोग अलग-अलग ध्वनि प्रतीकों के रूप में होता है। इसलिए ही प्रत्येक भाषा के ध्वनि प्रतीक अलग और स्वतन्त्र होते हैं। हिन्दी भाषा के जो ध्वनि प्रतीक हैं उससे भिन्न अंग्रेजी भाषा के ध्वनि प्रतीक हैं, जो 'ए' से लेकर 'जेड' तक हैं। इसका अर्थ यह है कि भाषा के ध्वनि प्रतीक यादृच्छिक ही होते हैं।

(4) **भाषा के ध्वनि प्रतीकों के समूह भी यादृच्छिक होते हैं**—एक भाषा समाज में जो भाषा-व्यवहार होता है, वह अलग-अलग ध्वनि प्रतीक के रूप में होने

के बदले किसी स्वीकृत व्यवस्था के आधार पर ध्वनि प्रतीकों के समूह अर्थात् शब्द के रूप में होता है। इसका कारण यह है कि ध्वनि प्रतीकों के प्रत्येक समूह में अर्थात् प्रत्येक शब्द में एक विशिष्ट अर्थ की स्थापना हुई रहती है। विशिष्ट शब्द अर्थात् विशिष्ट ध्वनि प्रतीकों का समूह और अर्थ का सम्बन्ध सहजात, स्वाभाविक या नियमित नहीं होता, वह तो 'यादृच्छिक' अथवा 'माना हुआ' होता है। इसके लिए एक भाषा-समाज अपनी इच्छा या मान्यता के अनुसार विशिष्ट अर्थ की स्थापना के लिए विशिष्ट शब्द अर्थात् विशिष्ट ध्वनि प्रतीकों के समूह को प्रचलित करता है। इसका अर्थ यह है कि विशिष्ट अर्थों के लिए भाषा के ध्वनि प्रतीकों के समूह भी यादृच्छिक होते हैं, जैसे हिन्दी भाषा में पीने के लिए उपयोग में आने वाले एक तरल द्रव के अर्थ में 'पानी' इस शब्द को अर्थात् 'प्+आ+न्+ई' इस ध्वनि प्रतीकों के समूह को मान्यता दी गई है। विशिष्ट अर्थ के लिए 'पानी' शब्द में आरम्भ से अन्त तक ध्वनि प्रतीकों के जिस विशिष्ट क्रम को मान्य किया गया है, उसमें थोड़ा भी क्रम-परिवर्तन कर दिया गया अथवा उसमें से किसी ध्वनि प्रतीक को कम कर दिया गया अथवा किसी ध्वनि प्रतीक को उसमें जोड़ दिया गया तो अलग अर्थबोधक या निरर्थक शब्द अर्थात् ध्वनि प्रतीकों का समूह बन जाता है। जैसे 'पानी' शब्द में 'पा' के क्रम पर 'नी' को और 'नी' के क्रम पर 'पा' को रख दिया गया तो 'नीपा' (न्+ई+प्+आ) निरर्थक शब्द (ध्वनि प्रतीकों का समूह) बन जाता है। यदि 'पानी' शब्द में से 'ई' ध्वनि प्रतीक को कम कर दिया गया और उसके स्थान पर 'अ' ध्वनि प्रतीक जोड़ दिया गया तो 'पान' (प्+आ+न्+अ) यह नवीन अर्थ-बोधक शब्द (ध्वनि प्रतीकों का समूह) बन जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि जिस तरह ध्वनि प्रतीक यादृच्छिक होता है, उसी तरह ध्वनि प्रतीकों का समूह भी यादृच्छिक होता है और साथ ही साथ वह ध्वनि प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था पर भी आधारित होता है। इस कारण ही 'पानी' शब्द 'प्+आ+न्+ई' इस प्रकार की ध्वनि प्रतीकों की यादृच्छिक तथा प्रचलित (रूढ़) व्यवस्था पर आधारित है। इस प्रकार यादृच्छिक तथा प्रचलित व्यवस्था के आधार पर ही प्रत्येक भाषा में भिन्न-भिन्न अर्थबोधक शब्द प्रचलित हुए हैं। इसलिए ही अंग्रेजी भाषा में यादृच्छिक तथा प्रचलित व्यवस्था के आधार पर 'पानी' का अर्थबोध कराने के लिए **'Water'** शब्द (ध्वनि प्रतीकों का समूह) प्रचलित कर दिया गया है।

वैसे जो शब्द अर्थात् जो ध्वनि प्रतीक समूह होता है वह अनुभवनिष्ठ मानसिक संकल्पना का प्रतीक होता है जिसकी अनुभूति विशिष्ट अर्थ के रूप में होती है।

(5) एक भाषा समाज के साथ भाषा का सम्बन्ध होता है—एक भाषा समाज अपने भाषा व्यवहार के लिए अपने भीतर प्रचलित भाषा का प्रयोग करता रहता है। इसलिए ही एक भाषा-समाज के लोग अपनी भाषा के माध्यम से आपस में अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। वास्तव में हर मनुष्य अपने एक भाषा समाज में रहकर बचपन से ही वह भाषा सीखता है, जो उस समाज के भीतर

पहले से भावों और विचारों के आदान-प्रदान करने के लिए उपयोग में लायी जाती है। भाषा की इस प्रकार की स्वाभाविक विशेषता के कारण ही राष्ट्र अपनी किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लेता है। तब उस राष्ट्र के लोग उसी राष्ट्रभाषा के माध्यम से अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

वास्तव में एक भाषा समाज ही आपस में अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने की सुविधा के लिए ध्वनि-यन्त्र से सम्बन्धित उच्चारण अवयवों से उच्चारित तथा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों के समूह अर्थात् शब्द बनाता है और उन्हें विशिष्ट-विशिष्ट अर्थों का बोधक बनाता है। तभी शब्द विशिष्ट अर्थ के माध्यम से किसी भाव या विचार का सम्प्रेषण करने में समर्थ हो जाता है। इससे **'ध्वनिमयी भाषा'** अपने आप **'शब्दमयी भाषा'** बनकर एक भाषा समाज के भीतर भावों और विचारों के आदान-प्रदान का सर्वाधिक उपयोगी माध्यम बन जाती है।

(6) भाषा विचार करने का भी साधन है—मनुष्य जब विचार करने लगता है तब वह अपनी भाषा को ही साधन बना लेता है और उसके माध्यम से ही अर्थात् सार्थक शब्दों के माध्यम से ही विचार करने लगता है। फिर वह उन्हीं सार्थक शब्दों के माध्यम से ही विचार करने लगता है। फिर वह उन्हीं सार्थक शब्दों के माध्यम से ही अपने विचारों को अभिव्यक्त कर देता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य का मन भीतर ही भीतर विचार करते समय भाषा का ही उपयोग करता है।

(7) एक भाषा समाज अपनी भाषा के लिए एक व्यवस्था को स्वीकार करता है—आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनी भाषा का प्रयोग एक भाषा समाज के द्वारा होता है। इसके लिए एक भाषा समाज अपनी भाषा के लिए एक व्यवस्था का पालन करता रहता है, जो विभिन्न नियमों पर आधारित होती है। विभिन्न नियमों पर आधारित भाषा की व्यवस्था का ही निरूपण उस भाषा का व्याकरण करता है। व्याकरण में निरूपित नियमों के अनुसार मान्य ध्वनि प्रतीकों के समूह अर्थात् सार्थक शब्द विभिन्न पद (रूप) बनते हैं और उन्हीं पदों के व्यवस्थित संयोजन से विशिष्टार्थ-बोधक वाक्य बनते हैं। इन वाक्यों के माध्यम से ही एक भाषा समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इस प्रकार की विशेषता के कारण ही हिन्दी भाषा के वाक्य में पहला क्रम 'कर्ता-पद' को और अन्तिम क्रम 'क्रिया-पद' को दिया गया है और आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होने वाले अन्य पदों को इन दो पदों के बीच विशिष्ट क्रम से प्रयुक्त करने को स्वीकार किया गया है। इस प्रकार भाषा एक विशिष्ट व्यवस्था पर आधारित होती है।

यहाँ स्पष्ट होता है कि जो भाषा उपर्युक्त वैज्ञानिक तथा मूलभूत विशेषताओं के आधार पर विज्ञानानुकूल स्वरूप धारण कर लेती है उसे ही भाषा विज्ञान 'भाषा' मानता है। ऐसी भाषा का ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा वस्तुनिष्ठ प्रमाणों के आधार पर अध्ययन और विश्लेषण करने का कार्य भाषा विज्ञान के द्वारा होता है।

भाषा विज्ञान जिस भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करता है वह भाषा एक ओर व्यक्ति के साथ सम्बन्ध रखती है तो दूसरी ओर एक भाषा समाज के साथ सम्बन्ध रखती है।

वह भाषा जिन ध्वनि प्रतीकों के आधार पर ध्वनिमयी बनी रहती है उन ध्वनि प्रतीकों का उच्चारण व्यक्ति को ही अपने ध्वनि-यन्त्र से सम्बन्धित उच्चारण अवयवों से तथा प्रश्वासरूपी हवा के सहयोग से करना होता है, लेकिन व्यक्ति केवल ध्वनि प्रतीकों का ही उच्चारण नहीं करता। व्यक्ति तो ध्वनि प्रतीकों के समूहों अर्थात् शब्दों का उच्चारण पदात्मक वाक्य के रूप में करता है, तभी व्यक्ति अपने भाव या विचार का सम्प्रेषण करने में सफल हो जाता है। व्यक्ति से जब इस प्रकार का भाषा व्यवहार होने लगता है, तब दूसरे या दूसरों के साथ उसका सम्बन्ध आ जाता है। इस रीति से भाषा-व्यवहार के आधार पर व्यक्ति और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध बना रहता है।

2. भाषा के लक्षण और उसकी प्रकृति

भाषा के लक्षणों को ही दूसरे शब्दों में 'भाषा की विशेषताएं' या 'भाषा की प्रवृत्तियाँ' कहा जाता है, जिनको स्पष्ट करने से अपने आप 'भाषा की प्रकृति' स्पष्ट हो जाती है।

(1) भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है—पिता से अपने आप पुत्र को मिलने वाली सम्पत्ति को पैतृक सम्पत्ति कहा जाता है, लेकिन भाषा इस प्रकार की पैतृक सम्पत्ति नहीं है, क्योंकि भाषा, पिता से अपने आप पुत्र को नहीं मिलती। वास्तव में भाषा तो परिवार तथा समाज में रहने से ही मिलती है। इस कारण ही जिस बालक का जन्म हिन्दी भाषा-भाषी परिवार में हुआ है, उसे यदि बचपन से ही हिन्दी भाषा से अपरिचित किसी दूसरी भाषा-भाषी परिवार में रखा गया तो वह बालक उस परिवार की ही दूसरी भाषा बोलने लगता है। अतः भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है।

(2) भाषा अर्जित सम्पत्ति है—जिस परिवार तथा समाज के भीतर बालक का लालन-पालन होता है उसमें प्रचलित भाषा ही बालक सीखता रहता है अर्थात् अर्जित करता रहता है और वही भाषा बोलता रहता है। बालक में बचपन से ही अर्थात् बढ़ती हुई आयु के साथ ही भाषा का अर्जन करने की क्षमता होती है। उसी क्षमता के कारण ही बालक अपने परिवार तथा समाज में प्रचलित भाषा का अर्जन करने में सफल होता है। अतः भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

(3) भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा किया जाता है—अपने परिवार तथा समाज में जो भाषा बोली जाती है, वही भाषा मनुष्य अपने बचपन से सुनता रहता है और अपने मुख से अनुकरण के रूप में वही भाषा बोलने लगता है। इसका अर्थ यह है कि अपने परिवार तथा समाज में जो भाषा बोली जाती है, बालक उसे अपने कानों से सुनता है, मन से समझता है और अपने मुख के भीतर के उच्चारण अवयवों

से अनुकरण की रीति से उसी भाषा का उच्चारण करने लगता है। प्रथम बच्चा 'घोला-गाली', 'लाजा-लानी' बोलते हुए अपनी तोतली बोली में बड़ों की भाषा का अनुकरण करने लगता है और आगे चलकर वह बड़ों के सही उच्चारण का सही अनुकरण कर 'घोड़ा-गाड़ी', 'राजा-रानी' सही उच्चारण करता है। इस प्रकार भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा किया जाता हे।

(4) भाषा सामाजिक वस्तु है—मनुष्य समाजप्रिय प्राणी होने के कारण वह एक समाज का निर्माण कर उसमें ही आजीवन रहता है। एक समाज के रूप में रहने वाले लोग एक-दूसरे के साथ व्यवहार करने के लिए अपने समाज में प्रचलित भाषा का भी उपयोग करते हैं और उसके माध्यम से आपस में अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इसी के परिणामस्वरूप ही मनुष्य एक भाषा समाज में रहकर अपने बचपन से ही अनुकरण के द्वारा भाषा बोलना सीखता है। इसका अर्थ यह है कि समाज है, इसलिए उस समाज की भाषा है। अतः भाषा पूर्ण रूप से सामाजिक वस्तु है।

(5) भाषा परम्परागत है—जिस एक भाषा-समाज में भाषा का उपयोग किया जाता है, वह भाषा कोई नयी भाषा नहीं होती, वह तो परम्परागत होती है। इस कारण से ही समाज को बार-बार किसी नयी भाषा का निर्माण करने की आवश्यकता नहीं रहती। समाज के लोग परम्परा के रूप में प्रचलित भाषा अनुकरण के द्वारा सीखते रहते हैं और उसी के माध्यम से अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इसलिए भाषा परम्परागत है।

(6) भाषा परिवर्तनशील है—एक भाषा समाज के लोग अनुकरण से अपनी परम्परागत भाषा सीखते रहते हैं और अपना भाषा व्यवहार अधिक सहज और सरल हो ऐसा प्रयत्न करते रहते हैं। परिणामस्वरूप भाषा व्यवहार को सहज और सरल अर्थबोधक रूप प्रदान करने के प्रयत्न से भाषा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता रहता है। भाषा में जो परिवर्तन होता रहता है, वह ध्वनि शब्द, पद, वाक्य, अर्थ इन भाषा के महत्वपूर्ण अंगों में होता रहता है।

भाषा में जो ध्वनि परिवर्तन होता है, उसी के अनुसार हिन्दी भाषा में काल-प्रवाह के साथ क, ख, ग, ज, फ, व, ड, ढ़, अरबी फारसी की व्यंजन-ध्वनियाँ तथा अंग्रेजी भाषा की 'आ' स्वर-ध्वनि प्रचलित हो जाने से हिन्दी भाषा की ध्वनियों में कुछ परिवर्तन हुआ है।

शब्द के कठिन उच्चारण को सरल उच्चारण बनाने के प्रयत्न में शब्द से भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है और शब्द सरल उच्चारण के अनुकूल रूप धारण कर लेता है। इस कारण ही 'कृष्ण' से किसन या किशन, 'चन्द्र' से चन्दर, 'रात्र' से रात, 'अग्नि' से आग, 'दुग्ध' से दूध 'क्षेत्र' से खेत, 'मेघ' से मेह, 'स्नान से अस्नान या सनान बन गया है।

पद तथा वाक्य में भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता रहता है। हिन्दी की अवधी बोली में एकवचन तथा बहुवचन में भी 'घोड़ा' इस एक ही रूप (पद) का प्रयोग होता था, परन्तु अर्थबोधकता में स्पष्टता लाने के लिए आगे चलकर 'वन' या 'जन' बहुवचनसूचक प्रत्यय के योग से बहुवचन में 'घोड़वन' या 'घोड़न' पद (रूप) का प्रयोग होने लगा। जब कभी भाषा में मिश्र वाक्यों तथा संयुक्त वाक्यों का अधिक प्रयोग होने लगता है। तब वाक्य परिवर्तन के रूप में सरल और छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती रहती है।

काल-प्रवाह के साथ शब्द के अर्थ में भी परिवर्तन होता है। इस कारण से ही वैदिक भाषा में जो 'असुर' शब्द 'देव' का अर्थबोधक था, वही आगे चलकर 'राक्षस' का अर्थबोधक हो गया। जो 'मृग' शब्द सभी प्रकार के पशुओं का अर्थ-बोधक था, वही आगे चलकर केवल एक पशु-विशेष अर्थात् 'हिरण' के अर्थ में प्रचलित हो गया। जो 'प्रवीण' शब्द वीणा बजाने में चतुर व्यक्ति के अर्थ में प्रचलित था, वही आगे चलकर किसी भी प्रकार का काम चतुराई से करने वाले व्यक्ति के अर्थ में प्रचलित हो गया। स्पष्ट है कि भाषा परिवर्तनशील है।

(7) **भाषा का प्रवाह अविच्छिन्न होने से उसका अन्तिम स्वरूप नहीं है**—एक भाषा समाज में जो भाषा परम्परागत तथा परिवर्तनशील होती है, वह कभी खण्डित या अपरिवर्तित नहीं होती। वह भाषा सदैव गतिशील बनी रहती है जिससे उसका प्रवाह अविच्छिन्न बना रहता है। भाषा अपनी प्रचलित स्थिति में कुछ परि-वर्तित भी होती रहती है जिसके परिणामस्वरूप कभी उसका अन्तिम स्वरूप नहीं होता। जिस प्रकार 'बहता नीर' भिन्न-भिन्न स्थितियों में से आगे बढ़ता रहता है, उसी प्रकार भाषा भी एक-भाषा समाज में प्रयुक्त होकर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में से आगे ही बढ़ती है। इस कारण ही भाषा को बहता नीर कहा जाता है।

(8) **भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है**—भाषा जिस एक भाषा-समाज में प्रयुक्त की जाती है, उस एक भाषा-समाज का निवास एक विशिष्ट प्रदेश में होता है। इसलिए उस विशिष्ट प्रदेश की भौगोलिक सीमा बनी रहती है। भौगोलिक सीमा से घिरे विशिष्ट प्रदेश में ही एक भाषा समाज की भाषा का प्रयोग होता है। इस कारण ही जो विशिष्ट प्रदेश की एक भौगोलिक सीमा होती है, वही भाषा की भी भौगोलिक सीमा होती है। उस भौगोलिक सीमा के बाहर दूसरी भाषा का प्रयोग होता रहता है।

(9) **भाषा का एक स्वतन्त्र ढाँचा होता है**—प्रत्येक भाषा किसी एक भाषा-समाज में प्रचलित रहती है। इसलिए भाषा समाज द्वारा मान्य व्यवस्था के आधार पर प्रत्येक भाषा की अपनी अलग संरचना बनी रहती है। यही भाषा का स्वतन्त्र ढाँचा होता है। इस कारण से ही प्रत्येक भाषा एक दूसरी भाषा से अलग होती है,

जैसे हिन्दी में शब्दों की रूप रचना के लिए पुल्लिग और स्त्रीलिंग इन दोनों लिंगों को और एकवचन तथा बहुवचन इन दो वचनों को स्वीकार किया गया है, लेकिन संस्कृत भाषा में एकवचन, द्विवचन, बहुवचन इन तीन वचनों को स्वीकार किया गया है, तो मराठी भाषा तथा गुजराती भाषा में पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग इन तीन लिंगों को स्वीकार किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक भाषा का संरचनात्मक ढाँचा स्वतन्त्र होता है और वह अपने-अपने व्याकरण पर आधारित होता है। व्याकरण की निश्चित व्यवस्था के आधार पर भाषा के संरचनात्मक स्वतन्त्र ढाँचे को सुरक्षित रखता है।

(10) भाषा कठिन से सरलता की ओर बढ़ती है—अपनी परिवर्तनशीलता के कारण भाषा कठिनता से सरलता की ओर गतिमान रहती है। कुछ ध्वनि-संयोग के कारण शब्द के उच्चारण में और कुछ क्लिट नियमों के कारण भाषा के संरचनात्मक स्वरूप में कठिनता बनी रहती है। तब स्वाभाविक रूप से कठिनता में परिवर्तन करके सरलता को स्थान देने का प्रयत्न होता है। इस कारण से ही 'चन्द्र, अग्नि, दुग्ध, क्षेत्र, रात्र' जैसे तत्सम शब्दों के कठिन उच्चारण को सरल बनाने के लिए हिन्दी में 'चन्दर, आग, दूध, खेत, रात' ये ध्वनिपरिवर्तित रूप प्रचलित हुए हैं। साथ ही साथ विभिन्न शब्द रूपों के लिए संस्कृत व्याकरण के समान तीन वचन-प्रकारों और तीन लिंग-प्रकारों को तथा विभक्ति के अनेक प्रयत्नों को स्वीकार करने के बदले हिन्दी भाषा के व्याकरण ने पुल्लिग-स्त्रीलिंग इन दो लिंगों, एकवचन-बहुवचन इन दो वचनों और विभक्ति के कुछ ही प्रत्ययों को स्वीकार किया है, जिससे हिन्दी भाषा व्यवहारोपयोगी सरल रूप धारण करने में सफल हुई है। स्पष्ट है कि भाषा रूपी पानी की धारा कठिनतारूपी ऊँचाई से सरलता रूपी नीचाई की ओर बढ़ती रहती है।

(11) भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है—भाषा की संयोगावस्था कठिनता से युक्त होती है, तो वियोगावस्था सरलता से युक्त होती है। भाषा स्वाभाविक रूप से कठिनता से सरलता की ओर बढ़ती है, इसका अर्थ यह भी है कि भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है। भाषा का प्रारम्भिक रूप बहुधा संयोगावस्था का होता है। इसलिए भाषा आगे चलकर वियोगावस्था की ओर बढ़ती रहती है। जो संस्कृत भाषा संयोगावस्था के कारण क्लिष्ट बन गयी थी वही वास्तव में पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में से होकर कठिन संयोगावस्था से अधिकाधिक सरल वियोगावस्था की ओर बढ़ती रही है और हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि सरल वियोगावस्था प्रधान आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ बनकर रहने में सफल हुई हैं, जैसे वाक्य का संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ना—

संयोगावस्था		वियोगावस्था
संस्कृत	हिन्दी	मराठी
रामः गच्छति ।	राम जाता है ।	राम जातो.
सीता गच्छति ।	सीता जाती है ।	सीता जाते.
विभावानुभाव व्यभिचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्ति ।	विभाव और अनुभाव व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।	विभाव, अनुभाव आणि व्यभिचारी यांच्या संयोगाने रसाची निष्पत्ति होते.

इस प्रकार संधिप्रधान तथा समासप्रधान संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है ।

(12) **भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढ़ता से प्रौढ़ता की ओर जाती है**—भाषा प्रारम्भिक अवस्था में स्थूल और अप्रौढ़ अर्थात् अविकसित होती है, लेकिन मनुष्य जैसे-जैसे अपने हृदय के सूक्ष्म भावों और अपने मन के सूक्ष्म विचारों की भाषा के माध्यम से व्यक्त करने लगता है, वैसे-वैसे भाषा सूक्ष्म और प्रौढ़ अर्थात विकसित होने लगती है । पहले 'तेल' का अर्थ 'तिल का रस' था, जो रस को कोल्हू से तिलों को रगड़कर अर्थात् तिलों को तकलीफ पहुँचाकर निकाला जाता था । इसी बात को ध्यान में रखकर अपने हृदय का 'क्रोध' यह सूक्ष्म भाव व्यक्त करने तथा धमकाने के सूक्ष्म विचार के लिए 'तेरा तेल निकालूँगा' ऐसा कहा जाने लगा । इससे ज्ञात होता है कि भाषा अपने स्थूल और अप्रौढ़ (अविकसित) रूप के आधार पर ही सूक्ष्म भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सूक्ष्म और प्रौढ़ (विकसित) बनती रहती है ।

(13) **भाषा का अपना एक मानक रूप भी बना रहता है**—अपने व्याकरण के आधार भाषा परिनिष्ठित भाषा' बनी रहती है । इसी 'परिनिष्ठित भाषा' को ही शुद्ध भाषा के रूप में उस भाषा-शैली 'आदर्श भाषा' मानते रहते हैं, इसलिए उसे 'मानक भाषा' भी कहते हैं । इसी 'आदर्श भाषा' या 'मानक भाषा' को अंग्रेजी में 'Standard Language' कहते हैं । 'यह मानक भाषा' ही प्रसासनिक व्यवहार में, शिक्षण, साहित्य, समाचार-पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन विधि आदि क्षेत्रों में 'शुद्ध भाषा' तथा 'आदर्श भाषा' के रूप में प्रयोग में लायी जाती है । यह 'मानक भाषा' व्याकरण के नियमों के आधार पर 'परिनिष्ठित भाषा' बनी रहती है । इस कारण उसमें बहुत कम परिवर्तन होता है ।

(14) **एक ही भाषा व्यवहार में विविध रूपों में प्रचलित रहती है**—समाज में एक ही भाषा अपने विविध रूपों में प्रचलित रहती है । वह भाषा बोलने के लिए 'मौखिक भाषा' होती है । तो लिखने के लिए 'लिखित भाषा' होती है । एक भाषा समाज विशिष्ट प्रदेश में रहता है । उस विशिष्ट प्रदेश में कुछ भौगोलिक कारणों से एक ही भाषा, बोलियों तथा उपभाषाओं के रूप में बोली

जाती है। इस कारण से कहा जाता है "चार कोस पर बदले पानी, आठ कोस पर बानी।"

भाषा का ही 'परिनिष्ठित रूप' राज्य शासन की 'राज्य-भाषा' बनता है, केन्द्र शासन की राज्य-भाषा बनता है और राष्ट्र की 'राष्ट्र भाषा' भी बन जाता है। इस कारण से ही हिन्दी भाषा 'परिनिष्ठित भाषा' है, 'राज्य-भाषा है', 'राज-भाषा' है और कुछ हद तक 'राष्ट्र-भाषा भी' है।

एक ही भाषा साहित्य के क्षेत्र में 'साहित्यिक भाषा' या 'काव्य-भाषा' बनती है, कानून के क्षेत्र में 'कानूनी भाषा' बनती है, व्यापार के क्षेत्र में 'व्यापार भाषा' बनती है। 'विज्ञान' के क्षेत्र में 'विज्ञान-भाषा' बनती है।

इस प्रकार व्यवहार में एक ही भाषा भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित रहती है और अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग रूप में उपयोगी बनी रहती है।

(15) भाषा सर्वव्यापक है—मनुष्य जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें भाषा का प्रयोग नहीं होता हो। वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में भाषा का प्रयोग होता है। परिवार चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, उसमें भाषा का प्रयोग होता ही है।

व्यक्ति अकेला हो, तो भी वह विचार या कल्पना करने के लिए मनोव्यापार में भाषा का ही उपयोग करता है। व्यक्ति जब दूसरे या दूसरों पर अपना विचार या अपना भाव या अपनी कल्पना व्यक्त करने लगता है, तब वह भाषा का सहारा लेता है। इससे व्यक्ति और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध भाषा के आधार पर ही बना रहता है। समाज उत्कृष्ट मार्गदर्शन पाने से जिस पर गर्व करता है ऐसी 'साहित्य-कला' तथा 'काव्य-कला' का सृजन भाषा के माध्यम से ही होता है। मनुष्य लिपि की सहायता से अपनी मौखिक भाषा को लिखित भाषा बनाकर अपना सारा ज्ञान अगली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखता है। इससे ज्ञात होता है कि भाषा सर्वव्यापक है।

भाषा के उपर्युक्त लक्षणों से भाषा की विशिष्ट प्रकृति अपने आप स्पष्ट हो जाती है। ये सभी लक्षण भाषा की महत्वपूर्ण विशेषताएँ ही हैं।

3. भाषा की उत्पत्ति और विविध वाद या सिद्धान्त

किसी मत या वाद या सिद्धान्त से भाषा की उत्पत्ति के विषय में निश्चित ज्ञान मिलेगा ही ऐसा नहीं है। फिर भी उपलब्ध मतों या वादों या सिद्धान्तों को देखने से भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ न कुछ महत्वपूर्ण ज्ञान मिलता है। इसलिए भाषा की उत्पत्ति से सम्बन्धित विविध मतों या वादों या सिद्धान्तों को देखना महत्वपूर्ण है।

(1) भाषा की उत्पत्ति और दैवी उत्पत्तिवाद या सिद्धान्त (Divine Origin)—इस वाद या सिद्धान्त के अनुसार भाषा ईश्वर प्रदत्त है। विभिन्न धर्मों और उनके धर्मग्रन्थों के मतानुसार सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता ईश्वर ही है। इसलिए

ईश्वर ही भाषा का निर्माता है और वही मनुष्य को जन्म के साथ ही भाषा भी देता है। इस कारण ही भाषा ईश्वरप्रदत्त है। अपनी इस प्रकार की श्रद्धा को लेकर हिन्दू धर्म वालों ने 'वैदिक संस्कृत' को ईश्वर प्रदत्त भाषा माना है और उसे 'देव-वाणी' या 'देव-भाषा' कहा है। ठीक इसी प्रकार की भाषा के रूप में बौद्ध धर्मवालों ने 'पाली' भाषा को, जैन धर्मवालों ने 'अर्धमागधी' भाषा को, ईसाई धर्मवालों ने 'हिब्रू' भाषा को, मुसलमान धर्मवालों ने 'अरबी' भाषा को और पारसी धर्मवालों ने 'अवेस्ता' भाषा को स्वीकार किया है।

दैवी उत्पत्तिवाद पर पहली आपत्ति यह उठती है कि यदि भाषा ईश्वरप्रदत्त है, तो संसार में बहुत-सी भाषाएँ क्यों प्रचलित हैं? एकमात्र भाषा क्यों प्रचलित नहीं है? दूसरी आपत्ति यह उठती है कि यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त होती, तो संसार की सभी भाषाएँ आरम्भ से ही विकसित क्यों नहीं हैं? वे काल-क्रम के साथ क्यों विकसित होती रही हैं? तीसरी आपत्ति यह उठती है कि यदि भाषा ईश्वरप्रदत्त है तो बच्चा जन्म पाते ही भाषा क्यों नहीं बोलता? अपने परिवार तथा समाज में जो भाषा प्रचलित रहती है, वही भाषा बच्चे को क्यों सीखनी पड़ती है? बच्चे को उस भाषा का ही अनुकरण से क्यों अर्जन करना पड़ता है?

उपर्युक्त तीनों आपत्तियों का निराकरण दैवी उत्पत्तिवाद से नहीं हो पाता। उपर्युक्त तीसरी आपत्ति का समाधान पाने के विचार से मिस्र के राजा सैमिटकोस (Psammitichos) ने दो बच्चों को उनके जन्म के बाद तुरन्त निर्मनुष्य स्थल पर रख दिया और उनकी देखभाल करने के लिए फ्रीजियन भाषा बोलने वाले एक नौकर को रखकर उसे उन बच्चों के पास या साथ बोलने को मना कर दिया। परिणाम यह निकला कि वे दोनों बच्चे आगे चलकर फ्रीजियन भाषा के 'बेकोस' (Bekos= रोटी) इस एक शब्द के सिवा कुछ बोल नहीं सके। वह शब्द नौकर के मुख से भूल से उन बच्चों के पास निकल गया था और बच्चों ने अनुकरण से उसका उच्चारण सीखा था। बादशाह अकबर का इस प्रकार का प्रयोग पूर्णरूप से सफल रहा और बच्चे आगे चलकर कुछ भी बोल नहीं पाये, वे तो गूंगे निकले। इन प्रयोगों से सिद्ध होता है कि भाषा न ईश्वरनिर्मित है, न ईश्वरप्रदत्त। इसलिए ही मनुष्य जन्म के साथ कोई भाषा नहीं ले आता।

इस प्रकार भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से दैवी उत्पत्तिवाद को उपयोगी तथा वैज्ञानिक नहीं माना जाता, लेकिन इससे ज्ञात यह होता है कि केवल मनुष्य के पास ही 'भाषा प्रयोग की क्षमता' है। दैवी उत्पत्तिवाद को 'दिव्य उत्पत्ति-वाद' भी कहा जाता है।

(2) भाषा की उत्पत्ति और धातुवाद या सिद्धान्त (Root Theory)—'धातु-वाद या सिद्धान्त' को 'रणन-वाद या सिद्धान्त' तथा 'डिंग-डांगवाद या सिद्धान्त' (Ding-dong Theory) भी कहा जाता है। इस वाद का सर्वप्रथम संकेत दार्शनिक

प्लेटो ने किया था। आगे चलकर अपने व्याख्यान के माध्यम से इस वाद को व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न जर्मन प्रोफेसर Heyse ने किया और उनके ही शिष्य डॉ० स्टाइन्थाल ने उस व्याख्यान को मुद्रित रूप में विद्वानों के सामने प्रस्तुत किया। फिर मैक्समूलर ने उस मत को अपनी पुस्तक में स्थान दिया, लेकिन बाद में उन्होंने उस मत को भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से निरर्थक माना।

धातुवाद के अनुसार पहली महत्व की बात यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु अपने में एक विशिष्ट तथा स्वतन्त्र ध्वनि रखती है। दूसरी महत्व की बात यह है कि मनुष्य जैसे-जैसे किसी वस्तु की सहायता से एक-एक वस्तु पर चोट (आघात) करता गया वैसे-वैसे एक-एक वस्तु की विशिष्ट तथा स्वतन्त्र ध्वनि व्यक्त होकर मनुष्य को सुनने को मिली और मनुष्य ने उस-उस वस्तु को पहचानने के लिए उस-उस वस्तु की विशिष्ट तथा स्वतन्त्र ध्वनि को ध्यान में रख लिया। परिणाम यह हुआ कि उसके बाद मनुष्य जिस-जिस वस्तु के पास जाने लगा तब-तब वह उस विशिष्ट वस्तु की पहचान के लिए अपने मुख से उस वस्तु की विशिष्ट तथा स्वतन्त्र ध्वनि का उच्चारण करने लगा और इस प्रकार की रीति से ध्वन्यात्मक शब्द बनाये गये, जिन्हें मूल शब्द अर्थात् 'धातु' माना गया। तीसरी महत्व की बात यह है कि इस प्रकार के 400-500 मूल शब्दों अर्थात् धातुओं के आधार पर भाषा की उत्पत्ति हुई।

धातुवाद के अनुसार उन धातुओं की ध्वनियों और उन धातुओं के अर्थों में एक रहस्यात्मक सम्बन्ध (mystic harmony) को स्वीकार किया गया। कुछ दार्शनिकों ने भी धातुवाद को किसी रूप में माना था और उसे 'नेटिविस्टिक थ्योरी' (Nativistic Theory) नाम दिया था।

धातुवाद की उपर्युक्त दूसरी बात के सन्दर्भ में मनुष्य द्वारा डंडे से घण्टे पर चोट करने से 'डिंग-डांग' के रूप में घण्टे की विशिष्ट तथा स्वतन्त्र व्यक्त होने वाली ध्वनि का उदाहरण दिया गया है। इसलिए 'धातुवाद' को 'डिंग-डांग-वाद' कहा गया है। 'डिंग-डांग' इस ध्वनि में 'रणन' के होने से 'डिंग-डांग-वाद' को 'रणनवाद' भी कहा जाता है।

धातुवाद पर पहली आपत्ति यह उठती है कि वह 'डिंग-डांग' इस धातु अर्थात् ध्वन्यात्मक अर्थपूर्ण मूल शब्द को छोड़कर अन्य सभी धातुओं को वस्तुनिष्ठ ठोस प्रमाणों के आधार पर क्यों स्पष्ट नहीं कर पाया? विज्ञान में क्या ठोस प्रमाणों के बिना केवल कल्पना से काम बनता है? दूसरी आपत्ति यह उठती है कि संसार में जिन भाषाओं में धातुओं का पूर्णतया अभाव है, उनकी उत्पत्ति कैसे हुई होगी? तीसरी आपत्ति यह उठती है कि भाषा की उत्पत्ति होने के लिए केवल 'धातुएँ' कैसे पर्याप्त हो सकती हैं। क्या उसके लिए उपसर्ग, प्रत्यय आदि की आवश्यकता नहीं होती? इन सभी आपत्तियों का समाधान 'धातुवाद' से नहीं हो पाता। इस कारण ही मैक्समूलर ने भी बाद में भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से धातुवाद को निरर्थक माना।

(3) भाषा की उत्पत्ति और निर्णयवाद या सिद्धान्त (Agreement Theory)—'निर्णयवाद या सिद्धान्त' को 'संकेतवाद या सिद्धान्त', 'स्वीकारवाद या सिद्धान्त' तथा 'प्रतीकवाद या सिद्धान्त' भी कहा जाता है।

'निर्णयवाद' मानता है कि आरम्भ में मनुष्य ने अपने मन की किसी बात को व्यक्त करने के लिए शारीरिक संकेतों के रूप में अपने सिर, मुख, आँख, गर्दन, हाथ, पैर आदि की क्रियाओं का उपयोग किया होगा, लेकिन पूर्ण भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अपने शारीरिक संकेतों को शाब्दिक अर्थात् ध्वन्यात्मक संकेत या प्रतीक के रूप में स्वीकार करने के लिए मनुष्य ने एकत्रित होकर कुछ विचार-विनिमय किया और एक-एक शारीरिक संकेत को एक-एक शाब्दिक संकेत या प्रतीक के रूप में स्वीकार करने का निर्णय किया। इस प्रकार की मान्यता के कारण ही इसे 'निर्णयवाद' या 'संकेत-वाद' या 'प्रतीकवाद' या 'स्वीकारवाद' माना जाता है। इस वाद के अनुसार निर्णय-के आधार पर जिन शाब्दिक संकेतों या प्रतीकों को स्वीकार किया गया उनसे ही भाषा की उत्पत्ति हुई।

'निर्णयवाद' पर पहला महत्वपूर्ण आक्षेप यह है कि जिस समय मनुष्य के पास शब्दमयी भाषा ही नहीं थी उस समय वे कैसे शाब्दिक संकेतों को निश्चित करने का निर्णय करने के लिए प्रेरित हुए होंगे ? कैसे एकत्रित हुए होंगे ? कैसे आपस में उन्होंने विचार-विनिमय किया होगा ? सर्वमान्य निर्णय कैसे लिया होगा ? ये सभी प्रश्न अनुत्तरित रहते हैं, इसलिए भाषा की उत्पत्ति को समझने के लिए 'निर्णय-वाद' व्यर्थ है।

(4) भाषा की उत्पत्ति और अनुकरणवाद या सिद्धान्त (Imitative Theory)—अनेक विद्वानों ने अनुकरणवाद का समर्थन करते हुए माना है कि भाषा की उत्पत्ति अनुकरणमूलक शब्दों के आधार पर हुई है। इसके लिए उन्होंने तीन प्रकार के उप-वादों या उप सिद्धान्तों को स्वीकार किया है—(अ) ध्वन्यात्मक अनुकरणवाद, (आ) अनुकरणनात्मक अनुकरणवाद और (इ) दृश्यात्मक अनुकरणवाद।

(अ) ध्वन्यात्मक अनुकरणवाद या भौं-भौं सिद्धान्त (Bow-Wow Theory)—इस वाद को हिन्दी में 'अनुकरणता मूलकतावाद', 'शब्दानुकरणवाद', 'भों-भों वाद' या 'भौं-भौं वाद' भी कहा जाता है। इस वाद के अनुसार मनुष्य ने पशु और पक्षी की ध्वनियों के अनुकरण पर कुछ शब्द बनाये और उन शब्दों से भाषा की उत्पत्ति हुई। इस वाद के अनुसार मनुष्य ने कुत्ते की भौंकने की ध्वनि का अनुकरण करके कुत्ते को पहचानने के लिए हिन्दी में 'भों-भों' या 'भौं-भौं' शब्द, अंग्रेजी भाषा में 'Bow-Wow' शब्द और मराठी भाषा में 'भू-भू' शब्द बनाया, बिल्ली की ध्वनि का अनुकरण करके हिन्दी में 'म्याऊँ-म्याऊँ' शब्द और मराठी भाषा में 'म्यांव-म्यांव' शब्द बनाया, जिससे 'बिल्ली' का अर्थबोध होने लगा।

मनुष्य ने कौवे की 'कांव-कांव' ध्वनि के अनुकरण पर उसे पहचानने के लिए हिन्दी में 'कांउ-कांउ' शब्द बनाया। कोयल की 'कू-कू' कूकने की ध्वनि के अनुकरण पर उसे पहचानने के लिए 'कोकिल' शब्द बनाया गया।

इस प्रकार मनुष्य ने पशु और पक्षियों की ध्वनियों के अनुकरण पर कुछ शब्द बनाये हैं। मैक्समूलर ने इस पद्धति से बने शब्दों की हँसी उड़ाते हुए हँसी में उसे 'बाउ-वाउ' सिद्धान्त (Bow-wow Theory) कहा। 'बाउ-बाउ' यह शब्द अँग्रेजी भाषा में कुत्ते की ध्वनि के अनुकरण पर बनाया गया शब्द है।

भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से 'ध्वन्यात्मक अनुकरणवाद' कुछ मात्रा में निश्चित ही उपयोगी है, क्योंकि ध्वन्यात्मक अनुकरण पर स्वाभाविक रूप से कुछ सार्थक शब्द बने हैं और बनते भी हैं। ध्वन्यात्मक अनुकरणमूलक शब्द सार्थक इसलिए होते हैं कि उनसे विशिष्ट पशु या पक्षी का अर्थ-बोध होता है।

लेकिन ध्वन्यात्मक अनुकरणमूलक शब्दों की संख्या सीमित है। इसलिए इस वाद पर आक्षेप करते हुए रेमन आदि ने प्रश्न उठाया है कि सीमित संख्या वाले ध्वन्यात्मक अनुकरणमूलक शब्दों से भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई होगी? इस प्रश्न का निराकरण ध्वन्यात्मक अनुकरण से नहीं होता।

(आ) अनुरणनात्मक अनुकरणवाद—इस वाद को 'अनुरणनमूलकता वाद' या 'अनुकरण सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इस वाद के अनुसार मनुष्य ने निर्जीव वस्तुओं की गूँजनेवाली ध्वनि का अनुकरण करके उन्हीं का अर्थ-बोध कराने के लिए अनुरणनात्मक शब्द बनाये। इस कारण ही घण्टे की गूँजने वाली ध्वनि का अनुकरण करके उस घण्टे का अर्थ-बोध कराने के लिए हिन्दी में 'टन-टन' शब्द और अंग्रेजी में 'डिंग-डांग' शब्द बनाया गया। ठीक इसी तरह दरवाजा खटखटाने से या किसी निर्जीव वस्तु पर आघात करने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि का अनुकरण करके हिन्दी में 'खट-खट', 'ठक-ठक' आदि शब्द बनाये गये। झरने में बहते पानी से निकलने वाली ध्वनि का अनुकरण करके हिन्दी में 'झर-झर', 'कल-कल' आदि शब्द बनाये गये, जिनसे झरने के बहते पानी की विशिष्ट गति का अर्थ-बोध हो जाता है।

अनुरणनात्मक अनुकरणवाद भी अपने सीमित रूप में भाषा की उत्पत्ति को समझने की दृष्टि से कुछ उपयोगी है, लेकिन इस प्रकार के शब्दों की संख्या मर्यादित होने के कारण 'ध्वन्यात्मक अनुकरण वाले' शब्दों को लेकर ऊपर (अ) के सन्दर्भ में जो आक्षेप किया गया है, वह यहाँ पर भी लागू होता है।

(इ) दृश्यात्मक अनुकरणवाद—इस वाद के अनुसार मनुष्य ने दृश्य की विशिष्ट दशा को देखकर उसके अनुकरण के रूप में कुछ ऐसा शब्द बनाया, जिससे उस दृश्य की विशिष्ट दशा का अर्थ-बोध हो जाता है। इस कारण ही किसी प्रकाशमान और चमकने वाले दृश्य का अनुकरण करके हिन्दी में 'जगमग', 'बगबग',

'चकाचक' शब्द बनाये गये, जिनसे उस दृश्य की विशिष्ट दशा का अर्थ-बोध हो जाता है।

'दृश्यात्मक अनुकरणवाद' भी अत्यन्त मर्यादित रूप में भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से कुछ उपयोगी है, लेकिन इस प्रकार के शब्दों की संख्या अत्यन्त मर्यादित होने के कारण ऊपर (अ) के सन्दर्भ में अर्थात् ध्वन्यात्मक अनुकरण वाले शब्दों के सन्दर्भ में जो आक्षेप किया गया, वह यहाँ पर भी लागू होता है।

(5) भाषा की उत्पत्ति और मनोभावाभिव्यक्तिवाद या सिद्धान्त (Interjectional Theory)—इस वाद को 'मनोभावाभिव्यंजकतावाद', 'मनोरागमूलकतावाद' 'पूह-पूहवाद' (Pooh-pooh) या 'आवेगवाद या सिद्धान्त' भी कहते हैं। इस वाद को मैक्समूलर ने मजाक में 'पूह-पूह' वाद कहा है। मनोभावाभिव्यक्ति वाद के अनुसार मनुष्य भावावेग में अपने मुख से विशिष्ट ध्वनियाँ सहज निकालता है। हर्ष (आनन्द), विस्मय (आश्चर्य), शोक (दुःख), घृणा (तिरस्कार, नफरत) आदि भावावेग की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य अपने मुख से विशिष्ट ध्वनियों का उच्चारण करता है, जैसे हर्ष अर्थात् आनन्द के आवेग में मनुष्य के मुख से 'वाह ! वाह !' शब्द निकला, शोक के आवेग में 'आह !' या 'ओह !' या 'हाय !' शब्द निकला, विस्मय के आवेग में 'ओहो !' शब्द निकला और घृणा के आवेग में 'छिः' या 'धिक्' या 'दुत्' शब्द निकला। इस प्रकार आरम्भ में मनुष्य भावप्रधान रहा और भावावेश में वह अपने मुख से विशिष्ट भावसूचक ध्वन्यात्मक शब्दों का उच्चारण करता रहा, जिन शब्दों से भाषा की उत्पत्ति हुई।

भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से आंशिक रूप में यह वाद उपयोगी है, लेकिन पहली आपत्ति यह है कि बहुत कम भावसूचक शब्दों से ही भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई होगी ? दूसरी आपत्ति यह है कि हर्ष, शोक, विस्मय, घृणा आदि भावसूचक शब्द भाषा में 'अव्यय' के रूप में प्रचलित होने के कारण इस वाद से यह समझ में नहीं आता कि संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया इन शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई होगी ? इन आपत्तियों का समाधान इस वाद से नहीं हो पाता।

(6) भाषा की उत्पत्ति और श्रम ध्वनि वाद या सिद्धान्त (Yo-he-ho Theory)—इस वाद को 'श्रमपरिहरणमूलकता वाद' या 'यो-हे-हो सिद्धान्त' भी कहते हैं। इस वाद के अनुसार माना जाता है कि मनुष्य जब शारीरिक श्रम करता है तब उसके श्वास-प्रश्वास की गति अपने आप तीव्र बनती है। परिणामस्वरूप मनुष्य के स्वर यन्त्र से सम्बन्धित स्वर-तन्त्रियों का आकुंचन प्रसारण जल्दी-जल्दी होने लगता है और उसके मुख से अनायास श्रमसूचक कुछ ध्वनियाँ निकल जाती हैं, जिन्हें मनुष्य ने शब्द के रूप में स्वीकार किया और उनसे भाषा की उत्पत्ति हुई। इस सन्दर्भ में जोर-जोर से कपड़े धोने का श्रम करने वाले के मुख से अनायास निकलने वाली श्रमसूचक ध्वनि 'हियो' या 'छियो' का उल्लेख किया जाता है और साथ ही

साथ समूह के रूप में भारी से भारी बोझ उठाने का काम करते समय श्रमिकों के मुख से अनायास श्रमसूचक निकलने वाली 'यो-हे-हो' ध्वनि का भी उल्लेख किया जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले विद्वान के रूप में न्वायर (Noire) नामक व्यक्ति का उल्लेख किया जाता है।

वास्तव में श्रमसूचक ध्वनियाँ श्रम के सन्दर्भ में ही कुछ अर्थबोधक बन जाती हैं। भाषा व्यवहार में इन ध्वनियों का प्रयोग अर्थबोधक शब्दों के रूप में नहीं होता। अतः इस प्रकार की श्रमसूचक ध्वनियों से भाषा की उत्पत्ति को स्वीकार करना आपत्तिजनक बनता है।

(7) भाषा की उत्पत्ति और इंगित वाद या सिद्धान्त (Gestural Theory)—भाषा विज्ञानवेत्ता अलेक्जेंडर जोहानसन ने भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी इंगितवाद का प्रतिपादन किया है। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में भाषा के विकास की चार सीढ़ियों के रूप में चार अवस्थाओं को स्वीकार कर लिया है :

(क) भावव्यंजक शब्द निर्माण की पहली अवस्था—इस प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य ने भूख, प्यास, हर्ष, दुःख, क्रोध, भय आदि को व्यंजित करने के लिए भावव्यंजक ध्वनियों के आधार पर भावव्यंजक शब्दों का निर्माण किया।

(ख) ध्वन्यात्मक अनुकरणमूलक शब्द-निर्माण की दूसरी अवस्था—भाषा के विकासक्रम की दूसरी अवस्था में मनुष्य ने भिन्न-भिन्न पशुओं, पक्षियों, निर्जीव वस्तुओं आदि की ध्वनियों के अनुकरण पर अनुकरणमूलक शब्दों का निर्माण किया।

(ग) इंगित शब्द-निर्माण की तीसरी अवस्था—भाषा के विकासक्रम की तीसरी अवस्था में मनुष्य ने इंगित शब्दों का निर्माण किया। इसके लिए मनुष्य अपने हाथ आदि अवयवों के संकेतों का बिना जाने अनुकरण (Unconscious imitation) करता रहा। जैसे बार-बार ओठों के खुलने और मिटने से 'पा-पा' ध्वनि निकलती है, जिसका अर्थ 'पानी पीना' ऐसा लिया गया। इससे पानी पीने का अर्थ सूचित करने के लिए एक इंगित शब्द के रूप में 'पा-पा' शब्द को स्वीकार किया गया।

(घ) सूक्ष्म भावमूलक शब्द-निर्माण की चौथी अवस्था—भाषा के विकासक्रम की चौथी अवस्था में मनुष्य ने सूक्ष्म भावमूलक शब्दों का निर्माण किया। इसके लिए मनुष्य ने स्वर-व्यंजन के रूप में भाषा की ध्वनियों का विकास किया।

भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से पहली दोनों अवस्थाएँ आंशिक रूप में उपयोगी हैं, लेकिन अन्तिम दोनों अवस्थाएँ भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से निरर्थक हैं, क्योंकि उनसे शब्दों के निर्माण की क्रिया बिल्कुल स्पष्ट नहीं होती। अतः आपत्ति यह है कि भाषा की उत्पत्ति को समझने के लिए इस वाद या सिद्धान्त का समर्थन क्यों किया जाय? इसमें बतायी गयी पहली अवस्था तो मनोभावाभिव्यक्तिवाद के अनुकूल है और दूसरी अवस्था अनुकरणवाद के अनुकूल है। इसलिए यहाँ भी वही आपत्ति उठती है कि बहुत मर्यादित भावव्यंजक शब्दों और

अनुकरणात्मक शब्दों से भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई होगी ? यहाँ उठायी गयी दोनों आपत्तियों का निराकरण इंगितवाद से नहीं होता।

(8) भाषा की उत्पत्ति और टा-टा वाद या सिद्धान्त (Ta-ta Theory)—यह वाद या सिद्धान्त यह मानता है कि आरम्भ में मनुष्य काम करते समय अपने काम करने वाले अवयवों की गति के अनुकरण के रूप में जाने-अनजाने कुछ ध्वनियों और ध्वनियों के संयोग से शब्दों का मुख से उच्चारण करने लगा। फिर उन ध्वनियों और शब्दों से भाषा का विकास हो गया। इस वाद के नाम में जो 'टा-टा' शब्द है, वह किसी को विदा करते समय दाहिना हाथ उठाकर जिस विशिष्ट गति से हिलाया जाता है, उसी गति के अनुकरण के रूप में मुख से अपने आप निकलने वाला शब्द है। ऐसे ही शब्द भाषा की उत्पत्ति का कारण बन गये।

यह सिद्धान्त इंगित सिद्धान्त के अनुसार भाषा के विकासक्रम की तीसरी अवस्था के अनुकूल है। इसलिए यहाँ भी वही आपत्ति उठती है कि जो ध्वनियाँ या ध्वनियों के संयोगरूपी शब्द काम करने वाले अवयवों के अनुकरण के रूप में मुख से उच्चारित हुए। क्या वे अर्थपूर्ण शब्द बन गये थे या नहीं ? यदि इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर है, तो उन निरर्थक शब्दों से भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई होगी ? इन प्रश्नों का समाधान 'टा-टा' वाद से नहीं मिलता।

(9) भाषा की उत्पत्ति और संगीत वाद या सिद्धान्त (Sing-song Theory)—डार्विन और स्पेंसर ने सबसे पहले इस वाद का उल्लेख किया था। उनके बाद येसपर्सन ने भाषा की उत्पत्ति के मूल में संगीत वाद को स्वीकार करते हुए माना कि भाषा की उत्पत्ति खेल के रूप में हुई और मनुष्य के उच्चारण-अवयव खाली समय में गाने के खेल (Singing sport) के उच्चारण करने के आदी हो गये। इस प्रकार की मान्यता के कारण इस संगीत-सिद्धान्त को 'गायन-खेल-सिद्धान्त' (Singing sports theory) भी कहा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार आदि मानव भावुक होने के कारण गाने के खेल में उसे गुनगुनाने के रूप में कुछ अर्थरहित अक्षरों (Meaningless syllables) का उच्चारण करने में आनन्द मिलता रहा। फिर उसने विशिष्ट-विशिष्ट स्थिति में विशिष्ट-विशिष्ट अक्षरों का प्रयोग किया जिससे वे अर्थहीन अक्षर सार्थक बनकर भाषा की उत्पत्ति होने का कारण बन गये।

मनुष्य के भावुक होने का सम्बन्ध उसके प्रेम-भाव के साथ जोड़ा गया, इसलिए 'संगीत-सिद्धान्त' को 'प्रेम-सम्बन्ध' (Woo-woo theory) भी कहा जाने लगा।

इस वाद पर पहली आपत्ति यह उठती है कि वह केवल अनुमान पर ही क्यों आधारित है ? वह अपने समर्थन के लिए ठोस प्रमाणों को प्रस्तुत करते हुए यह क्यों सिद्ध नहीं कर सका कि किस प्रकार गाने के खेल में गुनगुनाने के रूप में अर्थहीन अक्षरों का उच्चारण होता रहा और फिर वे अक्षर किस प्रकार सार्थक शब्द बनकर

भाषा की उत्पत्ति हो गयी? दूसरी आपत्ति यह है कि मनुष्य की भावुकता का सम्बन्ध केवल प्रेम-भाव के साथ ही कैसे और क्यों रहा? इन आपत्तियों का निराकरण इस वाद से नहीं होता।

(10) **भाषा की उत्पत्ति और सम्पर्क वाद या सिद्धान्त** (Contact Theory)—बाल-मनोविज्ञान, पशु-मनोविज्ञान और अविकसित मानव के मनोविज्ञान का अध्ययन करने वाले मनोविज्ञानवेत्ता प्रो० जी० रेवेज (G. Revese) ने इस वाद या सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। 'सम्पर्कवाद' मानता है कि मनुष्य ने आपस में सम्पर्क बनाये रखने के लिए मुख से कुछ ध्वनियों का उच्चारण करता रहा। आरम्भ में मनुष्य ने भूख-प्यास आदि को दूसरे के साथ व्यक्त करने के लिए अपने उच्चारण-अवयवों से सम्पर्क ध्वनियों का उच्चारण किया जिससे भाषा के क्रिया-शब्द बन गये। उसके बाद विचारबोधक संज्ञा शब्द बन गये। इस प्रकार क्रिया शब्दों और संज्ञा शब्दों से भाषा का विकास हुआ।

इस वाद के अनुसार यह तर्कसम्मत है कि मनुष्य का समाज के भीतर जैसे-जैसे सम्पर्क बढ़ता रहा होगा, वैसे-वैसे नये-नये शब्दों के आधार पर भाषा विकसित होती रही होगी, लेकिन इस मत में मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित अनुमान को अधिक महत्व मिला है। इसलिए इस मत से निश्चित रूप से यह स्पष्ट नहीं होता कि मनुष्य ने आपस में सम्पर्क को बनाये रखने के लिए अपने मुख से किस प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण किया? उन ध्वनियों ने अर्थपूर्ण शब्दों का रूप किस प्रकार प्राप्त किया? फिर उन शब्दों से भाषा का विकास किस प्रकार होता रहा? इन प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर इस वाद से नहीं मिलते।

फिर भी प्रो० रेवेज ने क्रिया-शब्द की उत्पत्ति के बारे में और फिर संज्ञा शब्द की उत्पत्ति के बारे में जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, वे महत्वपूर्ण हैं।

(11) **भाषा की उत्पत्ति और समन्वयवाद या सिद्धान्त**—इस वाद को 'समन्वितवाद' या 'सिद्धान्त' भी कहा जाता है। प्रसिद्ध भाषा विज्ञानवेत्ता स्वीट ने पहले से प्रचलित भाषा-उत्पत्ति सम्बन्धी विविध वादों या सिद्धान्तों में से उपयोगी वादों या सिद्धान्तों के समन्वय के आधार पर भाषा की उत्पत्ति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। इसके लिए स्वीट ने निम्नलिखित तीन प्रकार के शब्दों के विकास-क्रम को स्वीकार कर लिया :

(प) भाषा की उत्पत्ति अनुकरणात्मक शब्दों के बनने के आधार पर आरम्भ हुई। उन अनुकरणात्मक शब्दों में ध्वन्यात्मक अनुकरणात्मक शब्दों का पहला क्रम रहा, जैसे भौं-भौं, म्याऊँ-म्याऊँ, कौवा आदि। फिर 'अनुरणनात्मक अनुकरणमूलक' शब्दों का दूसरा क्रम रहा, जैसे डिंग-डांग, खट-खट, ठक-ठक, झर-झर आदि। उसके बाद 'दृश्यात्मक अनुकरणमूलक' शब्दों का तीसरा क्रम रहा, जैसे जग-मग, चकाचक आदि।

(फ) भाषा के विकासक्रम में भावावेशव्यंजक या मनोभावाभिव्यंजक शब्द सहायक बन गये। भाषा विकासक्रम की इस दूसरी अवस्था में मनुष्य ने भावावेग में अपने भीतर के भावों की अभिव्यक्ति के लिए कुछ भावव्यंजक शब्द बनाये, जैसे वाह ! वाह !, ओह ! आह ! आदि।

(ब) भाषा के विकासक्रम की तीसरी अवस्था में मनुष्य ने भाषा के प्रौढ़ विकास के लिए प्रतीकात्मक (Symbolic) शब्दों को बनाना आरम्भ किया। मनुष्य ने प्रतीकात्मक शब्द बनाने के लिए 'भाव-संकेत' या 'इंगित' और 'ध्वनि समवाय' (Sound group) इन दोनों को महत्व का आधार बनाया।

मनुष्य अपने भीतर के भाव को एक संकेत अर्थात् एक प्रतीक के रूप में व्यक्त करने के लिए अपनी इच्छा के अनुसार ध्वनि समवाय का उपयोग करने लगा, जैसे मनुष्य ने पीने के लिए उपयोग में आने वाले द्रव विशेष का अर्थबोध हो, इसलिए 'प्+आ+न्+ई' इस ध्वनि समवाय के आधार पर **'पानी'** प्रतीकात्मक शब्द बनाया। विशिष्ट क्रिया का अर्थबोध हो, इसलिए 'प्+आ+न्+आ' इस ध्वनि समवाय से 'पाना' प्रतीकात्मक शब्द बनाया गया। खाने में आने वाले एक विशिष्ट पत्ते का अर्थ-बोध हो, इसलिए 'प्+आ+न्+अ' इस ध्वनि समवाय से 'पान' प्रतीकात्मक शब्द बनाया गया और एक विशिष्ट क्रिया का अर्थ-बोध हो, इसलिए 'प्+ई+न्+आ' इस ध्वनि समवाय से **'पीना'** प्रतीकात्मक शब्द बनाया गया। इस प्रकार मनुष्य ने प्रतीकात्मक शब्दों की उत्पत्ति के लिए अपनी इच्छा के अनुसार नये-नये ध्वनि समवाय का प्रयोग किया। इन ध्वनि समवाय रूपी अर्थात् ध्वनि प्रतीकों के समूह रूपी प्रतीकात्मक शब्दों के माध्यम से मनुष्य ने अपने भाव का संकेत अर्थात् इशारा किया। अर्थात् इस प्रकार की पद्धति से मनुष्य ने अपने भीतर के भावों को अभिव्यक्त किया।

भाषा के विकासक्रम में मनुष्य ने जीवन सम्बन्धी भिन्न-भिन्न बातों का अर्थ-बोध कराने के लिए नये-नये ध्वनि समवाय के रूप में नये-नये प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया। इस प्रकार के प्रतीकात्मक शब्द निश्चित अर्थ के बोधक बन गये, जैसे बच्चा धीरे-धीरे अपनी जननी के अर्थ में 'माँ' प्रतीकात्मक शब्द और अपने पिता के अर्थ में 'बाबा' प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग करता है। 'माँ' के भाई के अर्थ में 'मामा' और पिता के भाई के अर्थ में 'चाचा' या 'काका' प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की रीति से संज्ञा शब्द बनते गये और भाषा का विकास होता रहा।

भाषा के विकासक्रम में प्रतीकात्मक शब्द के रूप में सर्वनाम शब्द का भी प्रयोग होता रहा, जैसे बोलने वाले के सामने उपस्थित व्यक्ति का अर्थ-बोध कराने के लिए 'तू' इस (सर्वनाम रूपी) प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग होता है। इसी पद्धति से भाषा के विकासक्रम में सर्वनामरूपी प्रतीकात्मक शब्द भी सहायक बन गये।

भाषा के विकासक्रम में प्रतीकात्मक शब्द के रूप में क्रिया-शब्द का भी प्रयोग होता रहा। जैसे 'पीना' प्रतीकात्मक क्रिया-शब्द श्वास लेने के समान तरल द्रव भीतर ले जाना है। इस कारण से ही आरम्भ में पीने के लिए श्वास भीतर लेकर 'इंगित' या 'भावसंकेत' किया जाता रहा। इस प्रकार के भावसंकेत के आधार पर ही पीने की क्रिया का अर्थ-बोध कराने के लिए प्रतीकात्मक शब्द के रूप में संस्कृत भाषा में 'पिबामि' क्रिया-शब्द प्रचलित हो गया और वही अर्थ-बोध कराने के लिए हिन्दी भाषा में 'पीना' प्रतीकात्मक शब्द प्रचलित हो गया।

स्पष्ट है कि मनुष्य ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए ध्वनि समवाय के आधार पर अनेक प्रतीकात्मक शब्द बनाये होंगे और उन्हीं के आधार पर भाषा विकसित होती रही होगी।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य ने आरम्भ में स्थूल अर्थ का बोध कराने के लिए प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया होगा, लेकिन आगे चलकर मनुष्य ने अपने सूक्ष्म भावों और सूक्ष्म विचारों से सम्बन्धित सूक्ष्म अर्थ को व्यक्त करने के लिए प्रचलित प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग 'सादृश्य आदि के आधार पर' औपचारिक या लाक्षणिक रीति से करना आरम्भ किया, जैसे हिन्दी में एक विशिष्ट मृदुल पदार्थ का (स्थूल) अर्थ-बोध कराने के लिए 'मक्खन' प्रतीकात्मक शब्द रूढ़ है, परन्तु आगे चलकर विशिष्ट भाव से सम्बन्धित सूक्ष्म अर्थ को व्यक्त करने के लिए हिन्दी भाषा में 'मक्खन' इस प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग नवीन पद्धति से अर्थात् लाक्षणिकता से किया जाने लगा—'मक्खन लगाना'। यहाँ 'मक्खन लगाना' इस प्रयोग का सूक्ष्म अर्थ है—बहुत चापलूसी करना अर्थात् अपना काम बना लेने के लिए किसी की झूठी प्रशंसा करना।

इस प्रकार स्वीट के मतानुसार भावाभिव्यंजक, अनुकरणात्मक तथा प्रतीकात्मक शब्दों के आधार पर भाषा आरम्भ हुई। आगे चलकर भाषा के विकासक्रम में शब्दों पर नये-नये संस्कार होते रहे और शब्द सूक्ष्म अर्थबोधक भी बन गये।

स्पष्ट है कि स्वीट का समन्वयवाद भाषा की उत्पत्ति को जानने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।

4. भाषा के विविध रूप

भाषा विज्ञान अपने वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार जिस भाषा को स्वीकार करता है, वह एक भाषा समाज में आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने का उत्तम साधन बनी रहती है। एक भाषा-समाज में वह भाषा सबसे अधिक महत्व की होती है, इस कारण से ही उसके माध्यम से ही भाषा व्यवहार होता है।

(1) भाषा (मूल भाषा या सामान्य भाषा)—भाषा विज्ञान मानता है कि एक भाषा के आधार पर 'एक भाषा समाज' बना रहता है और उस एक भाषा समाज में एक-दूसरे के साथ अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने का सर्वोत्तम साधन या माध्यम वह भाषा ही होती है और वही भाषा 'मूल भाषा' या 'सामान्य भाषा' होती है।

लेकिन यह भी वस्तुस्थिति है कि एक भाषा समाज के भाषा व्यवहार में मूल या सामान्य भाषा विभिन्न रूपों में प्रचलित रहती है। मूल या सामान्य भाषा के विभिन्न रूप बने रहने के कुछ प्रमुख आधार हैं।

एक भाषा समाज में जो मूल या सामान्य भाषा प्रचलित रहती है, वह परम्परा के रूप में चली आयी **'परम्परागत भाषा'** होती है। इसलिए उस भाषा का 'इतिहास' होता है। अपने **'इतिहास के आधार'** पर भाषा कुछ रूप धारण कर लेती है, जिन्हें भाषा के **'ऐतिहासिक भेद'** माना जाता है, जैसे इतिहास के आधार पर ही अपने विकासक्रम में संस्कृत भाषा ही पाली भाषा बन गयी, फिर वही प्राकृत भाषाएँ बन गयीं और उसके बाद वही हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ बन गयीं। ये सब एक ही संस्कृत भाषा के ऐतिहासिक रूप या भेद हैं।

एक भाषा समाज एक विशिष्ट प्रदेश में रहता है जिसकी अपनी एक भौगोलिक सीमा होती है और भाषा की भी वही एक भौगोलिक सीमा होती है। अपनी भौगोलिक सीमा के भीतर वह विशिष्ट प्रदेश अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति के कारण कुछ विभागों में बँटा रहता है। परिणामस्वरूप अर्थात् इस प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर एक ही भाषा उस विशिष्ट प्रदेश के अलग-अलग भागों में अलग-अलग ढंग से बोली जाती है, जिससे एक ही भाषा के अर्थात् मूल या सामान्य भाषा के बोलने के व्यवहार में विभिन्न रूप बनकर रहते हैं। इस प्रकार **'भूगोल के आधार'** पर एक ही मूल या सामान्य भाषा के उपभाषा, बोली, उपबोली (स्थानीय बोली) के रूप में विविध रूप बोलने के व्यवहार में प्रचलित रहते हैं।

एक भाषा समाज में भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से एक ही मूल या सामान्य भाषा का प्रयोग अलग-अलग रूपों में किया जाता है। परिणामस्वरूप **'प्रयोग के आधार पर'** भी एक ही मूल या सामान्य भाषा के विविध रूप प्रचलित रहते हैं, जो इस प्रकार के होते हैं—परिनिष्ठित भाषा, राज भाषा, राज्य भाषा, राष्ट्र भाषा, साहित्यिक भाषा, व्यावसायिक भाषा, अपभाषा, टकसाली भाषा, गुप्त भाषा, राजनयिक भाषा, कानूनी भाषा, जातीय भाषा, शुद्ध भाषा, जीवित भाषा, मृत या अप्रचलित भाषा आदि।

'निर्माता के आधार' को भी लेकर भाषा के दो रूप होते हैं। यदि भाषा का निर्माता एक समाज है और उस एक समाज के भीतर वह भाषा परम्परागत रूप से

चली आ रही है, तो उसे 'भाषा' कहा जाता है; लेकिन जब एक-दो व्यक्ति किसी भाषा के निर्माता बन जाते हैं, तब उस भाषा को 'कृत्रिम भाषा' कहा जाता है।

इस प्रकार एक भाषा समाज के भीतर ही **भाषा** अर्थात् मूल भाषा अर्थात् **सामान्य भाषा** (Language in General) **इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता** इन चार प्रधान आधारों पर विविध रूपों में उपयोग में आती रहती है। इसका अर्थ यह है कि एक ही मूल या सामान्य भाषा एक भाषा समाज के भाषा व्यवहार में अनेक रूपों में प्रचलित रहती है। इस कारण से ही भाषा के विविध रूप भाषा विज्ञान के अध्ययन का विषय बन जाते हैं।

(2) **व्यक्ति बोली** (Idiolect)—एक भाषा समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से भाषा बोलता रहता है। इसलिए व्यक्ति के अलग-अलग ढंग से बोलने को **'व्यक्ति बोली'** कहा जाता है। 'व्यक्ति बोली' को भाषा का लघुत्तम रूप माना जाता है। व्यक्ति जीवन भर विशिष्ट ढंग से ही बोलता रहता है, इसलिए उसका बोलना व्यक्ति बोली बनकर रह जाता है।

(3) **उप बोली या स्थानीय बोली** (Sub Dialect or Local Dialect)—भूगोल पर आधारित भाषा का पहला रूप उपबोली या स्थानीय बोली है, जो उस एक भाषा समाज के विशिष्ट प्रदेश के छोटे से क्षेत्र में विशिष्ट पद्धति से बोलने के रूप में प्रचलित रहता है। वस्तुस्थिति यह है कि बहुतसी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप ही उपबोली या स्थानीय बोली है। इस वस्तु स्थिति को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि "एक भाषा समाज के विशिष्ट प्रदेश के भीतर छोटे से क्षेत्र में बोली जाने वाली व्यक्ति बोलियों का एक ऐसा सामूहिक रूप जो व्यक्ति बोली और अपने में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं रखता, वह उपबोली या स्थानीय बोली कहलाया जाता है।" स्पष्ट है कि व्यक्ति बोलियों की कुछ समान अर्थात् सामान्य विशिष्टता के आधार पर उपबोली या स्थानीय बोली प्रचलित रहती है, जिसका ढंग कुछ अलग ही होता है।

(4) **बोली** (Dialect)—एक भाषा समाज के विशिष्ट प्रदेश के थोड़े बड़े क्षेत्र में भाषा के बोलने के व्यवहार में कुछ उपबोलियों की समान अर्थात् सामान्य विशिष्टता के आधार पर बोली प्रचलित रहती है, जिसका ढंग उपबोलियों तथा भाषा से कुछ अलग ही होता है। इस प्रकार की वास्तविकता को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि "एक भाषा समाज के विशिष्ट प्रदेश के भीतर थोड़े बड़े-से क्षेत्र में बोली जाने वाली उपबोलियों का एक ऐसा सामूहिक रूप जो उपबोली और अपने में ध्वनि, रूप, वाक्य रचना, शब्द समूह तथा अर्थ की दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं रखता, वह बोली कहलाया जाता है।" इससे सूचित होता है कि बोली एक ओर आपस में कुछ मिलती-जुलती उपबोलियों के साथ सम्बन्ध रखती है, तो दूसरी ओर

अपनी माँ जैसी मूल या सामान्य भाषा के साथ सम्बन्ध रखती है। इस प्रकार की बोली को हिन्दी भाषा विज्ञान में 'विभाषा' भी कहा जाता है।

भाषा और बोली : परस्पर सम्बन्ध और अन्तर

(1) भाषा अर्थात् मूल भाषा या सामान्य भाषा एक भाषा समाज के विशिष्ट प्रदेश के भीतर प्रचलित रहती है, इसलिए भाषा व्यापक होती है अर्थात् वह एक बड़ा रूप होती है।

लेकिन भाषा की तुलना में बोली उसी भाषा का ही एक छोटा रूप होने से वह व्यापक नहीं होती। बोली की व्याप्ति मर्यादित होती है।

(2) बड़ा रूप होने से भाषा का क्षेत्र विस्तृत या विशाल होता है। भाषा पूरे विशिष्ट प्रदेश में बोली जाती है।

लेकिन छोटा रूप होने से बोली का क्षेत्र मर्यादित होता है, क्योंकि भाषा जिस पूरे विशिष्ट प्रदेश में बोली जाती है, उसी विशिष्ट प्रदेश के छोटे क्षेत्र में बोलने के लिए बोली का प्रयोग होता है।

(3) भाषा जिस विशाल प्रदेश में बोली जाती है, उसी विशाल प्रदेश के छोटे-छोटे भागों में उसी भाषा के साथ सम्बन्ध रखने वाली अर्थात् उसी भाषा से ही उत्पन्न हुईं अलग-अलग बोलियाँ बोलने के लिए उपयोग में लायी जाती है।

एक बोली में कोई दूसरी बोली या दूसरी भाषा बोलने के लिए प्रचलित नहीं होती, लेकिन एक बोली के छोटे क्षेत्र में एक-दूसरी से मिलती-जुलती कुछ उप बोलियाँ बोलने के लिए उपयोग में आती रहती हैं, जैसे हिन्दी भाषा की 'बुन्देली बोली' में लोधान्ती, राठौरी तथा पँवारी आदि उपबोलियाँ प्रचलित हैं। हिन्दी की खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियों में इस प्रकार की अनेक उपबोलियाँ प्रचलित हैं।

(4) दो या विभिन्न भाषाओं में बोधगम्यता नहीं होती। जैसे—

हिन्दी भाषा में—लड़का बोला। लड़के बोले।

मराठी भाषा में—मुलगा बोलला. मुलगे बोलले.

अंग्रेजी भाषा में—Boy talked. Boys talked.

यहाँ उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी इन विभिन्न भाषाओं में परस्पर बोधगम्यता का अभाव होने के कारण, जब तक एक भाषा-भाषी दूसरी भाषा सीख नहीं लेता तब तक उपर्युक्त तीनों भाषाओं के वाक्यों का अर्थ किसी की समझ में नहीं आएगा।

इसके विरुद्ध एक भाषा की विभिन्न बोलियों में परस्पर बोधगम्यता होने के कारण एक बोली बोलने वाला दूसरी बोली के वाक्यों का भी अर्थ समझ सकता है। जैसे—

हिन्दी भाषा में—मैं बोला। हम बोले।

खड़ी बोली में—मैं बोल्ला। हम बोल्ले।
हरियाणी बोली में—मैं बोल्या। हम बोल्ये।
कन्नौजी बोली में—हौं बोलो। हम बोले।
बुन्देली बोली में—मैं बोलो। हम बोले।

हिन्दी भाषा की उपर्युक्त बोलियों के वाक्यों का अर्थ खड़ी बोली वाला समझ सकता है, हरियाणी बोली वाला समझ सकता है, कन्नौजी बोली वाला समझ सकता है, बुन्देली बोली वाला समझ सकता है या ब्रज बोली बोलने वाला भी समझ सकता है, क्योंकि एक ही हिन्दी भाषा की बोलियाँ होने के कारण इन बोलियों में परस्पर बोधगम्यता अर्थात् आपस में बोध कराने की योग्यता है। वास्तव में ध्वनि, रूप, वाक्य रचना, शब्द समूह, अर्थ की दृष्टि से बोलियों में बहुत अधिक साम्य होता है और अत्यल्प अन्तर होता है।

(5) जिस विशिष्ट प्रदेश में एक भाषा का प्रयोग होता है, उसी भाषा का एक रूप व्याकरण के नियमों पर आधारित शुद्ध होता है, जिसे 'परिनिष्ठित भाषा' या आदर्श भाषा (Standard language) या 'मानक भाषा' कहा जाता है। राज्य तथा केन्द्र के भी प्रशासनिक व्यवहार में, शिक्षण, कानून, समाचार-पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, साहित्य आदि के क्षेत्र में परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग 'मौखिक भाषा' तथा 'लिखित भाषा' के रूप में किया जाता है।

इसके विरुद्ध केवल बोलने के लिए बोली का प्रयोग होता है, जिससे बोली अधिक परिवर्तनशील बनी रहती है। इससे बोली का कोई परिनिष्ठित रूप नहीं होता।

(6) व्याकरण के नियमों के साथ बँधकर रहने के कारण भाषा में परिवर्तन के लिए विशेष स्थान नहीं होता।

लेकिन बोली व्याकरण के नियमों के साथ बँधकर रहना पसन्द नहीं करती। वह अपने लिए किसी प्रकार का नियन्त्रण स्वीकार नहीं करती। इसलिए बोली में परिवर्तन के लिए विशेष स्थान होता है।

(7) भाषा में परिवर्तन होता भी है, तो वह बहुत धीरे-धीरे और कम मात्रा में होता है।

इसके विरुद्ध बोली में परिवर्तन होता ही है और वह भी जल्दी-जल्दी और बहुत अधिक मात्रा में होता है। परिणामस्वरूप बहुत अधिक परिवर्तनात्मक विकास के आधार पर कोई बोली भाषा बनने में भी सफल हो जाती है। हिन्दी भाषा की खड़ी बोली के साथ ऐसा ही हुआ है। भारत देश के अर्थात् अपने राष्ट्र के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में जन-जागरण के महत्वपूर्ण कार्य के लिए भारतीय नेताओं ने और लोगों ने भी खड़ी बोली का खुलकर प्रयोग किया। फलतः खड़ी बोली ने अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ ऐसा विकास कर लिया कि वही खड़ी बोली हिन्दी भाषा बनकर

रह गयी और वही हिन्दी परिनिष्ठित भाषा के रूप में स्वतन्त्र भारत सरकार की राजभाषा और उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश आदि राज्यों की राज्यभाषा बन गयी है। अतः कोई बोली ही अत्यधिक विकास के आधार पर भाषा भी बन सकती है।

इस प्रकार परस्पर साम्य के आधार पर भाषा और बोली आपस में महत्व-पूर्ण सम्बन्ध रखती हैं, फिर भी कुछ अन्तर या भेद के आधार पर भाषा, भाषा बनी रहती और बोली, बोली बनी रहती है।

बोलियों के बनने के कारण

एक भाषा समाज जिस विशिष्ट प्रदेश में रहता है, उस प्रदेश की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति के कारण उस प्रदेश के छोटे-छोटे भागों में एक ही भाषा की निम्नलिखित बोलियाँ बोलने में प्रचलित रहती हैं :

(1) एक भाषा समाज जिस बड़े प्रदेश में होता है, वह बड़ा प्रदेश बड़े-बड़े पहाड़ों के कारण भीतर ही भीतर कुछ ऐसे भागों में बँटा रहता है, जिन भागों में एक ही भाषा बोलने वाले लोगों का एक-दूसरे से मिलने के लिए आना-जाना बहुत कम होता रहता है। परिणामस्वरूप एक ही भाषा उन छोटे-छोटे भागों में अलग-अलग ढंग से बोली जाती है। इससे एक ही भाषा की अलग-अलग बोलियाँ बनी रहती हैं।

(2) यदि उस बड़े प्रदेश में घने जंगल होते हैं, तो वह बड़ा प्रदेश छोटे-छोटे भागों में बँट रहता है, जिसके परिणामस्वरूप हरेक भाग से एक ही भाषा अलग अलग ढंग से बोली जाती है और एक भाषा की विभिन्न बोलियाँ बनी रहती हैं।

(3) यदि उस बड़े प्रदेश में बड़ी-बड़ी नदियाँ होती हैं, तो वह बड़ा प्रदेश छोटे-छोटे भागों में बँटा रहता है और उन छोटे-छोटे भागों में एक ही भाषा अलग-अलग ढंग से बोली जाती है, जिससे एक ही भाषा की विविध बोलियाँ बनी रहती हैं।

इस प्रकार विशिष्ट-विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण और यातायात की असुविधा के कारण भी एक भाषा समाज के बड़े प्रदेश में एक ही भाषा की विभिन्न बोलियाँ बनी रहती हैं, जो छोटे-छोटे भागों में बोली जाती हैं। हिन्दी भाषा बहुत बड़े प्रदेश में बोली जाती है, जो बड़ा प्रदेश छोटे-छोटे भागों में बँटा रहने से एक ही हिन्दी भाषा की लगभग 17 बोलियाँ बोलने के लिए उपयोग में लायी जाती हैं, जिनसे खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली, भोजपुरी आदि प्रमुख बोलियाँ हैं।

(5) उपभाषा (भाषा, उपभाषा और बोली में परस्पर सम्बन्ध तथा अन्तर) —यदि एक भाषा समाज बहुत बड़े प्रदेश में बिखरा रहता है, तो वह बहुत बड़ा प्रदेश पहाड़ों, घने जंगलों और बड़ी नदियों के कारण बड़े-बड़े और छोटे-छोटे भागों में विभाजित हुआ रहता है। तब यातायात की असुविधा के कारण एक ही भाषा बड़े-

बड़े भागों में उपभाषाएँ बनी रहती हैं और छोटे-छोटे भागों में बोलियाँ बनी रहती हैं। भौगोलिक कारणों से ही उपभाषा बनी रहती है।

एक ही भाषा प्रत्येक उपभाषा के रूप में अलग-अलग ढंग से बोली जाती है और फिर वही भाषा प्रत्येक बोली के रूप में अलग-अलग ढंग से बोली जाती है। ऐसी स्थिति में पारस्परिक बोधगम्यता के आधार पर उपभाषाओं का जो सामूहिक रूप होता है, वही मूल या सामान्य भाषा होती है। ठीक इसी तरह पारस्परिक बोधगम्यता के आधार पर कुछ बोलियों का जो सामूहिक रूप होता है, वही एक प्रकार की उपभाषा होती है। इस प्रकार पारस्परिक बोधगम्यता के आधार पर एक ही भाषा की बोलियों के अलग-अलग उपभाषा के रूप में पहचाने जाते हैं। अतः भाषा, उपभाषा और बोली के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं :

(1) भाषा, उपभाषा और बोली एक ही भाषा के रूप हैं, जो पारस्परिक बोधगम्यता के आधार पर एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित होते हैं।

(2) भाषा का एक रूप व्याकरण पर आधारित होता है, जिसे 'परिनिष्ठित भाषा' कहा जाता है। प्रशासनिक व्यवहारों में तथा शिक्षण, समाचारपत्र, आकाश-वाणी, दूरदर्शन, साहित्य आदि के क्षेत्रों में परिनिष्ठित भाषा का ही प्रयोग मौखिक तथा लिखित भाषा के रूप में किया जाता है। इस प्रकार की परिनिष्ठित भाषा और उपभाषा में कुछ अन्तर बना रहता है। इसके दो कारण हैं। एक कारण यह है कि उपभाषा परिनिष्ठित भाषा जैसी व्याकरण के नियमों के साथ कठोरता से बँधी रहती नहीं है। दूसरा कारण यह है कि उपभाषा का उपयोग केवल बोलने के लिए मौखिक भाषा के रूप में ही होता है। इन दो कारणों से उपभाषा भाषा का ही एक शिथिलक्षम तथा थोड़ा अधिक परिवर्तनशील रूप है।

(3) प्रत्येक उपभाषा पारस्परिक बोधगम्यता के आधार पर कुछ बोलियों का सामूहिक रूप होती है। इस कारण से ही एक ही हिन्दी भाषा की पाँच प्रकार की उपभाषाएँ हैं। खड़ीबोली, हरियाणी (बाँगरू), ब्रजभाषा, बुन्देली और कन्नौजी इन बोलियों का सामूहिक रूप ही **'पश्चिमी हिन्दी'** उपभाषा है। अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी इन बोलियों का सामूहिक रूप ही **'पूर्वी हिन्दी'** उपभाषा है। भोजपुरी, मगधी और मैथिली इन बोलियों का सामूहिक रूप ही **'बिहारी हिन्दी'** उपभाषा है। मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी इन बोलियों का सामूहिक रूप ही **'राजस्थानी हिन्दी'** उपभाषा है। गढ़वाली और कुमायूँनी इन बोलियों का सामूहिक रूप ही **'पहाड़ी हिन्दी'** उपभाषा है।

(4) एक ही भाषा की सभी उपभाषाएँ पारस्परिक बोधगम्यता अर्थात् आपस में बोध कराने की क्षमता रखती हैं। इसलिए ही हिन्दी भाषा की पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी ये पाँचों

उपभाषाएँ पारस्परिक बोधगम्यता रखती हैं। इस कारण से ही इन उपभाषाओं में से कोई भी उपभाषा बोलने वाला व्यक्ति अन्य उपभाषाओं में भी जो कुछ बोला जाता है, उसे समझ सकता है।

(5) वास्तव में 'उपभाषा', भाषा और बोली को जोड़ने वाली बीच की कड़ी होती है, क्योंकि उपभाषा एक ओर से भाषा के साथ सम्बन्धित होती है, तो दूसरी ओर से पारस्परिक बोधगम्यता रखने वाली बोलियों के सामूहिक रूप के साथ सम्बन्धित होती है। इस कारण से ही सबसे छोटा क्षेत्र बोली का होता है, उससे बड़ा क्षेत्र उपभाषा का होता है और उससे भी अर्थात् सबसे बड़ा क्षेत्र भाषा का होता है।

इस प्रकार बोलने के लिए एक ही भाषा अर्थात् मूल भाषा अर्थात् सामान्य भाषा उपभाषा बनी रहती है और बोली भी बनी रहती है।

(6) **परिनिष्ठित भाषा** (Standard Language)—भाषा के ही जिस रूप को अंग्रेजी भाषा में 'स्टैंडर्ड लैंग्वेज' कहते हैं, उसे ही हिन्दी में **'परिनिष्ठित भाषा'** या **'आदर्श भाषा'** या **'मानक भाषा'** कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा में 'स्टैंडर्ड लैंग्वेज' के लिए 'Koine' शब्द का भी प्रयोग होता है, इसलिए हिन्दी में 'आदर्श भाषा' को 'टकसाली भाषा' भी कहा जाता है। 'परिनिष्ठित भाषा' की निम्नलिखित विशेषताएँ महत्वपूर्ण हैं—

(1) वास्तव में एक भाषा समाज के भीतर प्रयुक्त होने वाली मूल भाषा या सामान्य भाषा के ही विशिष्ट रूप को परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। एक भाषा समाज अपनी भाषा के परिनिष्ठित रूप को 'शुद्ध भाषा' के रूप में आदर्श मानता रहता है। इसलिए परिनिष्ठित भाषा को **'आदर्श भाषा'** या **'मानक भाषा'** भी कहा जाता है।

(2) एक भाषा समाज की भाषा का व्याकरण ही परिनिष्ठित भाषा का मुख्य आधार होता है। इसलिए परिनिष्ठित भाषा व्याकरण के विशिष्ट नियमों से नियन्त्रित होती है। परिणामस्वरूप परिनिष्ठित भाषा व्यवस्थित और शुद्ध होती है।

(3) व्यवस्थित और शुद्ध होने के कारण परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग शासन के विविध व्यवहारों में तथा कानून, शिक्षण, साहित्य, समाचारपत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि के क्षेत्रों में होता रहता है। इन सभी क्षेत्रों में 'आदर्श भाषा' के रूप में ही परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग होता है।

(4) इन सभी क्षेत्रों में परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग दो रूपों में होता है। उनमें से एक रूप को **'मौखिक भाषा'** कहते हैं, जिसका उपयोग बोलने के लिए किया जाता है। दूसरे रूप को **'लिखित भाषा'** कहते हैं, जिसका उपयोग लिखने के लिए किया जाता है। जब 'लिखित भाषा' के रूप में परिनिष्ठित भाषा का उपयोग किया जाता है, तब उसके लिए एक विशिष्ट लिपि का उपयोग किया जाता है,

जैसे परिनिष्ठित हिन्दी के लिखित रूप के लिए 'देवनागरी लिपि' का प्रयोग किया जाता है।

(5) जब विशिष्ट लिपि के सहयोग से लिखित भाषा के रूप में परिनिष्ठित भाषा का उपयोग होता है, तब प्रौढ़ भाषा और बड़े-बड़े वाक्यों का उपयोग होता है। इसके विरुद्ध मौखिक भाषा के रूप में परिनिष्ठित भाषा का उपयोग करते समय अधिक सरल भाषा और छोटे-छोटे वाक्यों का उपयोग किया जाता है; क्योंकि बोलते समय सुनने वाले को सहज बोध होना आवश्यक होता है।

(6) परिनिष्ठित भाषा ही किसी राष्ट्र की सरकार की 'राजभाषा' बन जाती है और राष्ट्र के भीतर राज्य सरकार की 'राज्य भाषा' बन जाती है। इससे राष्ट्र तथा राज्य के कार्यालयीन व्यवहारों में परिनिष्ठित भाषा का ही उपयोग किया जाता है।

(7) परिनिष्ठित भाषा व्याकरण के नियमों पर सुव्यवस्थित तथा शुद्ध होती है, इसलिए वह अपने में किसी प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार करना पसन्द नहीं करती। कभी व्याकरण के नियम में परिवर्तन होने पर इसमें थोड़ा परिवर्तन हो जाता है।

इस प्रकार परिनिष्ठित भाषा एक महत्वपूर्ण भाषा होती है, जो अपनी व्याकरणनिष्ठ शुद्धता के आधार पर मूल या सामान्य भाषा के साथ अन्तर रखती है।

(7) राज्यभाषा—एक राष्ट्र के अन्तर्गत जो विविध राज्य होते हैं, वे अपने-अपने राज्य की मूल भाषा या सामान्य भाषा के परिनिष्ठित रूप को राज्यभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं। 'राज्य भाषा' की निम्नलिखित विशेषताएँ महत्वपूर्ण हैं—

(1) राज्य के भीतर जो मूल या सामान्य भाषा बहुत महत्वपूर्ण होती है और बहुत अधिक लोगों के द्वारा उपयोग में लायी जाती है वही भाषा व्याकरण के नियमों के आधार पर 'परिनिष्ठित भाषा' बनकर रहती है और उसे ही राज्यभाषा के रूप में स्वीकार करके प्रशासनिक व्यवहार में उसका उपयोग किया जाता है।

(2) राज्यभाषा के लिए राष्ट्र के संविधान की मान्यता की आवश्यकता होती है। संविधान की मान्यता मिलने के पश्चात् राज्य की महत्वपूर्ण भाषा राज्यभाषा बन जाती है। स्वतन्त्र भारत के संविधान में विभिन्न भाषाओं को भिन्न-भिन्न राज्यों की राज्यभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, जैसे महाराष्ट्र के लिए राज्यभाषा के रूप में भारत के संविधान ने 'मराठी' भाषा को स्वीकार किया है, 'कन्नड़' भाषा को कर्नाटक के लिए, 'मलयालम' भाषा को केरल के लिए, 'उड़िया' भाषा को ओरिसा के लिए, बंगाली भाषा को बंगाल के लिए, 'आसामी' भाषा को आसाम के के लिए, 'कश्मीरी' भाषा को कश्मीर के लिए, 'पंजाबी' भाषा को पंजाब के लिए 'गुजराती' भाषा को गुजरात के लिए, 'हिन्दी' भाषा को हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और दिल्ली के लिए राज्यभाषा के

रूप में स्वीकार किया है। प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार अपने प्रशासनिक व्यवहार में अपनी-अपनी राज्यभाषा का ही उपयोग करती है।

(3) राज्य के प्रशासकीय व्यवहार में राज्यभाषा का उपयोग मौखिक रूप में तथा लिखित रूप में भी किया जाता है। राज्यभाषा के लिखित रूप के लिए संविधान की मान्यता के अनुसार एक विशिष्ट लिपि का उपयोग किया जाता है। इसलिए ही संविधान की मान्यता के अनुसार मराठी और हिन्दी राज्यभाषा के लिखित रूप के लिए देवनागरी लिपि का ही उपयोग किया जाता है।

(4) राज्य के भीतर व्यापक रूप से राज्यभाषा का उपयोग किया जाता है। राज्य के प्रशासनिक व्यवहार में, कानून, शिक्षण, साहित्य, समाचारपत्र, आकाश-वाणी, दूरदर्शन आदि के क्षेत्रों में भी राज्यभाषा का उपयोग किया जाता है।

(5) प्रत्येक राज्य अपने राज्य के प्रशासनिक व्यवहार में राज्यभाषा का ही उपयोग करता है, लेकिन केन्द्र सरकार के साथ प्रशासनिक पत्र-व्यवहार के लिए राज्यभाषा के बदले राजभाषा का उपयोग करना होता है। इसलिए महाराष्ट्र सरकार भारत सरकार के साथ राजभाषा हिन्दी में पत्र-व्यवहार करती है।

(6) राज्यभाषा व्याकरणनिष्ठ होने के कारण उसमें बहुत कम परिवर्तन होता है।

(7) जो केन्द्र सरकार की राजभाषा होती है, वही किसी राज्य की राज्य भाषा भी होती है, जैसे भारत के केन्द्र सरकार की राजभाषा हिन्दी ही उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और हरियाणा की राज्य भाषा भी है।

इस प्रकार राज्य में राज्यभाषा महत्व की होती है जिसे अंग्रेजी में 'Official Language of State' कहते हैं।

(8) राजभाषा—'राजभाषा' उसे कहते हैं जो केन्द्र सरकार की कार्यालयीन भाषा (Official Language of Central Government) होती है। 'राजभाषा' की निम्नलिखित विशेषताएँ महत्वपूर्ण हैं—

(1) स्वतन्त्र राष्ट्र की केन्द्र सरकार अपने कार्यालयीन व्यवहार के लिए किसी भाषा के परिनिष्ठित रूप को 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार करती है।

(2) 'राजभाषा' परिनिष्ठित भाषा के रूप में ऐसी भाषा होती है जिसे राष्ट्र के बहुत से शिक्षित लोग समझ सकते हैं और जिसमें बोल सकते हैं तथा लिख सकते हैं।

(3) 'राजभाषा' अपनी मूल भाषा या सामान्य भाषा के व्याकरण के नियमों से नियन्त्रित शुद्ध तथा सुव्यवस्थित भाषा होती है, तभी तो राजभाषा परिनिष्ठित भाषा होती है।

(4) स्वतन्त्र राष्ट्र का संविधान किसी महत्वपूर्ण परिनिष्ठित भाषा को केन्द्र सरकार के कार्यालयीन व्यवहार के लिए 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार कर लेता है।

संविधान की मान्यता से ही कोई परिनिष्ठित भाषा 'राजभाषा' बन जाती है, जैसे स्वतन्त्र भारत के संविधान के 17वें भाग में अनुच्छेद (धारा) 343 से 351 के भीतर परिनिष्ठित हिन्दी भाषा को 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार कर लिया गया है और उसके विकास तथा प्रचार के लिए अनेक उपायों को स्वीकार कर लिया गया है।

(5) संविधान की मान्यता मिलने के कारण स्वतन्त्र राष्ट्र को केन्द्र सरकार अर्थात् केन्द्रीय शासन अपने प्रशासनिक व्यवहारों में राजभाषा का ही प्रयोग करता है। इस कारण से ही भारत का केन्द्रीय शासन अपने प्रशासनिक व्यवहारों में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग करता है।

(6) स्वतन्त्र राष्ट्र के प्रशासनिक व्यवहारों में राजभाषा का उपयोग 'मौखिक भाषा' तथा 'लिखित भाषा' के रूप में भी किया जाता है। उसके लिखित रूप के लिए संविधान के द्वारा ही किसी एक लिपि को स्वीकार किया जाता है। इसलिए स्वतन्त्र भारत के संविधान ने अपने 17वें भाग के अनुच्छेद 343(1) में हिन्दी को राजभाषा की मान्यता देते हुए उसके लिखित रूप के लिए 'देवनागरी लिपि' अर्थात् 'नागरी लिपि' को भी 'राष्ट्रलिपि' की मान्यता दी है। इसलिए ही भारत का संघ शासन अर्थात् केन्द्र शासन अपने प्रशासनिक व्यवहारों में राजभाषा हिन्दी के लिखित रूप के लिए 'देवनागरी लिपि' का प्रयोग करता है।

(7) राजभाषा का उपयोग राष्ट्र के प्रशासनिक व्यवहारों में तो होता ही है, साथ ही साथ राष्ट्र के कानून के क्षेत्र में, शिक्षण के क्षेत्र में, समाचारपत्र के क्षेत्र में, आकाशवाणी के क्षेत्र में, दूरदर्शन के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में तथा साहित्य के क्षेत्र में भी राजभाषा का उपयोग किया जाता है। इसलिए ही राजभाषा हिन्दी का उपयोग राष्ट्र के प्रशासनिक व्यवहारों के साथ-साथ कानून, शिक्षण, साहित्य, समाचारपत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में भी किया जाता है। तभी तो भारत के संविधान के 17वें भाग के अनुच्छेद 348 में उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों, संसद और विधानमण्डलों में प्रस्तुत किये जाने वाले विधेयकों की भाषा के रूप में राजभाषा हिन्दी को स्वीकार किया गया है।

(8) राजभाषा व्याकरण के नियमों से सुनियन्त्रित होती है, इसलिए वह कम परिवर्तनशील होती है।

(9) प्रशासन आदि की सुविधा के अनुसार राजभाषा में अनेक नये पारिभाषिक शब्द उपयोग में लाये जाते हैं, जिससे उसका शब्द भण्डार बढ़ता रहता है। राजभाषा हिन्दी का भी शब्द-भण्डार इसी तरह बढ़ता जा रहा है।

(9) **राष्ट्रभाषा** (National Language)—जो भाषा पूरे राष्ट्र में व्याप्त रहती है, उसे स्वतन्त्र राष्ट्र में 'राष्ट्रभाषा' का सम्मान मिलता है। 'राष्ट्र भाषा'

को अंग्रेजी भाषा में 'नेशनल लैंग्वेज' कहते हैं। 'राष्ट्रभाषा' की कुछ निम्नलिखित विशेषताएँ महत्वपूर्ण होती हैं—

(1) जिस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है, वह उस राष्ट्र में प्रायः पहले से ही प्रचलित होती है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्र की संस्कृति के साथ पहले से ही उस भाषा का महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। इस कारण से ही राष्ट्र की संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए तथा राष्ट्र में भावात्मक एकता को बनाये रखने के लिए 'राष्ट्रभाषा' के रूप में उस भाषा को स्वीकार किया जाता है और उसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वतन्त्र राष्ट्र के संविधान की भी मान्यता मिलती है।

स्वतन्त्र भारत में लोगों ने हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा की मान्यता दी है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि भारत राष्ट्र में बहुत पहले से हिन्दी भाषा प्रचलित है और भारत की संस्कृति के साथ उसका अभिन्न सम्बन्ध है। इसलिए ही लोगों ने राष्ट्र की संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्र में भावात्मक एकता को बनाये रखने के लिए हिन्दी भाषा को 'राष्ट्रभाषा' के रूप में अपने आप स्वीकार कर लिया है।

(2) जिस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है, उसी भाषा के बोलने वालों की संख्या पहले से ही सबसे अधिक होती है, उस भाषा को 'राष्ट्रभाषा' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

भारत में पहले से ही हिन्दी बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है, क्योंकि बहुत पहले से ही भारत के विभिन्न प्रदेशों में हिन्दी भाषा का उपयोग लोगों से किया जाता है। इसलिए ही महाराष्ट्र के नामदेव आदि सन्तों ने और अन्य प्रदेशों के सन्तों ने भी अपनी भक्ति भावना को हिन्दी भाषा के गीतों के माध्यम से व्यक्त किया है। इसका अर्थ यह है कि भारत में पहले से ही हिन्दी भाषा के बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण भी लोगों ने स्वतन्त्र भारत की 'राष्ट्रभाषा' के रूप में हिन्दी भाषा को स्वीकार कर लिया है।

(3) जिसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है, उस भाषा का स्वरूप बहुत अधिक लोगों की समझ में आने वाला होता है। इसलिए राष्ट्र के बहुत से लोग उस भाषा में बोलने का प्रयत्न कर सकते हैं और एक-दूसरे के बोलने को सहज समझ सकते हैं।

हिन्दी भाषा का स्वरूप बहुत सरल होने के कारण भारत राष्ट्र के बहुत-से लोग बड़ी सहजता से हिन्दी का उपयोग कर सकते हैं और एक-दूसरे की बातों को सहज समझ सकते हैं। इस कारण से ही भारत राष्ट्र के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में जन-जागरण के लिए हिन्दी भाषा का ही सबसे अधिक उपयोग किया गया था। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रमुख नेता महात्मा गाँधीजी उन दिनों में ही हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा मान लेते थे। स्वतन्त्र भारत में भी अत्यधिक सरल हिन्दी को लोगों ने राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया। इसी कारण बहुत से लोग अपने भावों और

विचारों के आदान-प्रदान के लिए बड़ी सहजता से हिन्दी भाषा का उपयोग करते हैं। इसके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न स्थलों पर हिन्दी भाषा अधिक से अधिक सरल बन गयी है। इसी कारण ही बम्बई में बोली जाने वाली हिन्दी भाषा को 'बम्बइया हिन्दी' और कलकत्ता में बोली जाने वाली हिन्दी भाषा को 'कलकतिया हिन्दी' कहा जाने लगा है। इस प्रकार सरल स्वरूप के कारण ही भारत के लोगों ने हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया है।

(4) जिसे राष्ट्रभाषा माना जाता है, उसका उपयोग राष्ट्र के बहुत से लोग मौखिक तथा लिखित रूप में करते हैं।

(5) लिखित रूप में राष्ट्रभाषा का उपयोग करते समय उसके लिए एक विशिष्ट लिपि या राष्ट्र लिपि का उपयोग किया जाता है। जैसे— राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिखित रूप के लिए 'देवनागरी लिपि' का उपयोग किया जाता है। यह राष्ट्र-भाषा ही अपने व्याकरण के नियमों के आधार पर 'परिनिष्ठित भाषा' तथा 'राज भाषा' बन जाती है।

इस प्रकार राष्ट्र के सभी प्रकार के व्यवहारों में मौखिक भाषा, लिखित भाषा तथा राजभाषा के रूप में 'राष्ट्रभाषा' का बहुत महत्व होता है।

(10) भाषा एक और रूप अनेक—यहाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह स्पष्ट होता है कि एक भाषा समाज की भाषा एक ही होती है, लेकिन विभिन्न कारणों से वह एक ही भाषा अपने एक भाषा समाज के भिन्न-भिन्न व्यवहारों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित रहती है। परिणामस्वरूप एक भाषा समाज के भीतर एक ही भाषा अनेक रूप धारण कर लेती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि बोलने वाला जैसा चाहना है या बोलने वाले जैसे चाहते हैं, उसी के अनुसार एक ही भाषा भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेती है। भाषा के सभी रूप एक ही मूल भाषा या सामान्य भाषा के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखते हैं। इस कारण भाषा के सभी रूपों में व्याकरण से सम्बन्धित अन्तर अधिक नहीं रहता। ध्वनि, रूप तथा वाक्य रचना की दृष्टि से भाषा के सभी रूपों में कम अन्तर रहता है, लेकिन शब्द-समूह, शब्दों के अर्थों तथा उच्चारण की दृष्टि से भाषा के सभी रूपों में अधिक अन्तर होता है।

शब्द समूह, शब्दों के अर्थों तथा उच्चारण की भिन्नता के कारण ही प्रत्येक व्यवसाय से सम्बन्धित भाषा भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक या आर्थिक वातावरण में भी भाषा भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेती है। शिक्षण, साहित्य, कानून तथा प्रचार माध्यमों के क्षेत्रों में भी भाषा अलग-अलग रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार के कारण से ही एक ही भाषा व्यक्ति बोली, उपबोली, बोली, उपभाषा, परिनिष्ठित भाषा, राज्यभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, व्यावसायिक भाषा, विशिष्ट भाषा, शैक्षणिक भाषा, कानूनी भाषा, साहित्यिक भाषा, शुद्ध भाषा, अशुद्ध भाषा, शलील भाषा, अश्लील भाषा, अपभाषा, गुप्त भाषा,

कृत्रिम भाषा, जीवित भाषा आदि रूप धारण करके एक ही भाषा समाज में प्रचलित रहती है। इससे 'भाषा एक और उसके रूप अनेक' यही तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

5. भाषा परिवर्तन (भाषा विकास) के कारण

भाषा का परिवर्तनशील अर्थात् विकासशील होना उसका महत्व का लक्षण है। अपने इस प्रकार के लक्षण के अनुसार भाषा निरन्तर परिवर्तनशील अर्थात् विकासशील रहती है। भाषा व्यवहार में कुछ ऐसे कारण बने रहते हैं, जिनके परिणामस्वरूप भाषा में परिवर्तन अर्थात् विकास होता ही रहता है।

भाषा में परिवर्तन होने का अर्थ है भाषा की ध्वनियों में, उसके शब्दों में, उसके पदों में, उसके वाक्य गठन में और उसके शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होना है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति के कारण ही 'ध्वनि विज्ञान' भाषा की ध्वनियों के परिवर्तन के कारणों का विचार करता है और सिद्ध करता है कि विभिन्न कारणों से शब्दों में ध्वनि परिवर्तन होता रहता है।

'शब्द विज्ञान' शब्द परिवर्तन के कारणों का विचार करता है। 'पद विज्ञान' (रूप विज्ञान) पद परिवर्तन या रूप परिवर्तन के कारणों का विचार करता है। 'वाक्य विज्ञान' वाक्य परिवर्तन के कारणों का विचार करता है। 'अर्थ विज्ञान' अर्थ परिवर्तन के कारणों का विचार करता है। इन सभी प्रकारों के परिवर्तनों से यह स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक शब्दों की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उससे कम शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होता है, उससे कम पदों में और शब्दों में परिवर्तन होता है और सबसे कम वाक्य में परिवर्तन होता है। इस प्रकार के परिवर्तनों के माध्यम से ही भाषा परिवर्तन होता है।

ध्वनि परिवर्तन, पद परिवर्तन, वाक्य परिवर्तन, अर्थ परिवर्तन, शब्द परिवर्तन के रूप में जो भाषा परिवर्तन होता है, उसके लिए जिन कारणों को स्वीकार किया जाता है, उनमें से कुछ कारणों को 'आन्तरिक कारण' (आभ्यन्तर कारण) माना जाता है, तो कुछ कारणों को 'बाह्य कारण' माना जाता है।

बलाघात, प्रयत्न-लाघव, मनोदशा, पूर्ण अनुकरण की अयोग्यता, सादृश्य आदि को भाषा परिवर्तन के आन्तरिक कारण माना जाता है। विशिष्ट भौगोलिकता, विशिष्ट ऐतिहासिकता, विशिष्ट सामाजिकता, विशिष्ट सांस्कृतिक स्थिति आदि को भाषा परिवर्तन के बाह्य कारण माना जाता है। इन आन्तरिक तथा बाह्य कारणों से ही ध्वनि परिवर्तन, पद परिवर्तन, वाक्य परिवर्तन, शब्द परिवर्तन तथा अर्थ परिवर्तन के रूप में भाषा परिवर्तन होता रहता है। जैसे 'बलाघात' के कारण 'बाजार' शब्द में 'ज्' के साथ 'आ' के बदले 'अ' आता है और 'बाजार' का उच्चारण 'बजार' होने लगता है, 'श्रेष्ठ' पद के स्थान पर 'श्रेष्ठतम' या 'सर्वश्रेष्ठ' पद परिवर्तन हो जाता है और 'गँवार' शब्द के 'गाँव में रहने वाला' इस प्रधान अर्थ के

स्थान पर 'असभ्य' इस गौण अर्थ का प्रधान अर्थ में परिवर्तन हुआ है 'सादृश्य' के कारण 'सुख' इस उच्चारण के समान रूप धारण करने के लिए 'दुःख' इस विसर्ग सहित उच्चारण के स्थान पर 'दुख' यह विसर्ग रहित उच्चारण होने लगा, 'तीन' से 'तीनों' समुदायवाचक विशेषण बनता है, उसी के सादृश्य पर 'दो' से 'दोनों' पद (रूप) बनता है और 'आश्रय' के ही अर्थ का रूपान्तरण 'प्रश्रय' इस 'नम्रता अर्थ-सूचक' शब्द में हुआ है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से किसी न किसी रूप से भाषा परिवर्तन होता ही रहता है, जिसे ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, अर्थ विज्ञान, वाक्य विज्ञान के भीतर विस्तार से स्पष्ट कर दिया गया है।

6. भाषा विज्ञान की परिभाषा तथा उसके प्रकार

अपने वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करने वाले 'भाषा विज्ञान' (लिंग्विस्टिक्स : Linguistics) की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जो एककालिक अथवा बहुकालिक अथवा तुलनात्मक अथवा व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक रूप से एक भाषा या एक से अधिक भाषाओं का अध्ययन और विश्लेषण करके भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों का निश्चय करता है।"

भाषा विज्ञान की इस परिभाषा से कुछ महत्वपूर्ण बातें सूचित होती हैं।

(1) भाषा विज्ञान भाषा का ही अध्ययन और विश्लेषण करने वाला विज्ञान है। इसका अर्थ यह है कि भाषा का विशिष्ट ज्ञान प्रस्तुत करने वाला विज्ञान भाषा विज्ञान कहलाया जाता है।

(2) भाषा विज्ञान भाषा का सामान्य ज्ञान या किसी एक भाषा का विशिष्ट ज्ञान या एक से अधिक भाषाओं का विशेष ज्ञान प्रस्तुत करता है।

(3) भाषा विज्ञान भिन्न-भिन्न रूपों से भाषा सम्बन्धी अध्ययन-विश्लेषण करता है। इसके लिए भाषा विज्ञान कभी 'एककालिक भाषा विज्ञान' का रूप धारण करता है, कभी 'बहुकालिक भाषा विज्ञान' का रूप धारण करता है, कभी 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का रूप धारण करता है, कभी 'व्यतिरेकी भाषा विज्ञान' का रूप धारण करता है या कभी 'अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान' का रूप धारण करता है।

(4) भाषा विज्ञान का प्रत्येक रूप भाषा सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान प्रस्तुत करता है।

(5) भाषा विज्ञान भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों का निश्चय करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

इस प्रकार भाषा विज्ञान भाषा के अध्ययन-विश्लेषण, उससे प्राप्त ज्ञान और सिद्धान्त-निश्चय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। इस दृष्टि से भाषा विज्ञान का प्रत्येक रूप अपनी विशिष्ट पद्धति से कार्य करता है।

1. **एककालिक भाषा विज्ञान**—भाषा विज्ञान के एक रूप को **'एककालिक भाषा विज्ञान'** इसलिए कहा जाता है कि वह किसी एक विशिष्ट काल-खण्ड के साथ सम्बन्धित किसी भाषा का एककालिक (Synchronic) अध्ययन और विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्तों का निश्चय करता है। इसमें **'एककालिक भाषा अध्ययन पद्धति'** के अनुसार किसी एक काल-खण्ड से सम्बन्धित भाषा के विशिष्ट स्वरूप को अध्ययन-विश्लेषणपूर्वक स्पष्ट कर दिया जाता है। इसलिए कभी भाषा के आदिकालीन विशिष्ट स्वरूप को अथवा मध्यकालीन विशिष्ट स्वरूप को अथवा आधुनिककालीन विशिष्ट स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है। इससे एक विशिष्ट काल-खण्ड से सम्बन्धित भाषा के विशिष्ट स्वरूप की सभी महत्वपूर्ण बातों को स्पष्ट किया जाता है। इस प्रकार का स्पष्टीकरण करते समय एक काल की भाषा के वाक्य, पद, ध्वनि और शब्दों के स्वरूप के साथ शब्दों के अर्थों को भी स्पष्ट किया जाता है।

एककालिक भाषा अध्ययन पद्धति के अनुसार वाक्य, पद, ध्वनि, शब्द, अर्थ इन भाषा अंगों को स्पष्ट करने के लिए **'वर्णनात्मक (Descriptive) भाषा अध्ययन पद्धति'** का ही प्रयोग किया जाता है। इसलिए एककालिक भाषा विज्ञान को **'वर्णनात्मक भाषा विज्ञान'** भी कहा जाता है। 'वर्णनात्मक भाषा विज्ञान' (Descriptive Linguistics) को तब **'संरचनात्मक भाषा विज्ञान'** भी कहा जाता है, जब वह ध्वनि संरचना, रूप संरचना, वाक्य संरचना और अर्थ संरचना को स्पष्ट करते हुए भाषा की एककालिक संरचना को स्पष्ट कर देता है।

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का स्वरूप उस भाषा के व्याकरण जैसा होता है। इस कारण से भाषा का एककालिक व्याकरणात्मक स्वरूप स्पष्ट होता है।

2. **बहुकालिक भाषा विज्ञान**—भाषा विज्ञान के दूसरे रूप को **'बहुकालिक भाषा विज्ञान'** इसलिए कहा जाता है कि वह सभी काल-खण्डों के साथ अर्थात् पूर्ण काल के साथ किसी भाषा का बहुकालिक (Diachronic) अर्थात् कालक्रमिक अध्ययन और विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्तों का निश्चय करता है। इसमें **'बहुकालिक अर्थात् कालक्रमिक भाषा अध्ययन पद्धति'** के अनुसार भाषा के पूर्ण विकासात्मक स्वरूप को अध्ययन-विश्लेषण के साथ स्पष्ट किया जाता है। इसलिए आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल इन तीनों कालों के आधार पर किसी भाषा के सम्पूर्ण स्वरूप का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है।

बहुकालिक भाषा अध्ययन पद्धति के अनुसार कालक्रम के आधार पर किसी भाषा के सम्पूर्ण विकास को स्पष्ट किया जाता है। इसके लिए प्रथम आदिकाल के आधार पर भाषा के विशिष्ट स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है। उसके बाद मध्यकाल

के आधार पर उसी भाषा के विशिष्ट स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है। तत्पश्चात् आधुनिक काल के आधार पर उसी भाषा के विशिष्ट स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है। इससे उस भाषा के वाक्य, पद (रूप), ध्वनि, शब्द-समूह, अर्थ, इन अंगों के सम्पूर्ण विकास के साथ-साथ भाषा का ही सम्पूर्ण विकास स्पष्ट किया जाता है और उससे सम्बन्धित कुछ सिद्धान्तों का निश्चय भी किया जाता है।

बहुकालिक भाषा अध्ययन पद्धति से किसी भाषा का सम्पूर्ण विकासात्मक इतिहास ही स्पष्ट हो जाता है। इसलिए ही 'बहुकालिक भाषा विज्ञान' को **'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान'** (Historical Linguistics) भी कहा जाता है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा के कालक्रमिक विकास को स्पष्ट करने के लिए भी **'वर्णनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति'** का प्रयोग किया जाता है।

3. **तुलनात्मक भाषा विज्ञान**—भाषा विज्ञान के तीसरे रूप को **'तुलनात्मक भाषा विज्ञान'** (Comparative Linguistics) इसलिए कहा जाता है कि वह साम्य के आधार पर एक से अधिक भाषाओं का **'तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति'** से अध्ययन और विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्तों का निश्चय करता है।

तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति से साम्य रखने वाली भाषाओं की ध्वनियाँ, उनके पद, उनके वाक्य, उनके शब्द और अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किये जाते हैं, जिससे उनमें साम्य दिखाई देता है। इस प्रकार का साम्य उन भाषाओं का वर्गीकरण करने की दृष्टि से बहुत उपयोगी होता है।

तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति के आधार पर जिन भाषाओं के स्वरूपों में बहुत अधिक साम्य मिलता है, उन भाषाओं को एक वर्ग में अर्थात् एक परिवार में रखा जाता है। इसी कारण, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को 'भारोपीय भाषा परिवार' में रखा जाता है। इसका अर्थ यह है कि साम्य के आधार पर भारत देश की और यूरोप की अंग्रेजी आदि भाषाओं को 'भारोपीय परिवार' में रखा जाता है। इस प्रकार के भाषा वर्गीकरण की दृष्टि से तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति बहुत महत्व की होती है।

तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति के आधार पर ही हिन्दी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी, बंगाली, आसामी, उड़िया इन आधुनिक भाषाओं में बहुत अधिक साम्य मिलता है और साम्य के आधार पर ही इन भाषाओं को आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ माना जाता है। इसके विरुद्ध तेलुगू, तमिल, मलयालम और कन्नड़ इन भाषाओं में तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति से जो बहुत अधिक साम्य मिलता है, उसी के आधार पर उन भाषाओं को 'द्रविड़ भाषा परिवार' में रखा जाता है।

तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति के लिए एक से अधिक भाषाओं का एककालिक अध्ययन अथवा बहुकालिक अध्ययन किया जाता है। बहुधा बहुकालिक अर्थात् ऐतिहासिक अध्ययन की ही सहायता ली जाती है।

4. **व्यतिरेकी भाषा विज्ञान**—भाषा विज्ञान के चौथे रूप को **'व्यतिरेकी भाषा विज्ञान'** (Contrastive Linguistics) इसलिए कहा जाता है कि वह अन्तर अर्थात् भेद के आधार पर एक से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक भाषा अध्ययन पद्धति से अध्ययन और विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्तों का निश्चय करता है।

'व्यतिरेकी भाषा अध्ययन पद्धति' से भेद रखने वाली भाषाओं की ध्वनियाँ, उनके पद, उनके वाक्य, उनके शब्द और अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किये जाते हैं, जिससे उनमें भेद दिखाई देता है। इस प्रकार का भेद उन भाषाओं को अलग-अलग वर्गों अर्थात् अलग-अलग परिवारों में विभाजित करने के लिए बहुत उपयोगी होता है। इस रूप से संसार की विभिन्न भाषाओं के भिन्न-भिन्न वर्गीकरणों के लिए व्यतिरेकी भाषा अध्ययन पद्धति बहुत उपयोगी होती है।

व्यतिरेकी भाषा अध्ययन पद्धति के आधार पर ही संसार की विभिन्न भाषाओं को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है। उन दोनों में से एक वर्ग को 'सतम परिवार' माना जाता है, तो दूसरे वर्ग को 'केंतुम परिवार' माना जाता है। 'सतम' और 'केंतुम' इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है और वह है—'सौ' अर्थात् 'एक सौ' पूर्णांक बोधक संख्यावाचक विशेषण है। इसी अर्थ का बोध कराने के लिए जिस-जिस भाषा में 'स' ध्वनियुक्त शब्द है, उस-उस भाषा को 'सप्तम भाषा परिवार' में रखा जाता है और जिस-जिस भाषा में 'क' ध्वनियुक्त शब्द है, उस-उस भाषा को 'केंतुम भाषा परिवार' में रखा जाता है। इससे महत्वपूर्ण भेद यह स्पष्ट होता है कि 'स' और 'क' ध्वनियाँ एक-दूसरी के विरुद्ध हैं और 'सतम भाषा परिवार' की भाषाओं में 'क' ध्वनि के अभाव में 'स' ध्वनि का प्रयोग होता है, तो 'केंतुम भाषा परिवार' की भाषाओं में 'स' ध्वनि के अभाव में 'क' ध्वनि का ही प्रयोग होता है।

व्यतिरेकी भाषा अध्ययन पद्धति के आधार पर ही दक्षिण भारत की भाषाओं और महाराष्ट्र के साथ उत्तर भारत की भाषाओं में इतना भेद स्पष्ट होता है कि जिसको आधार बनाकर दक्षिण भारत की भाषाओं को 'द्रविड़ भाषा परिवार' में रखा जाता है, तो मराठी भाषा के साथ-साथ उत्तर भारत की भाषाओं को 'आर्य भाषा परिवार' में रखा जाता है।

व्यतिरेकी भाषा अध्ययन पद्धति के लिए एककालिक भाषा अध्ययन बहुत उपयोगी होता है। पर कभी बहुकालिक भाषा अध्ययन पद्धति का भी उपयोग किया जाता है।

5. **अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान**—भाषा विज्ञान के पाँचवें रूप को **'अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान'** अथवा **'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान'** (Applied Linguistics) इसलिए कहा जाता है कि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भाषा विज्ञान के अनुप्रयोग या प्रयोग का अध्ययन और विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्तों का निश्चय करता है।

भाषा विज्ञान भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करके भाषा से सम्बन्धित जो विविध ज्ञान प्रस्तुत करता है, उसी ज्ञान का उपयोग जीवन के विभिन्न भाषा व्यवहारों में किया जाता है। मनुष्य के इस प्रकार के विभिन्न भाषा व्यवहारों का अध्ययन और विश्लेषण करके उन भाषा व्यवहारों को अधिकाधिक सरल और उपयोगी बनाने के लिए विशेष ज्ञान प्रस्तुत करना, अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण कार्य है। इस अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान में अनुवाद विज्ञान, कोश विज्ञान (Lexicology), भाषा शिक्षण विज्ञान, समाज भाषा विज्ञान (Socio Linguistics), मनोभाषा विज्ञान (Psycho Linguistics), भाषिक भूगोल (Linguistics Geography), बोली भूगोल (Dialect Geography), बोली विज्ञान (Dialectology), भूभाषाविज्ञान (Geo-Linguistics), भाषा प्रकार विज्ञान (Linguistictypology), जाति भाषा विज्ञान (Ethno Linguistics), शैली विज्ञान (Stylistics) आदि का समावेश होता है।

जो किसी एक भाषा में कहा हुआ होता है, दूसरी भाषा में उसका अनुवाद करने के सन्दर्भ में जो-जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उन समस्याओं को सुलझाकर अनुवाद कला को सरल रूप प्रदान करने का कार्य 'अनुवाद विज्ञान' करता है। शब्दकोश को अधिकाधिक सरल तथा उपयोगी बनाने का कार्य 'कोश विज्ञान' करता है। भाषा शिक्षण को अधिक से अधिक सरल बनाने का कार्य 'भाषा शिक्षण विज्ञान' करता है। बोलियों को स्पष्ट करने का कार्य 'बोली भूगोल' तथा 'बोली विज्ञान' करता है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा अर्थात् साहित्यिक भाषा के सौन्दर्य को स्पष्ट करने का कार्य शैली विज्ञान करता है। इस प्रकार विभिन्न भाषा व्यवहारों की दृष्टि से अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान महत्वपूर्ण है, जिसे 'प्रायोगिक भाषा विज्ञान' भी कहा जाता है।

7. भाषा विज्ञान, विज्ञान है या कला ?

1. भाषा विज्ञान, विज्ञान ही है—भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करके भाषा सम्बन्धी विशेष ज्ञान प्रस्तुत करने वाला भाषा विज्ञान 'विज्ञान' ही है। वह कला नहीं है।

विज्ञान का स्वरूप, उद्देश्य और कार्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है। विज्ञान का स्वरूप वस्तुनिष्ठ (Objective) होता है। उसका उद्देश्य वस्तुनिष्ठ अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर सामान्य एवं व्यापक सिद्धान्त की स्थापना करना होता है। अपने इस प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए विज्ञान प्रकृति की किसी बात का वस्तुनिष्ठ अध्ययन और विश्लेषण करने का कार्य करता है।

विज्ञान जब अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रकृति की किसी बात का वस्तुनिष्ठ अध्ययन और विश्लेषण करने लगता है, तब वह अपने कार्य के लिए वस्तुनिष्ठ प्रमाणों (आधारों) की सहायता लेता है और प्रकृति की उस बात की कोई महत्वपूर्ण

वास्तविकता स्पष्ट कर देता है, जो सार्वत्रिक तथा सार्वकालिक व्यापक सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है।

विज्ञान के उपर्युक्त विशिष्ट स्वरूप, विशिष्ट उद्देश्य और विशिष्ट कार्य को ध्यान में रखकर प्रश्न उठाया जा सकता है—क्या भाषा विज्ञान भी इसी प्रकार का विज्ञान है ?

इस प्रश्न का निश्चित उत्तर यही है कि भाषा विज्ञान भी विज्ञान ही है, क्योंकि भाषा विज्ञान का भी स्वरूप वस्तुनिष्ठ (Objective) ही है, उसका उद्देश्य भी वस्तुनिष्ठ ही है और उसका कार्य भी वस्तुनिष्ठ ही है।

भाषा विज्ञान जब अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भाषा की किसी बात का वस्तुनिष्ठ अध्ययन और विश्लेषण करने लगता है, तब वह अपने कार्य के लिए भाषा से सम्बन्धित वस्तुनिष्ठ प्रमाणों (आधारों) की सहायता लेता है और भाषा की उस बात की ऐसी महत्वपूर्ण वास्तविकता स्पष्ट कर देता है, जो सार्वत्रिक तथा सार्वकालिक व्यापक सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है।

इस प्रकार की वास्तविकता के आधार पर भाषा विज्ञान को विज्ञान ही मानना ठीक है।

लेकिन भाषा विज्ञान के कुछ सिद्धान्त किसी एक ही भाषा से सम्बन्धित होते हैं, जो अन्य भाषाओं पर लागू नहीं होते। इस बात को लेकर कोई भाषा विज्ञान को अपूर्ण विज्ञान मान सकता है। ऐसी स्थिति में भाषा विज्ञान को कला मानने की भूल हो सकती है, लेकिन भाषा विज्ञान किसी भी रूप में विज्ञान ही है, वह कला नहीं है।

2. कला विज्ञान नहीं है—कला का स्वरूप, उद्देश्य और कार्य व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) कल्पना प्रधान दृष्टिकोण पर आधारित होता है। कला का स्वरूप व्यक्तिनिष्ठ, कल्पना प्रधान, सौन्दर्य प्रधान और आनन्ददायक सम्भाव्य सत्य पर आधारित होता है। कला का उद्देश्य रसिकों को (सहृदयों को) आनन्ददायक सौन्दर्य तथा सम्भाव्य सत्य की अनुभूति कराने का होता है। अपने इस प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कला किसी जीवानुभूति को सुन्दर एवं सम्भाव्य सत्यनिष्ठ रूप प्रदान करने का कार्य कल्पना के समुचित सहयोग से करती है।

इस प्रकार कला का व्यक्तिनिष्ठ (Objective) तथा कल्पना प्रधान स्वरूप, उद्देश्य और कार्य, विज्ञान एवं भाषा विज्ञान के वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा प्रमाण प्रधान स्वरूप, उद्देश्य और कार्य से एकदम भिन्न है। इसलिए कला, कला ही है, कला विज्ञान या भाषा विज्ञान नहीं है।

3. भाषा विज्ञान साहित्य कला की सहायता लेता है—साहित्य कला भाषा के माध्यम से ही अस्तित्व में आती है। इस प्रकार की साहित्य कला आदि काल से लेकर आज तक सुरक्षित है। इसका अर्थ यह है कि साहित्य कला का माध्यम बनी

भाषा भी आदिकाल से लेकर आज तक सुरक्षित है। इसलिए जब भाषा विज्ञान किसी भाषा का ऐतिहासिक भाषा अध्ययन पद्धति से अध्ययन और विश्लेषण करने लगता है, तब भाषा विज्ञान उस भाषा के माध्यम से अस्तित्व में आ गयी ऐसी साहित्य कला की सहायता लेता है, जो आदिकाल से लेकर आज तक सुरक्षित तथा उपलब्ध है।

इस प्रकार भाषा विज्ञान को साहित्य कला की सहायता लेनी पड़ती है, इसलिए किसी से भाषा विज्ञान को कला मानने की भूल हो सकती है, परन्तु वस्तु स्थिति यही है कि भाषा विज्ञान विज्ञान ही है, उसे भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करने के लिए साहित्य कला की सहायता लेनी पड़ती है।

4. कला शाखा या मानविकी के अन्तर्गत भाषा विज्ञान का अध्ययन—विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कला शाखा (Art's Faculty) या मानविकी (Humanity) से सम्बन्धित पाठ्यक्रम में भाषा विज्ञान के अध्ययन की व्यवस्था की जाती है। इस बात को भी लेकर कोई भाषा विज्ञान को कला मानने की भूल कर सकता है।

लेकिन वास्तविकता यह है कि कला शाखा के पाठ्यक्रम में उस साहित्य कला का अध्ययन किया जाता है, जिसका एकमात्र माध्यम भाषा ही होती है और दूसरी ओर भाषा ही भाषा विज्ञान के अध्ययन और विश्लेषण का एकमात्र विषय होती है। साहित्य कला के अध्येताओं को भाषा की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषताओं से परिचित होना अत्यावश्यक होता है। इसलिए साहित्य कला के अध्येताओं को साहित्य कला के साथ-साथ भाषा विज्ञान का भी अध्ययन करना बहुत उपयोगी होता है। तभी साहित्य कला का अध्येता भाषा की विशेषताओं के माध्यम से साहित्य कला के सौन्दर्य को समझने में समर्थ बन जाता है। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण कला शाखा या मानविकी के पाठ्यक्रम में भी भाषा विज्ञान ही है, वह कला नहीं है।

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि भाषा विज्ञान किसी भी रूप में कला नहीं है, वह तो विज्ञान ही है।

8. भाषा विज्ञान के अध्ययन से लाभ

भाषा विज्ञान का अध्ययन करने से अध्येता को उस अध्ययन से कुछ ऐसे लाभ होते हैं, जिनसे उसे भाषा विज्ञान तथा भाषा से सम्बन्धित विभिन्न प्रकारों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप अध्येता में भाषा विज्ञान तथा भाषा व्यवहार के विषय में विशेष जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है।

(1) भाषा सम्बन्धी विविध ज्ञान प्राप्ति—भाषा विज्ञान का अध्ययन करने भाषा से सम्बन्धित विविध ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। भाषा विज्ञान जिस भाषा को मानता है, वह भाषा अपने मूल रूप में उन ध्वनियों पर आधारित होती हैं, जो मनुष्य के ध्वनियन्त्र, उच्चारण अवयवों और प्रश्वासरूपी हवा के पारस्परिक सहयोग से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार की भाषा ध्वनियाँ ध्वनि प्रतीक के रूप में विशिष्ट

क्रम से एक-दूसरी से जुड़कर ऐसे ध्वनि प्रतीकों के समूह बनती हैं जो इस रूप में अर्थपूर्ण शब्दों के रूप धारण कर लेते हैं। शब्द और सम्बन्ध तत्व के पारस्परिक सहयोग से ऐसे पद बन जाते हैं, जिनका निश्चित व्यवस्था के आधार पर संयोजन करने से वाक्य रचना हो जाती है, जिससे अपेक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति हो जाती है। वास्तव में मनुष्य भाषा की सहज इकाई के रूप में वाक्य के माध्यम से ही अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करता है। भाषा विज्ञान की परिभाषा और उसके प्रकारों से भाषा विज्ञान का स्वरूप और कार्य तथा कार्य करने की उसकी पद्धतियाँ—एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक, व्यतिरेकी, अनुप्रायोगिक समझ में आ जाती हैं। भाषा विज्ञान के अंगों—ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान, शब्द विज्ञान, अर्थ विज्ञान से—ध्वनि, पद, वाक्य, शब्द और अर्थ से सम्बन्धित अनेक प्रकारों का ज्ञान प्राप्त होता है। भाषा के विभिन्न रूपों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान के अध्ययन से भाषा सम्बन्धी विविध ज्ञान प्राप्त होने से एक प्रकार का कुतूहलवर्धक आनन्द मिलता है।

(2) भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों की ज्ञान प्राप्ति—भाषा विज्ञान भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों का निर्धारण करता है, उनकी ज्ञान प्राप्ति अध्येता को हो जाती है, जिससे अध्येता को किसी सिद्धान्त के आधार पर भाषा या भाषाओं का अध्ययन और विश्लेषण करने की प्रेरणा मिलती है, जैसे भाषा विकास या भाषा परिवर्तन से सम्बन्धित सिद्धान्त की ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कोई उस सिद्धान्त के आधार पर किसी भाषा या कुछ भाषाओं का विकास स्पष्ट करने को प्रेरित हो सकता है।

(3) सांस्कृतिक विकास की ज्ञान प्राप्ति—भाषा विज्ञान द्वारा अप्रौढ़ तथा प्रौढ़ भाषा का विश्लेषण होता है, जिससे मनुष्य के अविकसित संस्कारों और मानस के साथ-साथ काल की गति के साथ हुए मनुष्य के सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि मनुष्य प्रौढ़ भाषा के माध्यम से अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने लगता है तब उसका सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास अपने आप व्यक्त होने लगता है। इस प्रकार के ज्ञान से सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास करने की प्रेरणा मिलती है।

(4) प्राचीन साहित्य के स्पष्टीकरण के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्ति—भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण करने के लिए प्राचीन काल से उपलब्ध साहित्य की सहायता लेता है। तब भाषा विज्ञान साहित्य का माध्यम बनी भाषा के शब्दों के कठिन उच्चारण और अपरिचित अर्थ को, वाक्य तथा पदों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विशिष्ट पद्धति की सहायता लेता है। उस विशिष्ट पद्धति का ज्ञान मिलने पर अध्येता को प्राचीन साहित्य के सरल स्पष्टीकरण की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

(5) **कृत्रिम भाषा के निर्माण की प्रेरणा प्राप्ति**—विभिन्न भाषाओं के कारण संसार में या राष्ट्र में ऐसी भाषा समस्या बनी रहती है जो भावात्मक एकता में बाधा बन जाती है। इस समस्या का समाधान पाने के लिए कोई भाषा विज्ञान से प्राप्त ज्ञान के आधार पर सभी के लिए उपयोगी होने वाली कृत्रिम भाषा का निर्माण करने के लिए प्रेरणा पा सकता है। इसके परिणामस्वरूप ही यूरोप में किसी विद्वान से 'एसपेरैंतो' नामक कृत्रिम भाषा का निर्माण हुआ है।

(6) **दूसरी भाषा का सरलता से अध्ययन करने के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्ति**—भाषा विज्ञान जब किसी भाषा के स्वरूप को स्पष्ट कर देता है, तब उस ज्ञान प्राप्ति के आधार पर किसी दूसरी भाषा का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है।

(7) **अनुवाद के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्ति**—भाषा विज्ञान भाषा के स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट करता है, जिससे प्राप्त ज्ञान के आधार पर उस भाषा से किसी दूसरी भाषा में सरलता से अनुवाद किया जा सकता है। अथवा किसी दूसरी भाषा से अपनी भाषा में सहजता से अनुवाद किया जा सकता है।

(8) **टाइपरायटर में सुधार के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्ति**—भाषा विज्ञान से भाषा की ध्वनियों से सम्बन्धित जो ज्ञान मिलता है, उसकी सहायता से शीघ्र टाइपिंग की सुविधा के लिए टाइपरायटर में महत्वपूर्ण सुधार किये जा सकते हैं। इस कारण ही हिन्दी टाइपरायटर में केवल 'अ' को मूल स्वर के रूप में स्वीकार किया है और अन्य स्वरों के लिए क्रमानुसार मात्राओं को स्वीकार किया गया है, जैसे आ→ा, इ→ि, ई→ी, उ→ु, ऊ→ू, ए→े, ऐ→ै, ओ→ो, औ→ौ।

(9) **लिपि को अधिकाधिक सुविधाजनक बनाने के लिए ज्ञान प्राप्ति**—भाषा विज्ञान के अध्ययन से लिपि सम्बन्धी प्राप्त ज्ञान की सहायता से लेखन के लिए लिपि को अत्यधिक सुविधाजनक बना सकते हैं। इसलिए ही राष्ट्रलिपि देवनागरी में सुधार किये गये हैं।

(10) **शब्दकोश, पाठ्यपुस्तक तथा व्याकरण के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्ति**—भाषा विज्ञान से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उत्कृष्ट शब्दकोश, सरल पाठ्यपुस्तक और उपयोगी व्याकरण का निर्माण किया जा सकता है।

(11) **उच्चारण की शुद्धता के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्ति**—भाषा की ध्वनियों के योग्य उच्चारण सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर उच्चारण को शुद्ध बनाया जा सकता और किसी की तुतलाहट या हकलाहट को भी दुरुस्त किया जा सकता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान के अध्ययन से अनेक लाभ हो जाते हैं।

9. अन्य ज्ञान-विज्ञान से भाषा विज्ञान का सम्बन्ध

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण करते समय अन्य ज्ञानों, विज्ञानों तथा शास्त्रों के साथ भाषा विज्ञान का सम्बन्ध आ जाता है। यह सम्बन्ध कभी दोनों

ओर से आकर परस्पर पूरक बना रहता है, तो कभी केवल एक ही ओर से सम्बन्ध आ जाता है।

(1) **भाषा विज्ञान और व्याकरण**—भाषा विज्ञान और व्याकरण दोनों ही भाषा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए ही एक समय भाषा विज्ञान को तुलनात्मक व्याकरण (Comparative Grammer) माना गया था। वास्तविकता यह है कि भाषा विज्ञान और व्याकरण अपने-अपने अलग दृष्टिकोण के अनुसार भाषा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

व्याकरण किसी एक ही भाषा के नियमाश्रित स्वरूप के साथ सम्बन्ध रखता है। इसलिए व्याकरण का क्षेत्र सीमित होता है। किसी एक भाषा के स्वरूप से सम्बन्धित व्याकरण के नियम दूसरी भाषा पर लागू नहीं होते। व्याकरण शास्त्र के रूप में किसी एक भाषा के स्वरूप को शुद्ध भाषा के रूप में सुरक्षित रखता है। व्याकरण में विवरण और वर्णन की प्रधानता होती है, क्योंकि व्याकरण अपने एक-एक नियम के आधार पर भाषा के शुद्ध स्वरूप का विवरण और वर्णन करता है। इसलिए व्याकरण वर्णन प्रधान शास्त्र है।

भाषा विज्ञान संसार की सभी भाषाओं का अध्ययन विश्लेषण करता है। इसलिए भाषा विज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। इस कारण से ही भाषा विज्ञान ऐसे सिद्धान्तों का भी निर्धारण करता है, जो संसार की सभी भाषाओं पर लागू होते है। अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण भाषा विज्ञान विज्ञान है, न कि शास्त्र। भाषा विज्ञान भाषा के विकासशील या परिवर्तनशील रूप को अधिक महत्व देता है। भाषा विज्ञान विवेचन-विश्लेषण तथा खोज प्रधान विज्ञान है। इस कारण से ही भाषा विज्ञान खोज के आधार पर संसार की भाषाओं पर लागू होने वाले सिद्धान्तों का निर्धारण करता है। खोज प्रधानता के आधार पर भाषा विज्ञान व्याकरण के लिए सहायक बना रहता है। इससे ही भाषा विज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण होता है।

पद विज्ञान या रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान ये भाषा विज्ञान के दो ऐसे अंग हैं जो व्याकरण की सहायता लेकर ही पद सम्बन्धी या रूप सम्बन्धी और वाक्य सम्बन्धी अध्ययन-विश्लेषण कर सकते हैं। इसलिए ही भाषा विज्ञान किसी भाषा के शुद्ध स्वरूप के आधार पर ही उस भाषा के विकासात्मक इतिहास का अध्ययन-विश्लेषण करते समय उस भाषा के व्याकरण की महत्वपूर्ण सहायता करता है।

दूसरी ओर व्याकरण भी भाषा विज्ञान की सहायता लेकर अपनी कुछ बातों का स्पष्टीकरण कर लेता है। यदि व्याकरण हिन्दी भाषा के 'गया' इस रूप के रहस्य को और 'मैं, हम, तू, तुम, आप, यह, वह' आदि सर्वनामों के प्रचलन को जानना चाहेगा तो भाषा विज्ञान खोज के आधार पर स्पष्ट करेगा कि संस्कृत भाषा की 'गम्' धातु के 'गतः' इस रूप का विकास 'गया' यह रूप है, जो हिन्दी की 'जा' धातु

के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता और संस्कृत के ही सर्वनाम के विकसित रूप हिन्दी में प्रचलित हैं।

इस प्रकार भाषा विज्ञान और व्याकरण एक-दूसरे के लिए महत्वपूर्ण सहायक बने रहते हैं।

(2) **भाषा विज्ञान और साहित्य**—भाषा साहित्य का एकमात्र माध्यम है, तो वही भाषा, भाषा विज्ञान के अध्ययन और विश्लेषण का विषय है। इसलिए साहित्य और भाषा विज्ञान एक-दूसरे के सहायक बने रहते हैं।

मनुष्य प्राचीन काल से आज तक अपने भावों, विचारों और कल्पनाओं को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता आया है और साहित्य को सुरक्षित भी रखता आया है। प्राचीन काल से आज तक के साहित्य के माध्यम से भाषा का विकासात्मक इतिहास सुरक्षित रहता है। इस कारण से ही भाषा विज्ञान किसी भाषा का एक-कालिक अध्ययन करने के लिए आदिकालीन साहित्य या मध्यकालीन साहित्य या आधुनिककालीन साहित्य की सहायता लेता है और किसी भाषा का बहुकालिक अर्थात् ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए क्रमानुसार उस भाषा के आदिकालीन, मध्यकालीन तथा आधुनिककालीन साहित्य की सहायता लेता है। भाषा विज्ञान तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी एक से अधिक भाषाओं के साहित्य की सहायता लेता है। भाषा विज्ञान सम्पूर्ण साहित्य की सहायता से भाषा के विकासात्मक इति-हास को स्पष्ट करने पर उस भाषा के उद्भव को और विविध प्रकार के शब्दों से युक्त शब्द समूह को भी स्पष्ट कर सकता है। इसलिए ही भाषा विज्ञान हिन्दी भाषा के सम्पूर्ण साहित्य के आधार पर हिन्दी भाषा के उद्भव को और उसके तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्दों से युक्त शब्द समूह को स्पष्ट करने में सफल हो जाता है। साथ ही साथ वह पद रचना और वाक्य रचना के विशिष्ट स्वरूप को और कुछ शब्दों के विशिष्ट अर्थों को भी स्पष्ट करने में सफल हो जाता है।

दूसरी ओर साहित्य भी भाषा विज्ञान की सहायता से अपने शब्दों के कठिन उच्चारण को और अपरिचित अर्थों को समझने में सफल हो जाता है। पाठ-शोध के लिए तथा शुद्ध पाठ के निर्धारण के लिए साहित्य भाषा विज्ञान की सहायता लेता है। साहित्य अपने भाषिक सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान की सहायता के रूप में 'शैली विज्ञान' की सहायता लेता है।

इस प्रकार भाषा विज्ञान और साहित्य एक-दूसरे के सहायक हैं। इन दोनों को समय-समय पर एक-दूसरे की सहायता करनी ही पड़ती है।

(3) **भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान**—मनुष्य अपने मन से प्रेरित होकर जिस भाषा का प्रयोग करता है, वही मन मनोविज्ञान के अध्ययन विश्लेषण का विषय होता है। इससे मनोविज्ञान और भाषा विज्ञान एक-दूसरे की महत्वपूर्ण सहायता करते हैं।

भाषा विज्ञान भाषा का अध्ययन-विश्लेषण करते समय यह जानता है कि मनुष्य का सम्पूर्ण भाषा व्यवहार मन से ही प्रेरित रहता है। परिणामस्वरूप मन की विविध दशाओं का प्रभाव भाषा प्रयोग पर पड़ा रहता है, जिससे शब्दों की ध्वनियों में कुछ परिवर्तन हो जाता है, शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है और पदों तथा वाक्यों में भी कुछ परिवर्तन हो जाता है। भाषा के इन सभी प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन-विश्लेषण करते समय मनोविज्ञान ही भाषा विज्ञान की सहायता करता है। मनोविज्ञान की सहायता से ही भाषा विज्ञान यह स्पष्ट कर सकता है कि विशेषण तथा क्रियाविशेषण का प्रयोग करने की मन की विशेष प्रवृत्ति के कारण ही विशेष्य के अर्थ में संकोच हो जाता है, जैसे लाल गुलाब, पीला गुलाब, ताजा लाल गुलाब, कल आया, आज दिल्ली गाड़ी से गया आदि। अर्थ परिवर्तन की 'अर्थादेश' दिशा का कारण भी मन की विशिष्ट प्रवृत्ति होती है, जैसे 'देव' जैसे अच्छे अर्थ में 'असुर' शब्द प्रयोग मन को इसलिए खटका कि उसके आरम्भ में अभाव या निषेध सूचक 'अ' है। इसलिए 'देव' जैसे अच्छे अर्थ का बोध कराने के लिए आरम्भ के 'अ' को हटाकर केवल 'सुर' शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा और 'राक्षस' इस बुरे अर्थ में 'असुर' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। भाषा विज्ञान जब विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से भाषा की उत्पत्ति को समझने का प्रयत्न करता है, तब उसे मनोविज्ञान की सहायता लेनी ही पड़ती है। विशेषकर 'अनुकरण सिद्धान्त' और 'मनोभावाभिव्यक्ति सिद्धान्त' के समय भाषा विज्ञान को मनोविज्ञान की सहायता लेनी ही पड़ती है।

दूसरी ओर मनोविज्ञान भी मन की गुत्थियों को प्रयुक्त शब्दों के अर्थों के माध्यम से जानने के लिए भाषा विज्ञान की ही सहायता लेता है। इस प्रकार की भाषा विज्ञान की सहायता से ही मनोविज्ञान पागलों का मनोवैज्ञानिक उपचार करने में सहायक बन जाता है। मनोरुग्णों को स्वस्थ बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक उपचारों में भाषा विज्ञान बहुत सहायक बन जाता है। इस कारण ही आजकल 'मनोभाषा विज्ञान' (Psycho Linguistics) नामक भाषा विज्ञान की एक शाखा ने बहुत जोर पकड़ा है।

इस प्रकार मनोविज्ञान भाषा विज्ञान की अत्यधिक महत्वपूर्ण सहायता करता है और भाषा विज्ञान भी मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण सहायता करता है।

(4) भाषा विज्ञान और शरीर विज्ञान—भाषा विज्ञान तो उसी भाषा को ही 'भाषा' के रूप में स्वीकार करता है, जिसका मूलभूत आधार मनुष्य के ध्वनियन्त्र से सम्बन्धित विभिन्न उच्चारण अवयवों और फेफड़ों में से प्रश्वास के रूप में बाहर की ओर निकलने वाली हवा के सहयोग से उच्चारित अर्थात् उत्पन्न ध्वनि प्रतीक होते हैं। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण ही शरीर विज्ञान के साथ भाषा विज्ञान का सम्बन्ध आ जाता है और शरीर विज्ञान सहायक बन जाता है।

शरीर विज्ञान की सहायता से ही भाषा विज्ञान भाषा की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले ध्वनि यन्त्र, उच्चारण अवयव, श्वास नलिका, मुख-विवर, नासिका-विवर को स्पष्ट कर देता है। भाषा विज्ञान की सहायता के रूप में शरीर विज्ञान, स्वर तन्त्रियाँ, कण्ठ, अलिजिह्व, जिह्वामूल, जिह्वापश्च, जिह्वामध्य, जिह्वाग्र, जिह्वानोक, कोमल तालु, मूर्धा, कठोर तालु, वर्त्स, दन्त, ओष्ठ इन उच्चारण अवयवों को तथा फेफड़ों की श्वास-प्रश्वास रूपी क्रिया को स्पष्ट कर देता है। भाषा विज्ञान उच्चारण अवयवों के स्थान के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण करने के लिए शरीर विज्ञान की ही सहायता लेता है। शरीर विज्ञान की सहायता से भाषा विज्ञान को यह भी मालूम होता है कि मनुष्य ध्वनि यन्त्र से उच्चारित भाषा ध्वनियों को श्रवणों से अर्थात् कानों से ग्रहण करता है, लिपि के सहयोग से उन भाषा ध्वनियों को अपने हाथ की सहायता से लिखित रूप प्रदान करता है और भाषा के लिखित रूप को अपने नेत्रों से ग्रहण करता है। इस प्रकार शरीर विज्ञान भाषा विज्ञान का सहायक है। दूसरी ओर तुतलाहाट या हकलाहट को दुरुस्त करने के लिए भाषा विज्ञान शरीर विज्ञान का सहायक बनता है।

(5) **भाषा विज्ञान और पदार्थ विज्ञान (भौतिक शास्त्र)**—पदार्थ विज्ञान अर्थात् भौतिक शास्त्र यह स्पष्ट कर देता है कि ध्वनि दूर तक किस प्रकार पहुँच जाती है और मनुष्य के मस्तिष्क को उसका ज्ञान किस प्रकार होता है। पदार्थ विज्ञान की इस प्रकार की बात ही उसे भाषा विज्ञान का सहायक बनाती है।

भाषा विज्ञान के सामने दो प्रश्न होते हैं—(1) मनुष्य के ध्वनि यन्त्र से उच्चारित या उत्पन्न ध्वनियाँ किस तरह एक जगह से दूसरी जगह पहुँच जाती हैं? (2) उन ध्वनियों का ग्रहण अर्थात् उनका ज्ञान किस प्रकार होता है?

भाषा विज्ञान को इन दो प्रश्नों के उत्तर पदार्थ विज्ञान की सहायता से मिलते हैं। तब यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के ध्वनि यन्त्र से उच्चारित ध्वनियाँ शीघ्र **'ध्वनि लहरें'** बनकर मनुष्य के कानों में ध्वनि लहरों के रूप में पहुँच जाती हैं। फिर मनुष्य के कानों में विशिष्ट प्राकृतिक या शारीरिक व्यवस्था के आधार पर उन ध्वनि लहरों का रूपान्तर ध्वनियों में हो जाता है और मनुष्य का मस्तिष्क तब उन ध्वनियों को ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार पदार्थ विज्ञान भाषा विज्ञान का सहायक बन जाता है।

(6) **भाषा विज्ञान और भूगोल**—विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति के कारण एक ही बड़े प्रदेश में एक ही भाषा अलग-अलग ढंग से बोली जाती है। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण भाषा विज्ञान भूगोल को अपना सहायक बना लेता है और भूगोल भी भाषा विज्ञान को अपना सहायक बना लेता है।

भूगोल की सहायता से भाषा विज्ञान स्पष्ट कर देता है कि विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव शब्दों के उच्चारण पर, शब्दों के अर्थों पर, गाँव, नगर, नदी,

पहाड़ आदि के नामों पर पड़ा रहता है। भूगोल की सहायता से ही भाषा विज्ञान एक भाषा समाज की भाषा की एक भौगोलिक सीमा को और उस भौगोलिक सीमा के अन्दर एक ही भाषा की बोलियों के प्रचलित रहने के कारणों—दुर्गम पहाड़, घने जंगल, दुर्लंघ्य नदियाँ, रेगिस्तान आदि को स्पष्ट कर देता है। इसके लिए ही 'भाषिक भूगोल' (Linguistics Geography) और 'बोली भूगोल' (Dialect Geography) ये भाषा विज्ञान तथा भूगोल के सहयोग की शाखाएँ प्रचलित हो गयी हैं।

भूगोल भी भाषा विज्ञान की सहायता से अपने कुछ शब्दों के अर्थों को स्पष्ट कर देता है। जैसे किसी प्रदेश का नाम 'गोकुल' क्यों प्रचलित हुआ, यह जानने के लिए भूगोल 'गोकुल' शब्द का अर्थ जानने के लिए भाषा विज्ञान की सहायता लेता है, तब स्पष्ट होता है—'गो' का अर्थ 'गाय' है और 'कुल' का अर्थ 'वंश' है। अतः जिस प्रदेश में 'गायों का वंश' अधिक है वह है 'गोकुल'। इस प्रकार भाषा विज्ञान की सहायता से भूगोल किसी प्रदेश की भौगोलिक परिस्थिति स्पष्ट कर देता है।

(7) भाषा विज्ञान और इतिहास—भाषा विज्ञान भाषा का अध्ययन-विश्लेषण करते समय (क) राजनीतिक इतिहास, (ख) धार्मिक इतिहास और (ग) सामाजिक इतिहास की सहायता लेता है।

(क) राजनीतिक इतिहास की सहायता—भाषा विज्ञान राजनीतिक इतिहास की सहायता से स्पष्ट करता है कि एक भाषा समाज के प्रदेश पर जब दूसरा भाषा समाज राज्य करता है तब दोनों भाषा समाजों की भाषाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। परिणामस्वरूप दोनों भाषाओं में एक-दूसरी के अनेक शब्द और कुछ मुहावरे प्रचलित हो जाते हैं। इस प्रकार के कारण से ही हिन्दी में अरबी, फारसी, तुर्की इन विदेशी भाषाओं के अनेक शब्द तथा कुछ मुहावरे प्रचलित हो गये हैं। साथ ही साथ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी इस विदेशी भाषा के भी अनेक शब्द प्रचलित हो गये हैं। दूसरी ओर अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी इन विदेशी भाषाओं में भी हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अनेक शब्द प्रचलित हो गये हैं। इस प्रकार की वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए भाषा विज्ञान को प्रथम मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक इतिहास की सहायता लेनी पड़ेगी, जिस समय भारत में अरबी, फारसी, तुर्की, मुसलमान राज्यकर्ता बन गये थे। फिर भाषा विज्ञान को आधुनिक कालीन भारतीय राजनीतिक इतिहास की सहायता लेनी पड़ेगी, जिस समय भारत में अंग्रेज राज्यकर्ता बन गये थे।

दूसरी ओर राजनीतिक इतिहास भी भाषा विज्ञान की सहायता से अपने मध्यकालीन और आधुनिककालीन इतिहास को समझ जाता है और उस समय के विशिष्ट राज्यकर्ताओं—अरबी, फारसी, तुर्की भाषा बोलने वाले मुसलमान राज्यकर्ताओं तथा अंग्रेजी भाषा बोलने वाले राज्यकर्ताओं को भी जाना जाता है। भाषा

विज्ञान की सहायता से ही राजनीतिक इतिहास ऐतिहासिक शिलालेख, ताम्रपत्र आदि पढ़ सकता है।

(ख) धार्मिक इतिहास की सहायता—भाषा विज्ञान धार्मिक इतिहास की सहायता से स्पष्ट करता है कि व्यक्तिवाचक नामों पर किस प्रकार धर्म का प्रभाव पड़ा रहता है। भाषा विज्ञान हिन्दू धर्म के इतिहास की सहायता से समझ जाता है कि 'राम, कृष्ण, लक्ष्मण, सीता, द्रौपदी, अर्जुन' आदि व्यक्तिवाचक नामों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा है। मुसलमान धर्म के इतिहास की सहायता से भाषा विज्ञान समझ जाता है कि 'रहीम, अकबर, हमीदा' आदि व्यक्तिवाचक नामों पर मुसलमान धर्म का प्रभाव पड़ा है। ईसाई धर्म के इतिहास की सहायता से भाषा विज्ञान समझ जाता है कि 'जॉन, टॉम, मेरी' आदि व्यक्तिवाचक नामों पर ईसाई धर्म का प्रभाव पड़ा है।

भारत में अनेक गाँवों में हिन्दी के साथ-साथ उर्दू भी बोली जाती है। इसका कारण जानने के लिए भाषा विज्ञान को भारत के धार्मिक इतिहास की सहायता लेनी पड़ती है, जिससे स्पष्ट होता है कि भारत में अनेक गाँवों में हिन्दू धर्म के लोगों के साथ-साथ मुसलमान धर्म के भी लोग रहते हैं। इसलिए हिन्दू हिन्दी बोलते रहते हैं और मुसलमान उर्दू बोलते हैं। भाषा विज्ञान हिन्दू धर्म के इतिहास की सहायता से यह भी समझ जाता है कि हिन्दू धर्म के अनुसार राम भक्ति के प्रभाव से 'अवधी' बोली मध्य युग में साहित्यिक भाषा बन गयी थी और कृष्ण भक्ति के प्रभाव से 'ब्रज-भाषा' बोली भी मध्ययुग में साहित्यिक भाषा बन गयी थी।

दूसरी ओर धार्मिक इतिहास भी भाषा विज्ञान की सहायता से अपने से सम्बन्धित कुछ बातों को स्पष्ट कर सकता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान और धार्मिक इतिहास एक-दूसरे के सहायक बनते हैं।

(ग) सामाजिक इतिहास की सहायता—भाषा विज्ञान जिस भाषा का अध्ययन-विश्लेषण करता है, वह भाषा तो एक भाषा समाज का विचारों तथा भावों का आदान-प्रदान करने का साधन होती है। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण भाषा विज्ञान और सामाजिक इतिहास एक-दूसरे के सहायक बन जाते हैं।

समाज में परम्परा के रूप में जो विशिष्ट व्यवस्था बनी रहती है वह उस समाज की भाषा पर प्रभाव डालती रहती है। उस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए भाषा विज्ञान सामाजिक इतिहास की सहायता लेता है। जैसे हिन्दू समाज में प्रचलित 'विधवा' शब्द के स्पष्टीकरण के लिए भाषा विज्ञान को हिन्दू समाज के इतिहास की सहायता लेनी पड़ती है। तब स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज में उस स्त्री के अर्थ में ही 'विधवा' शब्द प्रचलित हुआ है, जिसे पति के मर जाने पर पुनर्विवाह करने की हिन्दू धर्म की अनुमति नहीं है। इस प्रकार भाषा विज्ञान समाज व्यवस्था में प्रचलित विशिष्ट सामाजिक शब्दों के सामाजिक सन्दर्भ को स्पष्ट करने के लिए सामाजिक इतिहास की ही सहायता लेता है।

दूसरी ओर समाज सम्बन्धी पूर्व बातों के स्पष्टीकरण के लिए सामाजिक इतिहास भी भाषा विज्ञान की सहायता लेता है।

इस प्रकार भाषा विज्ञान और इतिहास एक-दूसरे के सहायक बनकर रहते हैं।

(8) **भाषा विज्ञान और मानव विज्ञान**—मानव विज्ञान मानव के विकास का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करता है, तब मानव विज्ञान यह भी दिखाता है कि मानव के भिन्न-भिन्न प्रकार के विकासों का प्रभाव उसकी भाषा पर भी पड़ा रहता है। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण भाषा विज्ञान उस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए मानव विज्ञान की सहायता लेता है। जैसे मानव विज्ञान यह दिखाता है कि मनुष्य में जो तरह-तरह के अन्धविश्वास होते हैं, उनका भाषा पर बहुत प्रभाव पड़ा रहता है। उस प्रभाव को जानने के लिए मानव विज्ञान की सहायता भाषा विज्ञान को लेनी पड़ती है, जैसे 'जोखू', 'बेचू', 'छेदी' इन व्यक्तिवाचक नामों को स्पष्ट करने के लिए भाषा विज्ञान को समाज विज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है, तब मालूम होता है कि जिसके घर में बच्चा जीवित नहीं रहता उस घरवाले अन्धविश्वास की सहायता से बच्चे को जीवित रखने के लिए बच्चे को तराजू में जोखते या तौलते हैं और उसका नाम 'जोखू' रखते हैं या बच्चे को दो-चार पैसे में किसी दूसरे के हाथ बेचकर उसका नाम 'बेचू' रखते हैं या बच्चे की नाक छेदकर उसका नाम 'छेदी' रखते हैं। अन्धविश्वास के कारण ही बिच्छू के काटने को 'कीड़े ने छुआ' तथा शरीर में पीड़ा-दायक उष्णता उत्पन्न करने वाली 'चेचक' की बीमारी को 'शीतला देवी' या 'माता' कहा जाता है। इस प्रकार मानव विज्ञान भाषा के अध्ययन विश्लेषण में भाषा विज्ञान का सहायक बन जाता है।

इस प्रकार भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करते समय विभिन्न बातों को स्पष्ट करने के लिए भाषा विज्ञान अनेक प्रकारों के अन्य ज्ञानों, विज्ञानों और शास्त्रों की सहायता लेता रहता है। तभी भाषा की अनेक बातें व्यवस्थित स्पष्ट हो जाती हैं। दूसरी ओर भाषा विज्ञान भी यथासम्भव अन्य ज्ञानों, विज्ञानों और शास्त्रों का सहायक बन जाता है।

10. भाषा विज्ञान के अंग
(भाषा विज्ञान के अध्ययन के विभाग)

भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण करते समय भाषा के जिन पाँच अंगों पर मुख्य रूप से अपना ध्यान केन्द्रित करता है, वे पाँच अंग इस प्रकार हैं—ध्वनि, पद (रूप), वाक्य, शब्द, अर्थ। भाषा के इन मुख्य अंगों का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करने के लिए भाषा विज्ञान के भी पाँच मुख्य अंग बन जाते हैं—(1) ध्वनि विज्ञान, (2) पद विज्ञान (रूप विज्ञान), (3) वाक्य विज्ञान, (4) शब्द विज्ञान और (5) अर्थ विज्ञान।

(1) **ध्वनि विज्ञान** (Phonetics)—भाषा विज्ञान अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार जिसे भाषा के रूप में स्वीकार करता है, उस भाषा का मुख्य तथा मूल

आधार मनुष्य के ध्वनियन्त्र से उच्चारित ध्वनियाँ हैं। इसलिए ध्वनि विज्ञान भाषा की ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करता है।

ध्वनि विज्ञान सर्वप्रथम भाषा की ध्वनि को स्पष्ट करता है। फिर भाषा की ध्वनियों को उच्चारण के रूप में उत्पन्न करने वाले ध्वनि यन्त्र से सम्बन्धित स्वर-तन्त्री, जिह्वा, तालु, मूर्द्धा, वर्त्स, दाँत, ओंठ आदि उच्चारण अवयवों के साथ उनकी सहायता करने वाले मुख विवर, नासिका विवर, श्वास नलिका और प्रश्वास रूपी हवा को भी ध्वनि विज्ञान स्पष्ट कर देता है। ध्वनि विज्ञान अलग-अलग आधारों को लेकर भाषा की ध्वनियों का वर्गीकरण करता है। वह प्रथम 'स्वर' और 'व्यंजन' इन मुख्य दो वर्गों में भाषा ध्वनियों को विभाजित करता है, जिस भाषा ध्वनि के उच्चारण में प्रश्वास रूपी हवा मुख विवर में से अवाध गति से बाहर निकल जाती है, उसे 'स्वर ध्वनि' मानता है और जिस भाषा ध्वनि के उच्चारण में प्रश्वास रूपी हवा मुख विवर में स्थान-स्थान पर उच्चारण अवयवों से बाधित होती हुई बाहर निकल जाती है, उसे 'व्यंजन ध्वनि' मानता है। फिर ध्वनि विज्ञान विभिन्न आधारों को लेकर स्वर ध्वनियों और व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण कर देता है। इस कारण से ही अग्र स्वर, मध्य स्वर, पश्च स्वर, संवृत्त स्वर, अर्धसंवृत्त स्वर, अर्धविवृत्त स्वर, विवृत्त स्वर आदि स्वर ध्वनियों के वर्ग बनते हैं और उच्चारण अवयवों के स्थानों के आधार पर कंठ्य व्यंजन, मूर्धन्य व्यंजन, तालव्य व्यंजन, वर्त्स्य व्यंजन, दंत्य व्यंजन; ओष्ठ्य व्यंजन तथा उच्चारण अवयवों से प्रश्वास रूपी हवा को रोकने के प्रयत्न के आधार पर स्पर्श व्यंजन, स्पर्श संघर्षी व्यंजन, संघर्षी व्यंजन आदि व्यंजन ध्वनियों के वर्ग बनते हैं।

ध्वनि विज्ञान भाषा ध्वनि के 'मात्रा' और 'आघात' (बलाघात तथा सुर या स्वराघात) इन गुणों को स्पष्ट कर देता है। फिर जिन-जिन कारणों से ध्वनि परिवर्तन होता है उन-उन कारणों को और जिन-जिन दिशाओं में ध्वनि परिवर्तन होता है उन-उन दिशाओं को भी ध्वनि विज्ञान स्पष्ट करता है। फिर ध्वनि विज्ञान ध्वनि परिवर्तनों के कुछ प्रसिद्ध ध्वनि नियमों को भी स्पष्ट करता है। इस प्रकार ध्वनि विज्ञान भाषा की ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस प्रकार के ध्वनि विज्ञान को 'ध्वनि विचार' भी कहा जाता है।

(2) पद विज्ञान या रूप विज्ञान (Morphology)—पद विज्ञान या रूप विज्ञान को 'पद विचार' या 'रूप विचार' भी कहा जाता है। जो पद रचना या रूप रचना वाक्य रचना का मुख्य आधार बनी रहती उसी पद रचना या रूप रचना का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करने का कार्य पद विज्ञान या रूप विज्ञान को करना पड़ता है।

पद विज्ञान पद की परिभाषा देकर उस शब्द रूप को पद मानता है, जो वाक्य में प्रयोग करने योग्य होता है। पद विज्ञान स्पष्ट कर देता है कि वाक्य में

प्रयोग करने योग्य रूप धारण करने के लिए अर्थ तत्व (अर्थात् शब्द तत्व) और सम्बन्ध तत्व के पारस्परिक संयोग की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्व का परस्पर सम्बन्ध महत्व का होता है। सम्बन्ध तत्व के आधार पर ही 'योगात्मक वाक्य' और 'अयोगात्मक वाक्य' के रूप में वाक्य के दो प्रकार स्वीकार किये जाते हैं।

पद विज्ञान या रूप विज्ञान सम्बन्ध तत्व के उन प्रकारों को भी स्पष्ट करता है, जिनके सहयोग से वाक्य में प्रयुक्त होने वाला पद या शब्द रूप अपेक्षित अर्थ का बोध कराने में सफल हो जाता है। पद विज्ञान या रूप विज्ञान यह भी स्पष्ट करता है कि व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया इन शब्दों के साथ सम्बन्ध तत्व किस प्रकार महत्वपूर्ण कार्य करता है, जिससे इन शब्दों को पुल्लिग, स्त्रीलिंग सूचक, एकवचन-बहुवचन सूचक, उत्तम, मध्यम, अन्य पुरुष सूचक, भूत, वर्तमान, भविष्य काल सूचक तथा विभिन्न कारक सूचक रूप प्राप्त हो जाते हैं।

पद विज्ञान या रूप विज्ञान उन कारणों को भी स्पष्ट करता है जिनसे पद परिवर्तन या रूप परिवर्तन हो जाता है और साथ ही उन दिशाओं को भी स्पष्ट करता है जिनमें पद परिवर्तन या रूप परिवर्तन हो जाता है। पद विज्ञान को पद रचनाशास्त्र भी कहा जाता है।

(3) वाक्य विज्ञान (Syntax)—वाक्य विज्ञान को 'वाक्य विचार' या 'वाक्य रचना शास्त्र' भी कहते हैं। वाक्य विज्ञान वाक्य का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करता है। वाक्य विज्ञान वाक्य की परिभाषा देकर भाषा की सहज इकाई के रूप में वाक्य के उस स्वरूप को स्पष्ट करता है, जो एक पदीय या अनेक पदीय, अर्थपूर्ण, व्याकरणिक, अन्विति से तथा समापिका क्रिया से युक्त होता है।

वाक्य विज्ञान वाक्य में पद-विन्यास की विशेषताओं को भी स्पष्ट करता है। वाक्य में उपयोग करने के लिए अर्थ तथा रूप दोनों दृष्टियों से योग्य पद का चयन करना होता है। अपेक्षित अर्थबोध कराने की दृष्टि से वाक्य में पद-क्रम बहुत महत्व का होता है। इसलिए वाक्य विज्ञान निश्चित व्यवस्था पर आधारित उस पद-क्रम को स्पष्ट करता है, जो वाक्य में प्रयुक्त होता है।

वाक्य विज्ञान वाक्य के प्रकारों को साधार स्पष्ट कर देता है। क्रिया तथा आकृति के आधार पर वाक्य के दो-दो प्रकार होते हैं, तो भाव या अर्थ के आधार पर आठ और रचना के आधार पर तीन वाक्य प्रकार होते हैं। वाक्य विज्ञान वाक्य परिवर्तन के कारणों का भी विचार करता है।

(4) शब्द विज्ञान (Wordology)—शब्द विज्ञान भाषा के शब्दों का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करता है। पद विज्ञान या रूप विज्ञान में स्पष्ट किया रहता है कि वास्तव में शब्द ही सम्बन्ध तत्व के सहयोग से वाक्य में प्रयोग करने योग्य पद का रूप धारण कर लेता है। इसलिए ही शब्द विज्ञान शब्द के महत्व

को स्पष्ट करते हुए शब्दों का वर्गीकरण करता है, शब्द-समूह में होने वाले परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट करता है, शब्द से सम्बन्धित नाम विज्ञान, व्युत्पत्ति विज्ञान तथा कोश विज्ञान को भी स्पष्ट करता है।

(5) अर्थ विज्ञान (Semantics)—अर्थ विज्ञान मुख्य रूप से शब्दों के अर्थ का अध्ययन और विश्लेषण करता है। अर्थ विज्ञान प्रथम यह स्पष्ट करता है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध किस प्रकार का रहता है। अर्थ विज्ञान उन कारणों को भी स्पष्ट करता है, जो शब्दों के अर्थों में परिवर्तन करते हैं। जिन दिशाओं में अर्थ परिवर्तन हो जाता है, उन मुख्य तीन दिशाओं—अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच, अर्थादेश को भी अर्थ विज्ञान स्पष्ट करता है, जैसे हिन्दी में 'प्रवीण' शब्द अर्थ-विस्तार का बोधक, 'मृग' शब्द अर्थसंकोच का बोधक और 'असुर' शब्द अर्थादेश का बोधक है।

जहाँ पहले कुशलता से वीणा बजाने वाले के अर्थ में 'प्रवीण' शब्द प्रचलित था वहाँ अब कौनसा भी काम कुशलता से करने वाले व्यक्ति के अर्थ में प्रचलित है। जहाँ पहले 'मृग' शब्द सभी प्रकार के पशुओं का अर्थबोधक था, वहाँ अब केवल 'हरिण' पशु-विशेष का अर्थबोधक है। जहाँ पहले 'असुर' शब्द 'देव' का अर्थबोधक था वहाँ अब 'राक्षस' का अर्थबोधक है। इस प्रकार अर्थविज्ञान शब्दों के अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करने का महत्व का कार्य करता है।

उपर्युक्त ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान, शब्द विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान ये सभी अपने-अपने विषय का अध्ययन और विश्लेषण करते समय समकालिक (एककालिक), ऐतिहासिक (बहुकालिक), तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी अध्ययन पद्धति की सहायता लेते हैं।

वास्तव में उपर्युक्त भाषा विज्ञान के पाँचों अंग भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रधान विभाग हैं। इनके अतिरिक्त भाषा विज्ञान के अध्ययन के कुछ गौण विभाग भी हैं, जिनमें से कई 'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान' के अन्तर्गत आते हैं, वे इस प्रकार हैं—(1) भाषा की उत्पत्ति, (2) भाषाओं का वर्गीकरण, (3) भाषिक भूगोल, (4) बोली भूगोल, (5) मनोभाषा विज्ञान, (6) समाज भाषा विज्ञान, (7) शैली विज्ञान, (8) लिपि विज्ञान, (9) भाषा शिक्षण विज्ञान, (10) भाषा प्रकार विज्ञान, (11) जाति भाषा विज्ञान, (12) भाषा की प्रकृति, (13) भाषा के विविध रूप, (14) भाषा विज्ञान की वैज्ञानिकता, (15) नाम विज्ञान, (16) कोश विज्ञान आदि।

यहाँ स्पष्ट होता है कि भाषा विज्ञान का भाषा सम्बन्धी अध्ययन क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। उसके अध्ययन क्षेत्र में जो भी भाषा सम्बन्धी विषय आता है, वह उसकी विशिष्टता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है।

2
ध्वनि विज्ञान

1. ध्वनि (Sound)—जो भी आवाज श्रवणेन्द्रियों के माध्यम से सुनने को आती है, उसे ही सामान्य रूप से ध्वनि कहा जाता है। इस प्रकार की आवाज अर्थात् ध्वनि किसी वस्तु के ऊपर से नीचे गिरने पर सुनने को आती है, पानी में कुछ गिरने पर भी आती है, वस्तुओं के एक-दूसरे के साथ टकराने पर भी आती है, दरवाजा खटखटाने पर भी आती है, कोई वाद्य बजाने पर भी आती है, हवा तेज चलने, बादल गरजने तथा बिजली कड़कने पर भी आती है और पशु-पक्षी तथा मनुष्य के मुख से निकलने पर भी आती हैं। स्पष्ट है कि किसी भी प्रकार की आवाज को ध्वनि कहा जाने के कारण 'ध्वनि' यह संज्ञा अर्थ की दृष्टि से बहुत व्यापक है, लेकिन भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करने वाले भाषा विज्ञान की दृष्टि से व्यापक अर्थ वाली 'ध्वनि' यह संज्ञा स्वीकारणीय नहीं है।

2. भाषा ध्वनि (Speech Sound)—जो ध्वनि भाषा का मूल आधार होने के कारण भाषा विज्ञान के अध्ययन और विश्लेषण का विषय बनती है, उसे ही भाषा विज्ञान 'भाषा ध्वनि' के रूप में स्वीकार करता है।

उत्पन्न होने की दृष्टि से 'भाषा ध्वनि' मनुष्य के मुख के साथ सम्बन्ध रखती है। वैसे मनुष्य अपने मुख से भिन्न-भिन्न आवाजें निकाल सकता है, लेकिन भाषा विज्ञान उन विभिन्न आवाजों को भाषा की ध्वनि मान नहीं सकता। भाषा विज्ञान केवल उन आवाजों को ही 'भाषा की ध्वनि' मानता है, जो उत्पन्न होने की दृष्टि से मनुष्य के मुख में स्थित 'ध्वनि यन्त्र' के साथ अर्थात् ध्वनि यन्त्र के विभिन्न उच्चारण अवयवों के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखती है। मनुष्य बोलते समय अर्थात् मौखिक रूप में भाषा का प्रयोग करते समय इस प्रकार की ही 'भाषा ध्वनि' का प्रयोग करता है, इसलिए 'भाषा ध्वनि' को 'भाषण ध्वनि' (Phone) ऐसा भी कहा जाता है। उत्पन्न होने की दृष्टि से मनुष्य के मुख में स्थित ध्वनि यन्त्र के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखने के कारण ही भाषा विज्ञान वस्तुनिष्ठ प्रमाणों के आधार पर अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भाषा की विभिन्न ध्वनियों का अध्ययन और विश्लेषण करता

है। इस प्रकार की वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखकर 'भाषा ध्वनि' की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—"भाषा ध्वनि भाषा में मूल आधार के रूप में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है, जो मनुष्य के मुख में स्थित ध्वनि यन्त्र तथा प्रश्वास की सहायता से उच्चारित होकर श्रवणेन्द्रियों को सुनाई देती है।"

इस परिभाषा से भाषा ध्वनि की निम्नलिखित विशेषताएँ व्यक्त होती हैं—

(1) 'भाषा ध्वनि' भाषा में मूल आधार के रूप में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि है।

(2) 'भाषा ध्वनि' ही उस ध्वनि की लघुतम इकाई है, जो भाषा में मूल आधार के रूप में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार की वस्तुनिष्ठता के कारण 'भाषा ध्वनि' ही भाषा की सबसे छोटी इकाई है।

(3) 'भाषा ध्वनि' मनुष्य के मुख में स्थित ध्वनि यन्त्र के विभिन्न उच्चारण अवयवों तथा प्रश्वास की सहायता से ही उच्चारित की जाती है। इस प्रकार मनुष्य से उच्चारित की जाने पर ही 'भाषा ध्वनि' उत्पन्न होती है अर्थात् अस्तित्व में आ जाती है। उस समय उस ध्वनि को 'भाषा ध्वनि' के रूप में ही पहचाना जाता है।

(4) उच्चारित की जाने पर उत्पन्न होने वाली 'भाषा ध्वनि' श्रवणेन्द्रियों को सुनाई देती है और तब 'भाषा ध्वनि' के रूप में ही उसका ज्ञान हो जाता है।

(5) स्पष्ट है कि उच्चारण तथा श्रवण इन दोनों दृष्टियों से 'भाषा ध्वनि' का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। इस रूप में ही 'भाषा ध्वनि' भाषा का मूल आधार बन जाती है।

लेकिन भाषा विज्ञान में 'भाषा ध्वनि' शब्द का बार-बार प्रयोग करने के बदले 'भाषा ध्वनि' के अर्थ में ही केवल 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

3. ध्वनि ग्राम (स्वनिम : Phoneme)—भाषा विज्ञान जिस प्रकार की ध्वनि को 'भाषा ध्वनि' के रूप में स्वीकार करता है, उसी 'भाषा ध्वनि' के लिए विशिष्ट ध्वनि चिह्न को स्वीकार किया जाता है। वास्तव में भाषा विज्ञान के अनुसार केवल 'भाषा ध्वनि' कहने से काम नहीं बनता। काम तो तभी बनता है, जब 'भाषा ध्वनि' के लिए विशिष्ट 'ध्वनि चिह्न' को स्वीकार किया जाता है, जैसे हिन्दी भाषा की एक ध्वनि 'क्' है और दूसरी एक 'ख्' है। जब हिन्दी भाषा की 'क्' ध्वनि का उच्चारण करना होगा, तब 'क्' इस ध्वनि चिह्न का ही उच्चारण करना पड़ेगा, न कि 'ख्' ध्वनि चिह्न का। इसके विरुद्ध जब हिन्दी भाषा की 'ख्' ध्वनि का उच्चारण करना होगा, तब 'ख्' इस ध्वनि चिन्ह का ही उच्चारण करना पड़ेगा न कि 'क्' ध्वनि चिन्ह का। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा की ध्वनि के लिए जिस विशिष्ट 'ध्वनि चिह्न' को स्वीकार किया जाता है, उसमें उच्चारण की अपनी स्वतन्त्र और अलग निश्चितता होती है। इस प्रकार के 'ध्वनि चिह्न' को ही 'ध्वनि ग्राम' कहा जाता है। इसलिए 'ध्वनि ग्राम' की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"'ध्वनि ग्राम' भाषा में प्रयुक्त की जाने वाली ध्वनि अर्थात् 'भाषा ध्वनि' का वह 'ध्वनि चिह्न' है जो उच्चारणत्व तथा अर्थ भेदकत्व की दृष्टि से स्वतन्त्र, अलग और व्यतिरेकी निश्चितता से युक्त होता है।"

इस परिभाषा से 'ध्वनि ग्राम' की निम्नलिखित विशेषताएँ व्यक्त होती हैं—

(1) 'ध्वनि ग्राम' भाषा ध्वनि के लिए स्वीकृत तथा मान्य 'ध्वनि चिह्न' होता है। इस कारण ही जितनी भी भाषा ध्वनियाँ होती हैं वे सब स्वीकृत तथा मान्य 'ध्वनि चिह्न' होते हैं अर्थात् 'ध्वनि ग्राम' होते हैं।

(2) 'ध्वनि चिह्न' के रूप में 'ध्वनि ग्राम' स्वतन्त्र, अलग और व्यतिरेकी उच्चारण निश्चितता से युक्त होता है। इस कारण ही भाषा के प्रत्येक ध्वनि ग्राम का उच्चारण स्वतन्त्र, अलग और व्यतिरेकी होता है। परिणामस्वरूप भाषा के जितने भी 'ध्वनि ग्राम' होते हैं वे उच्चारण की दृष्टि से एक-दूसरे के व्यतिरेकी या विरोधी होते हैं। इस कारण ही 'क्' ध्वनि ग्राम का उच्चारण 'क्' ही होगा, न कि 'ख्' और 'ख्' ध्वनि ग्राम का भी उच्चारण 'ख्' ही होगा, न कि 'क्'। इस प्रकार उच्चारण निश्चितता के आधार पर प्रत्येक 'ध्वनि ग्राम' का स्वतन्त्र, अलग और व्यतिरेकी अस्तित्व बना रहता है।

(3) 'ध्वनि चिह्न' के रूप में 'ध्वनि ग्राम' स्वतन्त्र, अलग और व्यतिरेकी अर्थभेदक निश्चितता से भी युक्त होता है। इस कारण भाषा के ध्वनि ग्राम अर्थ की दृष्टि से एक-दूसरे के व्यतिरेकी या विरोधी होते हैं। परिणामस्वरूप प्रत्येक ध्वनि ग्राम भाषा की सार्थक लघुतम इकाई बनकर रहता है। अर्थ की दृष्टि से प्रत्येक 'ध्वनि ग्राम' अपने आप में सार्थक ध्वनि चिह्न अर्थात् सार्थक ध्वनि प्रतीक होता है।

'अमर-उमर' इस न्यूनतम शब्द-युग्म या न्यूनतम विरोधी शब्द-युग्म में केवल 'अ' और 'उ' इन उच्चारणभेदक तथा अर्थभेदक ध्वनि ग्रामों के कारण 'अमर' शब्द का अर्थ अलग है, तो 'उमर' शब्द का भी अर्थ अलग है।

'आम-काम' इस न्यूनतम विरोधी शब्द-युग्म में केवल 'आ' और 'क्' इन उच्चारणभेदक तथा अर्थभेदक ध्वनि ग्रामों के कारण 'आम' और 'काम' का अर्थ एक-दूसरे से अलग और स्वतन्त्र है।

'गाल-जाल' इस न्यूनतम विरोधी शब्द-युग्म में केवल 'ग्' और 'ज्' इन उच्चारणभेदक तथा अर्थभेदक ध्वनि ग्रामों के कारण 'गाल' और 'जाल' दोनों अलग-अलग और स्वतन्त्र-स्वतन्त्र अर्थबोधक हैं।

(4) उच्चारणभेदक तथा अर्थभेदक होने के कारण एक ध्वनिग्राम का प्रयोग दूसरे ध्वनिग्राम के स्थान पर नहीं किया जा सकता। इस कारण से ही 'गाल' का अर्थबोध कराने के लिए 'ग्' ध्वनि ग्राम के स्थान पर 'ज्' ध्वनि ग्राम का प्रयोग अनुचित है और 'जाल' का अर्थबोध कराने के लिए 'ज्' ध्वनि ग्राम के स्थान पर 'ग्' ध्वनि ग्राम का प्रयोग अनुचित है।

(5) भाषा के मौखिक प्रयोग में अन्य सहयोगी ध्वनियों के प्रभाव के फल-स्वरूप एक ध्वनि ग्राम के उच्चारित अलग-अलग रूप सुनने को आते हैं। जैसे 'ई' के सहयोग से कंठ्य 'क्' व्यंजन का उच्चारण 'कीमत' इस शब्द के उच्चारण में कुछ

आगे बढ़ जाता है, तो 'आ' के सहयोग से कंठ्य 'क्' का उच्चारण 'काम' इस शब्द के उच्चारण में कुछ पीछे हट जाता है और 'अ' के सहयोग से 'कल' शब्द के उच्चारण में कुछ मध्य में आ जाता है। इस प्रकार 'क्' ध्वनि ग्राम के 'क्^{1}, क्^{2}' और 'क्^{3}' ये उच्चारित अलग-अलग रूप हैं। इस कारण ही उच्चारित अलग-अलग रूपों को सूचित करने के लिए एक ही 'ध्वनि ग्राम' (ध्वनि चिह्न) को स्वीकार किया जाता है। इसलिए ही उच्चारित 'क^1, क^2, क^3' को सूचित करने के लिए 'क्' इस एक ही ध्वनि ग्राम को स्वीकार किया जाता है।

(6) भाषा के लिखित प्रयोग में प्रत्येक ध्वनि ग्राम के लिए अलग और स्वतन्त्र 'लिपि चिह्न' का प्रयोग किया जाता है। इस कारण ही 'लिपि चिह्न' लेखन भेदक होते हैं। इसलिए 'क्' लिपि चिह्न के स्थान पर 'ख्' लिपि चिह्न का प्रयोग किया नहीं जा सकता।

(7) ध्वनि विज्ञान के भीतर ध्वनि के रूप में 'ध्वनि ग्राम' का ही अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। अतः यहाँ 'ध्वनि ग्राम' का ही अर्थ 'भाषा ध्वनि' है और भाषा ध्वनि का ही अर्थ 'ध्वनि' है।

4. संध्वनि (उपस्वन : Allophone)—जिसे 'संध्वनि' कहा जाता है, उसकी परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"'संध्वनि' भाषा में प्रयुक्त की जाने वाली ध्वनि (अर्थात् 'भाषा ध्वनि' अर्थात् 'ध्वनि ग्राम') के बोलते समय अन्य सहयोगी ध्वनियों के प्रभाव के फलस्वरूप उच्चारित तथा अर्थहीन अलग-अलग रूप हैं, जो सुनने को आते हैं।"

इस परिभाषा से 'संध्वनि' (जिसे 'उपस्वन' भी कहते हैं) की निम्नलिखित विशेषताएँ व्यक्त हो जाती हैं—

(1) 'संध्वनि' केवल भाषा के मौखिक प्रयोग में अर्थात् बोलते समय ही अस्तित्व में आकर सुनने को आने वाला 'उच्चारित ध्वनि रूप' है।

(2) 'संध्वनि' बोलते समय अन्य सहयोगी ध्वनियों के प्रभाव के फलस्वरूप अस्तित्व में आने वाला 'उच्चारित ध्वनि रूप' है।

(3) 'संध्वनि' अर्थहीन 'उच्चारित ध्वनि रूप' है। इसका अर्थ यह है कि ध्वनि ग्राम के समान 'संध्वनि' न सार्थक है, न अर्थभेदक। इसलिए 'संध्वनि' से स्वतन्त्र अर्थबोध नहीं होता।

(4) जब बोलते समय 'ध्वनि' अन्य सहयोगी ध्वनियों के प्रभाव के फलस्वरूप अपना उच्चारण स्थान छोड़कर अन्य सहयोगी ध्वनि के उच्चारण स्थान की ओर चलित हो जाती है, तब उसी ध्वनि की 'संध्वनि' अस्तित्व में आ जाती है। जैसे—

"मैं विभिन्न कीमतवाली, कामवाली कल कुछ पुस्तकें लाऊँगा।"

यहाँ 'क' ध्वनि (ध्वनि ग्राम) की पाँच संध्वनियाँ बोलते समय अस्तित्व में आ जाती हैं। दीर्घ 'ई' (अग्रस्वर) के प्रभाव से 'क्' कंठ्य ध्वनि उच्चारण में कुछ

आगे आ जाती है और 'क्^{1}' संध्वनि अस्तित्व में आ जाती है। 'आ' (पश्च स्वर) के प्रभाव से 'क्' कंठ्य ध्वनि उच्चारण में कुछ पीछे जाती है और 'क्^{2}' संध्वनि अस्तित्व में आ जाती है। 'अ' (मध्य स्वर) के प्रभाव से 'क्' कंठ्य ध्वनि उच्चारण में कुछ मध्य में आ जाती है और 'क्^{3}' संध्वनि अस्तित्व में आ जाती है। 'उ' (पश्च स्वर) के प्रभाव से 'क्' कंठ्य ध्वनि उच्चारण में कंठ के पास कुछ थोड़ा आगे आ जाती है और 'क्^{4}' संध्वनि अस्तित्व में आ जाती है। 'ए' (अग्र स्वर) के प्रभाव से 'क्' कंठ्य ध्वनि उच्चारण में कुछ आगे आकर 'क्^{5}' संध्वनि उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यहाँ एक 'क्' ध्वनि (ध्वनि ग्राम) के 'क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{4}, क्^{5}' उच्चारित ध्वनि रूप हैं, जिन्हें 'संध्वनियाँ' कहा जाता है।

(5) 'क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{4}, क्^{5}' ये संध्वनियाँ शब्दों के अर्थों में भेद का कारण नहीं बनती हैं। इसलिए ये संध्वनियाँ अर्थहीन उच्चारित ध्वनि रूप हैं।

(6) बोलते समय जिस ध्वनि की संध्वनियाँ अस्तित्व में आती हैं, उस ध्वनि को परिवार माना जाता है और उसकी संध्वनियों को उस परिवार के सदस्य माना जाता है। इसलिए 'क्' ध्वनि परिवार है, तो 'क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{4}, क्^{5}' परिवार के सदस्य हैं। इसलिए ध्वनि और संध्वनियों को इस प्रकार दिखाया जाता है—

'क्' = क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{4}, क्^{5}।

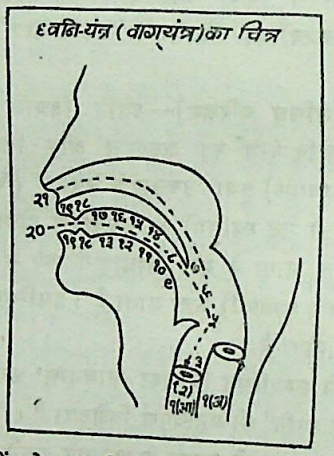
(7) भाषा के लिखित रूप में केवल ध्वनि के लिपि-चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

स्पष्ट है कि ध्वनि विज्ञान में ध्वनि के रूप में भाषा ध्वनि अर्थात् ग्राम ध्वनि का ही अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। इस कारण ही ध्वनि को उत्पन्न करने वाले उच्चारण अवयवों का विश्लेषण 'ध्वनि यन्त्र' के आधार पर किया जाता है।

5. ध्वनि यन्त्र (सचित्र परिचय)— ध्वनि विज्ञान मनुष्य के शरीर से सम्बन्धित उस विशिष्ट 'ध्वनि यन्त्र' का अध्ययन और विश्लेषण करता है, जिसे 'वाग्यन्त्र' (Vocal apparatus) तथा 'उच्चारण अवयव' (Vocal organ) भी कहा जाता है। इसी 'वाग्यन्त्र' से उन ध्वनियों का उच्चारण होता है, जो भाषा का मूल आधार होती हैं। जो ध्वनि भाषा के मूल आधार के रूप में स्वीकार की जाती है, उसे 'भाषा ध्वनि' (Speech sound) कहा जाता है। इसलिए ध्वनि विज्ञान में ध्वनि का अर्थ 'भाषा ध्वनि' ही होता है।

मनुष्य के शरीर से सम्बन्धित विशिष्ट 'वाग्यन्त्र' अर्थात् विशिष्ट ध्वनि यन्त्र से उच्चारित होना 'भाषा ध्वनि' की महत्वपूर्ण विशेषता है। 'भाषा ध्वनि' अपने आप उच्चारित नहीं होती। मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अपने ध्वनि यन्त्र की सहायता से 'भाषा ध्वनि' अर्थात् भाषा के मूल आधार रूप ध्वनि का उच्चारण करता है, जिसके लिए वह 'ध्वनि यन्त्र' के अग्रांकित उच्चारण अवयवों का उपयोग करता है—

1 (अ). भोजन नलिका (Gullet), 1 (आ). श्वास नलिका (Windpipe)
2. स्वरयन्त्र (कण्ठ-पिटक : Larynx)
3. स्वरतन्त्री (ध्वनितन्त्री : Vocal chord)
4. स्वरयन्त्र मुख (काकल : Glottis)
5. स्वरयन्त्र मुख-आवरण (अभिकाकल, स्वरयन्त्रावरण : Epiglottis)
6. उप अलिजिह्व (गलबिल, कण्ठमार्ग : Pharynx)
7. अलिजिह्व (कौवा : Urula)
8. कण्ठ (Gutter)
9 से 13 तक जिह्वा (जीभ : Tongue)
9. जिह्वामूल (Root of the tongue)
10. जिह्वापश्च (जिह्वापृष्ठ : Back of the tongue)
11. जिह्वामध्य (Middle of the tongue)
12. जिह्वाग्र (Front of the tongue)
13. जिह्वानोक (जिह्वानीक, जिह्वाणि : Tip of the tongue)
14 से 17 तक तालु (Palate)
14. कोमल तालु (Soft Palate)
15. मूर्धा (पूर्व तालु : Cerebrum)
16. कठोर तालु (Hard Palate)
17. वर्त्स (Alveola)
18. दन्त (दाँत : Teeth)
19. ओठ (ओष्ठ, होंठ : Lips)
20. मुखविवर (Mouth cavity)
21. नासिका विवर (Nosal cavity)



इस ध्वनि यन्त्र चित्र में भोजन नलिका को छोड़कर अन्य सब उच्चारण अवयव हैं जिनके सहयोग से भाषा की विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है बहुत से महत्वपूर्ण उच्चारण अवयव मुखविवर में ही हैं।

1 (अ). **भोजन नलिका (अन्न नलिका)**—श्वास नलिका के पीछे बिल्कुल निकट भोजन नलिका होती है। मुखविवर में से होकर जो भोजन या जल भीतर आता है, वह भोजन नलिका में पहुँचकर ही पेट तक जाता है। यह भोजन नलिका पीछे की ओर से श्वास नलिका का आधार बनी रहती है।

1 (आ). **श्वास नलिका**—भोजन नलिका के आगे बिल्कुल पास श्वास नलिका होती है, जो मुखविवर में से होकर या नासिका विवर में से होकर भीतर आयी श्वास रूप हवा को अपने माध्यम से फेफड़ों तक जाने देती है और फेफड़ों से बाहर की ओर फेंकी जाने वाली प्रश्वास (निःश्वास) रूप हवा को अपने माध्यम से होकर मुखविवर या नासिका विवर में से बाहर जाने देती है। इस प्रकार की श्वसन क्रिया श्वास नलिका की महत्वपूर्ण क्रिया है, जो भाषा की ध्वनियों को उत्पन्न करने में अर्थात् उनका उच्चारण करने में सहायक बनी रहती है। श्वास नलिका के भीतर कुछ ऐसे उच्चारण अवयव हैं, जो ध्वनियों के उच्चारण में सहायक बने रहते हैं।

2. **स्वर यन्त्र**—जहाँ श्वास नलिका का मध्य भाग कुछ मोटा होता है और बाहर की ओर उभरी घांटी के रूप में दिखाई देता है, वहाँ स्वर यन्त्र (या ध्वनि यन्त्र) होता है। यह स्वर यन्त्र भाषा की ध्वनियाँ उत्पन्न करने वाला मुख्य अवयव होता है। फेफड़ों से प्रश्वास के रूप में जो हवा बाहर निकलने के लिए श्वास नलिका में पहुँच जाती है, उसका सबसे पहले स्वर तन्त्री के साथ सम्बन्ध आता है।

3. **स्वर तन्त्री**—स्वर यन्त्र में ही स्वरतन्त्री का स्थान होता है। वास्तव में स्वर यन्त्र के भीतर स्वर तन्त्री के रूप में अनेक तन्त्रियों से युक्त पतली और माँसल झिल्ली के बने दो लचीले परदे होते हैं। इन्हें स्वरतन्त्री या स्वर-रज्जु कहा जाता है। मनुष्य बोलते समय स्वर तन्त्री की चार अवस्थाएँ बनती रहती हैं, जिनसे भाषा की भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न होने में सहायता मिलती है।

(1) स्वर तन्त्री की पहली अवस्था में पतली और माँसल झिल्ली के बने लचीले दोनों परदे एक-दूसरे से अलग, शिथिल तथा निःस्पन्द पड़े रहते हैं और उनके बीच का छिद्र अर्थात् काकल (कण्ठ द्वार) सामान्य स्थिति में खुला रहता है, जिसमें से होकर श्वास-प्रश्वास की सामान्य क्रिया होती रहती है। स्वर तन्त्री की इस अवस्था में 'क्, ख्, च्, छ्' आदि अघोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

(2) स्वर तन्त्री की दूसरी अवस्था में दोनों लचीले परदे एक-दूसरे के कुछ निकट आ जाते हैं और श्वास नलिका में से होकर बाहर निकलने वाली प्रश्वास रूपी हवा के धक्के से उन सटे पर्दों में कम्पन उत्पन्न हो जाता है। स्वर तन्त्री की इस दूसरी अवस्था में 'ग्, घ्, ङ्, झ्, ज्' आदि घोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

(3) स्वर तन्त्री की तीसरी अवस्था में दोनों लचीले परदे एक-दूसरे के इतने निकट आते हैं कि उनके बीच से बाहर जाने वाली प्रश्वास रूप हवा को उन परदों के साथ रगड़ते (घर्षण करते) हुए निकलना पड़ता है, जिससे उन परदों में युक्त स्वर

तन्त्रियों में कम्पन उत्पन्न होता है। स्वर तन्त्री की इस तीसरी अवस्था में भी 'ह्' आदि घोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इस तीसरी अवस्था में स्वर तन्त्रियों में जो कम्पन उत्पन्न होता है, उस कम्पन के स्वरूप और तेजी पर ही 'सुर' (Pitch) निर्भर करता है।

(4) स्वर तन्त्री की चौथी अवस्था में दो लचीले परदे एक-दूसरे से सटकर अपने ऊपर के तीन-चौथाई भाग को बन्द कर देते हैं और नीचे के एक-चौथाई भाग को खुला रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बाहर निकलने वाली प्रश्वास रूप हवा केवल एक-चौथाई भाग में से होकर निकल जाती है। स्वर तन्त्री की इस चौथी अवस्था में फुसफुसाहट वाली ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें जपित ध्वनि, जाप ध्वनि, फुसफुस ध्वनि या उपांशु ध्वनि (Whispered sound) भी कहते हैं। दो व्यक्ति आपस में धीमी आवाज में धीरे-धीरे बोलते हैं, तब इसी प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग करते हैं। फुसफुसाहट की सभी ध्वनियाँ अघोष होती हैं, क्योंकि उनके उच्चारण में स्वर तन्त्रियों में कम्पन नहीं होता।

4. स्वर-यन्त्र-मुख—स्वर तन्त्रियों के मध्य जो खुली जगह होती है, जिसे स्वर-यन्त्र-मुख या काकल कहते हैं, जिसमें से होकर श्वास-प्रश्वास की क्रिया लगातार होती रहती है। स्वर तन्त्री की चार अवस्थाओं के साथ-साथ स्वर-यन्त्र-मुख की भी चार अवस्थाएँ बनती रहती हैं, जो अघोष तथा घोष भाषा ध्वनियाँ उत्पन्न करने में सहायक होती हैं।

5. स्वर-यन्त्र-मुख आवरण—श्वास नलिका के ऊपर झुके हुए जीभ जैसे मांसल भाग को स्वर-यन्त्र-मुख आवरण या अभिकाकल या स्वर यन्त्रावरण कहा जाता है। जिस क्षण भोजन या जल मुखविवर में से होकर भोजन नलिका के मुख की ओर बढ़ने लगता है, तब स्वर-यन्त्र-मुख आवरण नीचे की ओर झुककर श्वास नलिका का मुख बन्द कर देता है। परिणामस्वरूप भोजन या जल भोजन नलिका में पहुँच जाता है, लेकिन जब भाषा की ध्वनियाँ उत्पन्न होती रहती हैं, तब स्वर-यन्त्र-मुख आवरण ऊपर की ओर उठा रहता है। भाषा की ध्वनियाँ उत्पन्न करने के लिए स्वर-यन्त्र-मुख आवरण का ऊपर की ओर उठा रहना महत्वपूर्ण होता है।

6. उप अलजिह्व (गलबिल/कंठ मार्ग)—स्वर-यन्त्र-मुख आवरण के ऊपर चौराह जैसी जो खुली जगह होती है, उसे उप अलिजिह्व या गलबिल या कंठ मार्ग कहते हैं। यह चौराह जैसी जगह एक ओर से श्वास नलिका के साथ, दूसरी ओर से भोजन नलिका के साथ, तीसरी ओर से नासिका विवर के साथ और चौथी ओर से मुखविवर के साथ जुड़ी रहती है। इस स्थान से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'उप अलिजिह्वीय ध्वनि' कहते हैं जिसके उच्चारण में जिह्वा मूल को पीछे हटाकर गल-बिल को संकीर्ण करना पड़ता है। अरबी भाषा की 'बड़ी हे' (ح) और 'ऐन' (ع) इसी स्थान से उच्चारित की जाती है।

7. अलिजिह्व (कौवा)—मुखविवर और गलबिल जहाँ पर मिले रहते हैं, उसके थोड़ा ऊपर की ओर जो जिह्वा के समान नोकदार मांसल छोटा भाग होता है, उसे अलिजिह्व या कौवा कहते हैं। इसकी तीन स्थितियों से ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें अलिजिह्वीय ध्वनियाँ कहते हैं। 'क, ख, ग' अलिजिह्वीय ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में जिह्वामूल या जिह्वापक्ष को अलिजिह्व के निकट जाना पड़ता है और प्रश्वास रूप हवा के मार्ग को सँकरा करना पड़ता है। कभी अलिजिह्व शिथिल पड़ा रहता है, तब कंठ के पास मुखविवर बन्द होकर हवा नासिका विवर में से होकर बाहर निकल जाती है। इस स्थिति में मुख बन्द करके 'हूँ' ऐसी ध्वनि निकाली जाती है। कभी अलिजिह्व तनकर नासिका विवर को बन्द करता है, तब हवा मुख-विवर में से होकर बाहर निकल जाती है और भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। कभी अलिजिह्व थोड़ा तनकर मुखविवर और नासिका विवर के बीच में खड़ा रहता है, तब अनुनासिक स्वर 'आँ' का उच्चारण होता है।

8. कण्ठ—कोमल तालु के कुछ नीचे और जिह्वामूल के कुछ ऊपर जो खुली जगह होती है, उसे कण्ठ कहा जाता है, जिसके सहयोग से 'क्, ख्, ग्, घ्, ङ्' कण्ठ्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

9. जिह्वामूल—सम्पूर्ण जिह्वा भाषा ध्वनियों को उत्पन्न करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण उच्चारण अवयव है। इसी जिह्वा का मूल स्वर-यन्त्र-मुख आवरण के कुछ ऊपर और अलिजिह्व के सामने होता है, जिसके सहयोग से 'क, ख, ग' जिह्वामूलीय ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

10. जिह्वापश्च—जिह्वामूल के आगे का और कोमल तालु के सामने का जो जिह्वा का भाग होता है, उसे जिह्वापश्च कहते हैं, जिसके सहयोग से 'क्, ख्, ग्, घ्, ङ्' जिह्वापश्चीय ध्वनियाँ अर्थात् कण्ठ्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

11. जिह्वामध्य—जिह्वा का मध्य भाग कठोर तालु के सामने होता है, जो 'च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, श्, ष्' जिह्वामध्यीय ध्वनियाँ उत्पन्न करने में सहायक बनता है।

12. जिह्वाग्र—जिह्वा का जो भाग जिह्वामध्य के आगे होता है, उसे जिह्वाग्र कहते हैं, जिसके सहयोग से 'ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्' जिह्वाग्रीय ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

13. जिह्वानोक—जिह्वा के सबसे आगे के नुकीले भाग को जिह्वानोक कहते हैं, जिसके सहयोग से 'त्, थ्, द्, ध् न्, र्, ल्, स्, ज्' ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

14. कोमल तालु—सम्पूर्ण तालु भी भाषा ध्वनियों को उत्पन्न करने की दृष्टि ने महत्वपूर्ण उच्चारण अवयव है। इसी तालु का जो भाग कण्ठ के पास आगे की ओर होता है और थोड़ा नीचे-ऊपर जा-आ सकता है, उसे कोमल तालु कहते हैं। इसके सहयोग से 'क्, ख्, ग्, घ्, ङ्' कोमल तालव्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

15. मूर्धा—कोमल तालु के पास आगे की ओर जो तालु का भाग वर्तुलाकार भाग होता है, उसे मूर्धा (मूर्द्धा) या पूर्व तालु कहते हैं। इसके सहयोग से ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्' मूर्धन्य (पूर्व तालव्य) ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

16. कठोर तालु—मूर्धा के पास आगे की ओर जो तालु का कठोर तथा खुरदरा भाग होता है, उसे कठोर तालु कहते हैं। इसके सहयोग से 'च्, छ्, ज्, झ्' तालव्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

17. वर्त्स—कठोर तालु के निकट आगे की ओर जो तालु का भाग होता है, उसे वर्त्स या मसूड़े कहते हैं। यह भाग ऊपर के दाँतों के मूल के पास होता है। इसके सहयोग के 'न्, ल् र् स्' वर्त्स्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

18. दन्त—भाषा ध्वनि के एक उच्चारण अवयव के रूप में ऊपर के दाँतों को स्वीकार किया जाता है। इनके और जिह्वानोक के सहयोग से 'त्, थ्, द्, ध्' दन्त्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

19. ओठ—दोनों ओठों को भी भाषा ध्वनि के उच्चारण अवयव के रूप में स्वीकार किया जाता है। इन दोनों के सहयोग से 'प्, फ्,, ब्, भ्, म्' ओष्ठ्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

20. मुखविवर—मुख में ओठों से लेकर गले तक जो खुली जगह होती है, उसे मुखविवर कहते हैं। भाषा ध्वनियों के उच्चारण में मुखविवर का महत्वपूर्ण सहयोग होता है, क्योंकि मुखविवर में विभिन्न उच्चारण अवयव प्रश्वास रूप हवा को रोकते हैं और भाषा की भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

21. नासिका विवर—नाक में से होकर गलबिल तक जो खुली जगह होती है, उसे नासिका विवर कहते हैं। नासिका विवर में उच्चारण अवयव नहीं होता। इसके सहयोग से नासिक्य (अनुनासिक) ध्वनियों का उच्चारण होता है।

ध्वनि यन्त्र से सम्बन्धित उपर्युक्त उच्चारण अवयव भाषा ध्वनि को उत्पन्न करने में महत्व का सहयोग देते हैं। इन उच्चारण अवयवों में से नीचे का ओठ, जिह्वा और स्वर तन्त्रियों को 'करण' भी कहते हैं, क्योंकि ये उच्चारण अवयव ऊपर, नीचे या पास जा-आकर भाषा ध्वनियों को उत्पन्न करने में करण का कार्य हैं। इनकी चलित विशेषता को ध्यान में रखकर इन्हें 'चल उच्चारण अवयव' भी कहते हैं। अन्य उच्चारण अवयव अर्थात् ऊपर का ओठ, ऊपर के दाँत, तालु आदि चलित नहीं होते, इसलिए उन्हें 'अचल उच्चारण अवयव' कहते हैं। ध्वनि यन्त्र के भीतर लगभग सभी उच्चारण अवयव अपने-अपने स्थान का महत्व रखते हैं, जो भाषा ध्वनि के उच्चारण में महत्व का कार्य करता है।

उपर्युक्त उच्चारण अवयवों के साथ-साथ प्रश्वास भी महत्वपूर्ण होता है। फेफड़े (फुफ्फुस) श्वास के रूप में बाहर की हवा मुखविवर या नासिका विवर तथा श्वास नलिका में से होकर भीतर खींच लेते हैं और फिर अन्दर की हवा को प्रश्वास

के रूप में श्वास नलिका, मुखविवर या नासिका विवर में से होकर बाहर फेंक देते हैं। फेफड़ों से प्रश्वास के रूप में फेंकी गयी हवा श्वास नलिका या मुखविवर में उच्चारण-अवयव प्रयत्नपूर्वक रोकने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भाषा की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः उपर्युक्त उच्चारण अवयवों के साथ प्रश्वास के रूप में बाहर निकलने वाली हवा भी महत्वपूर्ण होती है।

6. ध्वनियों का वर्गीकरण—फेफड़े में से प्रश्वास के रूप में हवा श्वास नलिका, मुखविवर और नासिका विवर में से होकर रीतियों से बाहर निकल आती है, जिनमें से एक रीति के आधार पर स्वर ध्वनियों के एक वर्ग को स्वीकार करते हैं और दूसरी रीति के आधार पर व्यंजन ध्वनियों के दूसरे वर्ग को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार स्वर और व्यंजन इन मुख्य दो वर्गों में ध्वनियों को वर्गीकृत किया जाता है। फिर विविध आधारों को लेकर स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण अलग से किया जाता है, तो व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण अलग से।

(1) स्वर वर्गीकरण और उसके आधार—श्वास नलिका, मुखविवर और नासिका विवर में से होकर हवा के बाहर निकलने की एक रीति के आधार पर स्वर ध्वनियों के वर्ग को स्वीकार किया जाता है। इसलिए 'स्वर' की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"स्वर भाषा की वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा बिना पूर्णतया रोके अबाध गति से बाहर निकल जाती है।"

इस परिभाषा से सूचित होता है कि (क) स्वर भाषा की ही ध्वनि है, जो उच्चारित की जाती है। (ख) स्वर के उच्चारण के समय श्वास नलिका या मुख-विवर या नासिका विवर में बाहर निकलने वाली हवा को पूर्णतया रोका नहीं जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि हवा को थोड़ा रोका जाता है, पर (ग) हवा अबाध गति से ही बाहर निकलती रहती है और स्वर ध्वनि का उच्चारण होता रहता है।

स्वर ध्वनियों के उच्चारण में उच्चारण-अवयवों तथा उच्चारण समय के साथ जो कुछ विशिष्ट होता है, उसी के अनुसार स्वर वर्गीकरण के आधार होते हैं।

(1) जिह्वा के उत्थापित होने वाले भाग के आधार पर—विभिन्न स्वर ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्र या मध्य या पश्च भाग थोड़ा ऊपर उठकर वायु मार्ग को मुखविवर में थोड़ा सँकरा करता है। इस प्रकार की विशिष्टता के अनुसार स्वरों के तीन वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(क) अग्र स्वर— जिस स्वर के उच्चारण में वायु मार्ग को सँकरा करने वाली सहायता के लिए जिह्वा का अग्र भाग ऊपर उठता है, उसे 'अग्र स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'ई, इ, ए, ऐ' अग्र स्वर हैं।

(ख) मध्य स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा का मध्य भाग ऊपर उठता है, उसे 'मध्य स्वर' कहते हैं। हिन्दी का 'अ' मध्य स्वर है।

(ग) पश्च स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा का पश्च भाग ऊपर उठता है, उसे 'पश्च स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'उ, ऊ, ओ, औ, आ' पश्च स्वर हैं।

2. जिव्हा की ऊपर उठने की ऊँचाई के आधार पर—स्वरों के उच्चारण में जिव्हा की ऊपर उठने की ऊँचाई की चार प्रकारों की विशिष्टता के अनुसार स्वरों के चार वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(च) विवृत स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा का पश्च भाग थोड़ी ऊँचाई तक ऊपर उठता है और जिव्हा तथा तालु के बीच में बहुत अन्तर बना रहता है, उसे 'विवृत स्वर' स्वर कहते हैं। हिन्दी का 'आ' विवृत स्वर है।

(छ) अर्ध विवृत स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा के अग्र, मध्य, पश्च ये तीनों भाग थोड़ी अधिक ऊँचाई तक ऊपर उठते हैं, उसे 'अर्ध विवृत स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'ऐ, अ, औ, आँ' अर्ध विवृत स्वर हैं।

(ज) अर्ध संवृत स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा के अग्र तथा पश्च भाग बहुत ऊँचाई तक ऊपर उठते हैं, उसे अर्ध संवृत स्वर कहते हैं। हिन्दी के 'ए, ओ' अर्ध संवृत स्वर हैं।

(झ) संवृत स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा के अग्र तथा पश्च भाग सबसे अधिक ऊँचाई तक ऊपर उठते हैं और जिव्हा तथा तालु के बीच में थोड़ा ही अन्तर बना रहता है, उसे 'संवृत स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'ई, इ, उ, ऊ' संवृत स्वर हैं।

3. ओष्ठों की स्थिति के आधार पर—स्वरों के उच्चारण में ओठों की तीन प्रकारों की विशिष्टता के अनुसार स्वरों के तीन वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(ट) प्रसृत स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में ओठ स्वाभाविक स्थिति में खुले रहते हैं, उसे 'प्रसृत स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'इ, ई, ए, ऐ' प्रसृत स्वर हैं। इन्हें 'विस्तृत स्वर' भी कहते हैं।

(ठ) वर्तुल स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में ओठों की स्थिति वर्तुल के आकार की होती है, उसे 'वर्तुल स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'उ, ऊ, ओ, औ' वर्तुल स्वर हैं।

(ड) अर्ध वर्तुल स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में ओठों की स्थिति अर्ध वर्तुलाकार होती है, उसे 'अर्ध वर्तुल स्वर' कहते हैं। हिन्दी का 'आ' अर्ध वर्तुल स्वर है।

इस वर्गीकरण की दृष्टि से हिन्दी का 'अ' उदासीन स्वर है, क्योंकि इसके उच्चारण में ओठों की विशिष्ट स्थिति नहीं बनती।

4. कोमल तालु और कौवे की स्थिति के आधार पर—स्वरों के उच्चारण में कोमल तालु और कौवे की स्थिति की दो प्रकारों की विशिष्टता के अनुसार स्वरों के दो वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(त) मौखिक स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में कोमल तालु कुछ पीछे हटकर और कौवा तनकर नासिका विवर को बन्द करते हैं और पूरी हवा को मुख विवर में से होकर बाहर निकलने देते हैं, उसे 'मौखिक स्वर' कहते हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी के 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' मौखिक स्वर बने रहते हैं।

(थ) नासिक्य (अनुनासिक स्वर)—जिस स्वर के उच्चारण में कोमल तालु और कौवा कुछ नीचे झुककर हवा को नासिका विवर में से होकर बाहर निकलने देते हैं, उसे नासिक्य या अनुनासिक स्वर कहते हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी के सभी स्वर 'नासिक्य स्वर' अर्थात् 'अनुनासिक स्वर' बन जाते हैं, जैसे 'अं, आं, इँ, ईं, उँ, ऊँ, एँ, ऐं, ओं, औं।

5. जिव्हा की अचल या चल स्थिति के आधार पर—स्वरों के उच्चारण में जिव्हा एक ही स्थिति में रहती या एक स्थिति से दूसरी स्थिति में चली जाती है। जिव्हा की इस प्रकार की अचल या चल विशिष्टता के अनुसार स्वरों के दो वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(प) मूल स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा एक ही स्थिति में अचल रहती है, उसे 'मूल स्वर' या 'असंयुक्त स्वर' कहते हैं। हिन्दी के 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' मूल स्वर अर्थात् असंयुक्त स्वर हैं।

(फ) संयुक्त स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में जिव्हा एक स्थिति से अर्थात् एक स्वर की स्थिति से दूसरे स्वर की स्थिति में चली जाती है, उसे 'संयुक्त स्वर' या 'चल स्वर' कहते हैं। अवधी तथा भोजपुरी बोली में हिन्दी के 'ऐ' और 'औ' संयुक्त स्वर अर्थात् चल स्वर हैं। इसलिए अवधी और भोजपुरी इन हिन्दी की बोलियों में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' और 'औ' का उच्चारण 'अउ' होता है। 'अइ' (नैया= नइया, भैया=भइया) और 'अउ' (कौवा=कउवा) दोनों संयुक्त स्वर अर्थात् चल स्वर हैं ; क्योंकि संयुक्त स्वर 'अइ' के उच्चारण में जिव्हा को 'अ' स्वर के उच्चारण की स्थिति से 'इ' स्वर के उच्चारण की स्थिति में चलित होना पड़ता है और संयुक्त स्वर 'अउ' के उच्चारण में जिव्हा को 'अ' स्वर के उच्चारण की स्थिति से 'उ' स्वर के उच्चारण की स्थिति में चलित होना पड़ता है। 'संयुक्त स्वर' को 'संध्यक्षर' भी कहते हैं।

6. मुख की मांसपेशियों की शिथिल या दृढ़ स्थिति के आधार पर—इस आधार को लेकर स्वरों के दो वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(ब) शिथिल स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में मुख की मांसपेशियां शिथिल स्थिति में रहती हैं, उसे शिथिल स्वर कहते हैं। हिन्दी के 'अ इ उ' शिथिल स्वर हैं।

(भ) दृढ़ स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में मुख की मांसपेशियां दृढ़ अर्थात् कठोर स्थिति में रहती हैं, उसे दृढ़ स्वर कहते हैं। हिन्दी के 'आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ औ' दृढ स्वर हैं।

7. स्वर तन्त्रियों की स्थिति के आधार पर—इस आधार पर स्वरों के दो वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

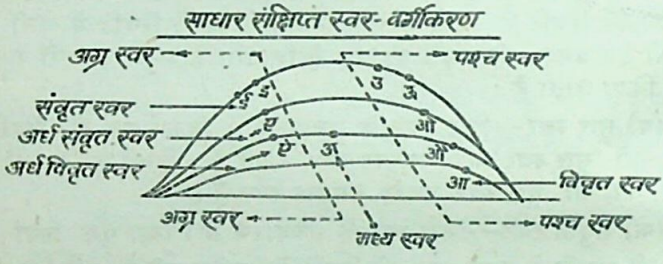
(य) घोष स्वर—इसके उच्चारण में स्वर तन्त्रियाँ एक-दूसरी के निकट आने से हवा घर्षण करती हुई बाहर की ओर निकलती है। हिन्दी के सभी स्वर 'घोष स्वर' हैं।

(र) अघोष स्वर—इसके उच्चारण में स्वर तन्त्रियाँ एक-दूसरी से दूर रहने से हवा घर्षण न करती हुई बाहर की ओर निकलती है। हिन्दी का कोई स्वर 'अघोष स्वर' नहीं है।

8. मात्रा अर्थात् उच्चारण समय की स्थिति के आधार पर—इस आधार पर स्वरों के दो वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(ल) ह्रस्व स्वर—इसके उच्चारण में कुछ समय लगता है, जिसे एक मात्रा माना जाता है। हिन्दी के 'अ, इ, उ' ह्रस्व स्वर हैं।

(व) दीर्घ स्वर—इसके उच्चारण में अधिक समय लगता है, जिसे दो मात्राएँ माना जाता है। हिन्दी के 'आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' दीर्घ स्वर हैं।



स्वर	आधार तथा स्वर-वर्गीकरण							
	1	2	3	4	5	6	7	8
	जीभ का उठने वाला भाग	जीभ की ऊपर उठने की ऊँचाई	ओठों की स्थिति	कोमल तालु और कौवे की स्थिति	जीभ की अचलता/ चलता	मुख में शिथिलता/ दृढ़ता	स्वर-तन्त्री की स्थिति	मात्रा
ई	अग्र	संवृत	प्रसृत	मौखिक	मूल	दृढ़	घोष	दीर्घ
इ	अग्र	संवृत	प्रसृत	,,	,,	शिथिल	,,	ह्रस्व
ए	अग्र	अर्ध संवृत	प्रसृत	,,	,,	दृढ़	,,	दीर्घ
ऐ	अग्र	अर्ध विवृत	प्रसृत	,,	संयुक्त	दृढ़	,,	दीर्घ
अ	मध्य	अर्ध विवृत	उदासीन	,,	मूल	शिथिल	,,	ह्रस्व
उ	पश्च	संवृत	वर्तुल	,,	,,	शिथिल	,,	ह्रस्व
ऊ	पश्च	संवृत	वर्तुल	,,	,,	दृढ़	,,	दीर्घ
ओ	पश्च	अर्ध संवृत	वर्तुल	,,	,,	दृढ़	,,	दीर्घ
औ	पश्च	अर्ध विवृत	वर्तुल	,,	संयुक्त	दृढ़	,,	दीर्घ
आ	पश्च	विवृत	अर्ध वर्तुल		मूल	दृढ़		दीर्घ

उपर्युक्त दस स्वरों को हिन्दी भाषा के मूल स्वर माना जा सकता है, लेकिन हिन्दी की अवधी और भोजपुरी इन बोलियों में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' (=मैया→मइया, गैया→गइया) और 'औ' का उच्चारण 'अउ' (=मौन→मउन, नौ→नउ) किया जाता है। 'अइ' तथा 'अउ' को 'संयुक्त स्वर' या 'संध्यक्षर' या 'गुच्छीय स्वर' कहा जाता है। इस कारण से अर्थात् 'अइ' ऐसे उच्चारण से 'ऐ' को और 'अउ' ऐसे उच्चारण से 'ऐ' को और 'अउ' ऐसे उच्चारण से 'औ' को 'संयुक्त स्वर' या 'संध्यक्षर' कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि दो स्वरों के संयुक्त उच्चारण को 'संयुक्त स्वर' या 'संध्यक्षर' कहते हैं। 'संयुक्त स्वर' को 'स्वर गुच्छ' भी कहते हैं।

जब शब्द में दो या अधिक स्वर एक के बाद एक आते हैं, तब उस स्थिति को 'स्वर संयोग' या 'स्वर क्रम' कहते हैं। जैसे 'आओ, आइए, जाइए' इन शब्दों में 'स्वर संयोग' अर्थात् 'स्वर क्रम' है। 'स्वर क्रम' को 'स्वरानुक्रम' भी कहते हैं।

कुछ स्वर ऐसे होते हैं, जो किसी भाषा विशेष के न होकर विभिन्न भाषाओं के स्वरों के स्थान निर्धारण के लिए बनाए हुए मानदण्ड होते हैं इसलिए उन्हें 'मानक स्वर' या 'आदर्श स्वर' कहते हैं। जैसे 'ई (*i*), ए (*e*), ऐ (ɛ), अऽ (£), आ (*a*), औ (ɔ), ओ (o), ऊ (u)' इन स्वरों को 'मानक स्वर' माना जाता है।

(फ) **व्यंजन वर्गीकरण और उसके आधार**—श्वास नलिका मुख विवर और नासिका विवर में से होकर हवा के बाहर निकलने की दूसरी रीति के आधार पर व्यंजन ध्वनियों के वर्ग को स्वीकार किया जाता है। इसलिए 'व्यंजन' की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"व्यंजन, भाषा की वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में बाहर निकलने वाली हवा को उच्चारण अवयवों से कम-अधिक मात्रा में रोककर फिर आगे जाने दिया जाता है।"

इस परिभाषा से सूचित होता है कि (अ) व्यंजन भाषा की ही ध्वनि है, जो उच्चारित की जाती है। (आ) व्यंजन के उच्चारण के समय बाहर निकलने वाली हवा को श्वास नलिका तथा मुख विवर में कम-अधिक मात्रा में उच्चारण अवयवों से रोका जाता है अर्थात् हवा को अवरुद्ध किया जाता है, जिससे वायु मार्ग में अत्यल्प समय के लिए अवरोध उत्पन्न होता है। (इ) फिर बाधित हवा झट से व्यंजन ध्वनि को उत्पन्न कर अवरोध से मुक्त होती है और बाहर निकल जाती है।

व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में प्रत्येक उच्चारण अवयव का स्थान महत्वपूर्ण होता है और उच्चारण अवयवों का प्रयत्न भी महत्वपूर्ण होता है। इसलिए स्थान और प्रयत्न के आधार पर व्यंजन वर्गीकरण किया जाता है।

(फ-1) **स्थान के आधार पर व्यंजन वर्गीकरण**—विभिन्न उच्चारण अवयवों के स्थान के अनुसार व्यंजनों का वर्गीकरण करते हैं; क्योंकि उच्चारण अवयव अपने-अपने स्थान पर भी व्यंजन ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

(1) **स्वर यन्त्र मुखी व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण स्वर यन्त्र मुख से होता है, उसे 'स्वर यन्त्र मुखी व्यंजन' या 'स्वर यन्त्र स्थानीय व्यंजन' या 'काकल्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी 'ह' स्वर यन्त्र मुखी व्यंजन है।

(2) **उप अलिजिव्हीय व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण उप अलिजिव्ह से होता है, उसे 'उप अलिजिव्हीय व्यंजन' कहते हैं। अरबी की 'बड़ी हे' और 'ऐन' का उच्चारण इसी स्थान से होने के कारण वे उप अलिजिव्हीय व्यंजन हैं।

(3) **अलिजिव्हीय व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण अलिजिव्ह से होता है, उसे 'अलिजिव्हीय व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी में प्रचलित 'क, ख, ग' अलिजिव्हीय व्यंजन हैं, जिन्हें 'जिव्हामूलीय व्यंजन' भी कहते हैं।

(4) **कोमल तालव्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण कोमल तालु से होता है, उसे 'कोमल तालव्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'क्, ख्, ग्, घ्, ङ्' कोमल तालव्य व्यंजन हैं, जिनका उच्चारण 'कंठ' से भी होता है, इसलिए जिन्हें 'कंठ्य व्यंजन' भी कहते हैं।

(5) **मूर्धन्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण मूर्धा (पूर्व तालु) की सहायता से होता है, उसे 'मूर्धन्य व्यंजन' या पूर्व 'तालव्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् ड़्, ढ़्' मूर्धन्य व्यंजन हैं।

(6) **तालव्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण कठोर तालु से होता है, उसे 'तालव्य व्यंजन' या 'कठोर तालव्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, श्, य्, ष्' तालव्य व्यंजन हैं।

(7) **वर्त्स्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण वर्त्स से होता है, उसे 'वर्त्स्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'न्, ल्, र्, स्, ज्' वर्त्स्य व्यंजन हैं।

(8) **दन्त्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण ऊपर के दाँतों के निचले भाग से होता है, उसे 'दन्त्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'त्, थ्, द्, ध्' दन्त्य व्यंजन हैं।

(9) **दन्त्योष्ठ्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण नीचे का ओठ और ऊपर के दाँतों की नोक की सहायता से होता है, उसे 'दन्त्योष्ठ्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'व, फ, व' दन्त्योष्ठ्य व्यंजन हैं।

(10) **ओष्ठ्य व्यंजन**—जिस व्यंजन का उच्चारण दोनों ओठों से होता है, उसे 'ओष्ठ्य व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'प्, फ्, ब्, भ्, म्' ओष्ठ्य व्यंजन हैं। इन व्यंजनों को 'द्वयोष्ठ्य व्यंजन' भी कहते हैं।

(फ-2) **प्रयत्न के आधार पर व्यंजन वर्गीकरण**—यह भी महत्वपूर्ण है कि भाषा ध्वनि के उच्चारण के लिए अर्थात् भाषा ध्वनि को उत्पन्न करने के लिए या एक उच्चारण अवयव को दूसरे उच्चारण अवयव के निकट जाने या दो उच्चारण अवयवों को एक-दूसरे के निकट आने का प्रयत्न करना पड़ता है, जिस प्रयत्न से

प्रश्वास रूप हवा को क्षणभर के लिए रोककर भाषा ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार के प्रयत्न के आधार पर भी व्यंजनों का वर्गीकरण किया जाता है।

(1) स्पर्श व्यंजन—जिस व्यंजन के उच्चारण में एक उच्चारण अवयव दूसरे उच्चारण अवयव के पास जाकर उसका स्पर्श करता है, या दो उच्चारण अवयव एक-दूसरे के निकट जाकर स्पर्श-सी स्थिति उत्पन्न करते हैं, उस व्यंजन को 'स्पर्श व्यंजन' या 'स्फोट व्यंजन' या 'स्फोटक व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'क ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त्, थ, द्, ध्, प, फ, ब, भ, क' स्पर्श व्यंजन हैं। इनके उच्चारण में प्रथम प्रश्वास रूप हवा का उच्चारण स्थान के पास आगमन होना आवश्यक होता है, द्वितीय एक उच्चारण अवयव से दूसरे उच्चारण अवयव का स्पर्श करके या दो उच्चारण अवयवों से एक-दूसरे के निकट आकर स्पर्श-सी स्थिति उत्पन्न करके हवा को रोकना आवश्यक होता है और तृतीय उच्चारण अवयव या उच्चारण अवयवों को झट से अलग होकर हवा को बाहर निकलने देना आवश्यक होता है। तीसरी क्रिया को 'स्फोट' या 'स्फोटन' कहते हैं; क्योंकि इसी तीसरी क्रिया के होने पर ही स्पर्श व्यंजन उत्पन्न होते हैं। इसी कारण स्पर्श व्यंजन को 'स्फोट व्यंजन' या 'स्फोटक व्यंजन' भी कहते हैं।

असंयुक्त स्पर्श व्यंजन के उच्चारण में 'स्फोट' की क्रिया स्पष्ट रूप से होती है, इसलिए असंयुक्त स्पर्श व्यंजन को 'पूर्ण स्पर्श व्यंजन' कहते हैं। इसके विरुद्ध संयुक्त स्पर्श व्यंजन के उच्चारण में स्फोट की क्रिया कुछ अस्पष्ट रूप से होती है, इसलिए संयुक्त स्पर्श व्यंजन को 'अपूर्ण स्पर्श व्यंजन' कहते हैं। जैसे 'वक्त' और 'सप्त' इन शब्दों में 'क्त' और 'प्त' इन संयुक्त व्यंजनों में 'क' और 'प' के उच्चारण में स्फोट की क्रिया कुछ अस्पष्ट रूप से होती है। इसलिए संयुक्त व्यंजन के रूप में यहाँ 'क और 'प अपूर्ण स्पर्श व्यंजन हैं।

स्पर्श व्यंजन 'क्, ख्, ग्, घ्' के उच्चारण में जिव्हापश्च कोमल तालु का स्पर्श, 'ट्, ठ्, ड्, ढ्' के उच्चारण में जिव्हाग्र मूर्धा (पूर्व तालु) का स्पर्श, 'त्, थ्, द्, ध्' के उच्चारण में जिव्हानोक ऊपर के दाँतों का स्पर्श और 'प्, फ्, ब्, भ्' के उच्चारण में नीचे का ओठ ऊपर के ओठ का स्पर्श करता है।

(2) स्पर्श संघर्षी व्यंजन—जिस व्यंजन के उच्चारण में स्पर्श व्यंजन की तीनों क्रियाओं के साथ (स्फोट क्रिया के बाद) 'संघर्ष' की चौथी क्रिया भी होती है, उस व्यंजन को 'स्पर्श संघर्षी व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'च्, छ्, ज्, झ्' स्पर्श संघर्षी व्यंजन हैं। स्पर्श संघर्षी व्यंजन के उच्चारण के लिए प्रथम जिव्हामध्य कठोर तालु का स्पर्श करता है और फिर थोड़ा अलग हो जाता है, तब कठोर तालु और जिव्हामध्य के बीच में से हवा घर्षण करती हुई बाहर जाने लगती है। इस स्थिति में स्पर्श संघर्षी व्यंजन उत्पन्न होते हैं।

(3) **संघर्षी व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण के लिए एक उच्चारण अवयव दूसरे उच्चारण अवयव के बहुत निकट आकर रुकता है और उन दोनों के बीच की सँकरी खुली जगह में से हवा घर्षण करती हुई बाहर जाने लगती है, उस व्यंजन को संघर्षी व्यंजन कहते हैं। हिन्दी के 'ह्, ख्, ग्, श्, ष्, स्, ज़्, फ़्, व्' संघर्षी व्यंजन हैं। संघर्षी व्यंजन को उत्पन्न करते समय हवा का घर्षण करते हुए बाहर निकल जाने के लिए संघर्षी व्यंजन 'ह्' के उच्चारण में स्वर तन्त्रियों का निकट आना, 'ख्, ग्' के उच्चारण में जिव्हामूल का कौवे के निकट जाना, 'ष्, श्' के उच्चारण में जिव्हामध्य का कठोर तालु के निकट जाना, 'स्, ज़्' के उच्चारण में जिव्हानोक का वर्त्स (मसूढ़े) के पास जाना और 'फ़्, व्' के उच्चारण में नीचे के ओठ का ऊपर के दाँतों के निकट जाना आवश्यक होता है।

(4) **नासिक्य (अनुनासिक) व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण के लिए एक उच्चारण अवयव दूसरे उच्चारण अवयव के निकट इस प्रकार आता है, जिससे रोकी गयी हवा नासिका विवर में से होकर बाहर निकल जाती है, उस व्यंजन को 'नासिक्य व्यंजन' या 'अनुनासिक व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'ङ्, ण्, न्, न्, म्' नासिक्य व्यंजन हैं। नासिक्य व्यंजन 'ङ्' के उच्चारण में जिव्हापश्च को कोमल तालु का स्पर्श 'ण्' के उच्चारण में जिव्हाग्र को मूर्धा का स्पर्श 'न्' के उच्चारण में जिव्हामध्य को कठोर तालु का स्पर्श, 'न' के उच्चारण में जिव्हानोक को वर्त्स का स्पर्श और 'म' के उच्चारण में नीचे के ओठ को ऊपर के ओठ का स्पर्श करना पड़ता है।

(5) **पार्श्विक व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण में जिव्हानोक वर्त्स का इस तरह स्पर्श करती है, जिससे ऊपर उठे जिव्हानोक की दोनों ओर से हवा बाहर निकल जाती है, उस व्यंजन को 'द्विपार्श्विक व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी का 'ल्' द्विपार्श्विक व्यंजन है। इस प्रकार के पार्श्विक व्यंजन को 'पार्श्व व्यंजन' या 'विभक्त व्यंजन' भी कहते हैं।

(6) **लुण्ठित व्यंजन**—हिन्दी के 'र्' व्यंजन को 'लुण्ठित व्यंजन' माना जाता है; क्योंकि 'र्' व्यंजन के उच्चारण में जिव्हानोक को बेलन की तरह लपेटा या लुंठित किया जाता है। कभी-कभी 'र्' को 'कम्पनयुक्त व्यंजन' या 'प्रकम्पित व्यंजन' भी कहते हैं। तब यह माना जाता है कि 'र्' के उच्चारण में कुछ कम्पन उत्पन्न होता है।

(7) **उत्क्षिप्त व्यंजन**—जब जिव्हानोक को उलटकर मूर्धा पर झटके से मार दिया जाता है, तब उत्पन्न होने वाले व्यंजन को 'उत्क्षिप्त व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी में प्रचलित 'ड़, ढ़' उत्क्षिप्त व्यंजन हैं।

(8) **अर्धस्वर व्यंजन**—जो व्यंजन उच्चारण के प्रयत्न में स्वर जैसा लगता है, उसे अर्धस्वर व्यंजन कहते हैं। हिन्दी के 'य्, व्' अर्धस्वर व्यंजन हैं।

(9) **घोष व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण के प्रयत्न में स्वर तन्त्रियाँ एक-दूसरी के निकट आकर वायुमार्ग को सँकरा करती हैं, जिससे बाहर निकलने वाली हवा उनसे रगड़ते (घर्षण करते) हुए और उनमें कम्पन उत्पन्न करते हुए बाहर निकल जाती है, उस व्यंजन को 'घोष व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ्, ड्, ढ्, ण्, द्, ध्, न्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, ह्, ग़्, ज़्, व़्, ड़्, ढ़्' घोष व्यंजन हैं।

(10) **अघोष व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण के प्रयत्न में स्वर तन्त्रियाँ दूर तथा कम्पनरहित रहती हैं, उसे अघोष व्यंजन कहते हैं। हिन्दी के 'क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्, श्, ष्, स्' अघोष व्यंजन हैं।

(11) **अल्पप्राण व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण के प्रयत्न में हवा का कम बल भी पर्याप्त होता है, उसे 'अल्पप्राण व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'क्, ग्, ङ्, च्, ज्, ञ्, ट् ड् ण्, त्, द्, न्, प्, ब्, म्, य्, र्, ल् व्, स्, श्' अल्पप्राण व्यंजन हैं। 'क़्, ग़्, ज़्, व़्, ड़्' भी अल्पप्राण व्यंजन हैं।

(12) **महाप्राण व्यंजन**—जिस व्यंजन के उच्चारण के प्रयत्न में हवा का अधिक बल आवश्यक होता है, उसे 'महाप्राण व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी के 'ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ्, थ्, ध्, फ्, भ्, ह्, ख, फ़्, ढ़्' महाप्राण व्यंजन हैं।

(13) **द्वित्व व्यंजन**—जिस अल्पप्राण व्यंजन के उच्चारण में मात्रा की दृष्टि से कुछ दीर्घता आ जाती है, उसे द्वित्व व्यंजन कहा जाता है। केवल लेखन में द्वित्व व्यंजन में अधिक स्पष्टता आ जाती है। जैसे पक्का, बच्चा इन शब्दों में 'क्+क्' और 'च्+च्' का संयोग स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसे 'द्वित्व व्यंजन' कहा जाता है, लेकिन उच्चारण में 'क्+क्' या 'च्+च्' की केवल दीर्घता ही सुनाई देगी। इसलिए 'द्वित्व व्यंजन' को 'दीर्घ व्यंजन' भी कहा जाता है। 'द्वित्व व्यंजन' या 'दीर्घ व्यंजन' के मध्य में उच्चारण की दीर्घता होती है। महाप्राण व्यंजन का इस रूप में द्वित्व नहीं होता।

(14) **संयुक्त व्यंजन**—दो भिन्न व्यंजनों के उस मेल को 'संयुक्त व्यंजन' या 'व्यंजन गुच्छ' कहते हैं, जिसका उच्चारण एक ही प्रयत्न में किया जाता है। जैसे 'अक्ल' में 'क्ल' (क्+ल्) 'स्वत्व' में 'स्व' (स्+व्), 'त्व' (त्+व्) या 'आम्र' में 'म्र' (म्+र्) 'संयुक्त व्यंजन' या 'व्यंजन गुच्छ' या 'व्यंजन संयोग' है।

(1) व्यंजन के द्वित्तव, संयुक्तत्व तथा स्वर के भी संयुक्तत्व को 'संयुक्त ध्वनियाँ' या 'ध्वनि संयोग' या 'ध्वनि गुच्छ' कहा जाता है, जिनके उच्चारण में या तो एक ही ध्वनि का दीर्घ उच्चारण या भिन्न ध्वनियों का एक साथ उच्चारण करने का प्रयत्न करना पड़ता है। (2) घोष ध्वनियों को 'नाद' या 'संचार' और अघोष ध्वनियों को 'श्वास' या 'विवार' भी कहा जाता है। (3) व्यंजन अनुक्रम में दो अलग व्यंजन उच्चारण में संयुक्त व्यंजन से लगते हैं। जैसे कमला (म्ला)।

साधार संक्षिप्त व्यंजन वर्गीकरण

उच्चारण प्रयत्न ↓		स्थान 1 द्व्यो-ष्ठ्य	2 दंत्यो-ष्ठ्य	3 दंत्य	4 वर्त्स्य	5 तालव्य	6 मूर्धन्य	7 कंठ्य/कोमल तालव्य	8 अलि-जिह्वीय	9 स्वर यन्त्र मुखी
1. स्पर्श	अल्पप्राण अघोष	प्		त्			ट्	क्	क़	
	महाप्राण	फ्		थ्			ठ्	ख्		
	अल्पप्राण घोष	ब्		द्			ड्	ग्		
	महाप्राण	भ्		ध्			ढ्	घ्		
2. स्पर्श संघर्षी	अल्पप्राण अघोष					च्				
	महाप्राण					छ्				
	अल्पप्राण घोष					ज्				
	महाप्राण					झ्				
3. नासिक्य	अल्पप्राण घोष	म्			न्	ञ्	ण्	ङ्		
	महाप्राण	म्ह			न्ह					
4. पार्श्विक	अल्पप्राण घोष				ल्					
	महाप्राण				ल्ह					
5. लुंठित	अल्पप्राण घोष				र्					
	महाप्राण				ह्					
6. अर्ध स्वर	घोष अल्पप्राण		व्			य्				
7. संघर्षी	अल्पप्राण अघोष				स्	श्	ष्			
	महाप्राण		फ़्						ख़	: ह् विसर्ग
	अल्पप्राण घोष		ब़्		ज़					
	महाप्राण									ह़्
8. उत्क्षिप्त	अल्पप्राण घोष						ड़			
	महाप्राण						ढ़			

7. ध्वनि गुण

भाषा विज्ञान के अनुसार मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चारित ध्वनि ही भाषा का मूल आधार है, जो स्वर और व्यंजन के रूप में मान्य की जाती है। स्वर और व्यंजन के साथ 'मात्रा' और 'आघात' का अभिन्न सम्बन्ध होता है, जिसके कारण ध्वनि गुण के रूप में मात्रा और आघात को स्वीकार किया जाता है।

1. मात्रा—भाषा की किसी भी ध्वनि के उच्चारण में जो समय की मात्रा लगती है, उसे 'मात्रा काल' या केवल 'मात्रा' कहते हैं। विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण में समय की मात्रा कम-अधिक होती है; क्योंकि किसी ध्वनि के उच्चारण में कम समय लगता है, इसलिए ऐसी ध्वनि को 'ह्रस्व ध्वनि' मानते हैं। किसी ध्वनि के उच्चारण में अधिक समय लगता है, इसलिए ऐसी ध्वनि को 'दीर्घ ध्वनि' मानते हैं। कभी किसी ध्वनि के उच्चारण में बहुत अधिक समय लगता है, इसलिए ऐसी ध्वनि को 'प्लुत ध्वनि' मानते हैं। इस प्रकार की वास्तविकता के कारण मात्रा के तीन प्रकार माने जाते हैं :

(1) एक मात्रा—ह्रस्व ध्वनि के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतने समय को 'एक मात्रा' माना जाता है। अतः 'अ, इ, उ' की एक मात्रा मानते हैं।

(2) दो मात्राएँ—दीर्घ ध्वनि के उच्चारण में जो अधिक समय लगता है, उसे दो मात्राएँ मानते हैं। इसलिए 'आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' की दो मात्राएँ मानते हैं।

(3) तीन मात्राएँ—प्लुत ध्वनि के उच्चारण में जो बहुत अधिक समय लगता है, उसे 'तीन मात्राएँ' मानते हैं। इसलिए 'ओऽम्' शब्द में 'ओ' ध्वनि की तीन मात्राएँ मानते हैं। किसी को बुलाते समय 'प्लुत ध्वनि' का बहुत उपयोग किया जाता है, जैसे 'हे राऽऽऽम !' यहाँ 'र्' के साथ जो 'आ' है वह प्लुत ध्वनि है।

(क) स्वर की मात्रा का कम-अधिक होना

(1) बलाघातयुक्त ह्रस्व स्वर बलाघातरहित ह्रस्व स्वर से 'अधिक मात्रा वाला' होता है। 'लचक' शब्द में 'ल्' के साथ भी ह्रस्व स्वर 'अ' है और 'च' के साथ भी 'अ' स्वर ही है, लेकिन 'च्' के साथ का ह्रस्व स्वर 'अ' बलाघातरहित है और 'ल्' के साथ का 'अ' स्वर बलाघातयुक्त है। इसलिए 'ल्' के साथ का ह्रस्व स्वर 'अ' बलाघातयुक्त होने के कारण 'अधिक मात्रावाला स्वर' है, तो 'च्' के साथ का 'अ' स्वर बलाघातरहित होने के कारण 'कम मात्रावाला स्वर' है।

(2) बलाघातयुक्त दीर्घ स्वर बलाघातरहित दीर्घ से 'अधिक मात्रावाला' होता है। 'बाजार' शब्द में 'ब्' के साथ का 'आ' दीर्घ स्वर बलाघातरहित होने के कारण 'कम मात्रावाला स्वर' है, तो 'ज़्' के साथ जो 'आ' दीर्घ स्वर है वह बलाघातयुक्त होने के कारण अधिक मात्रावाला स्वर है।

(3) अघोष व्यंजन के पहले आनेवाला ह्रस्व स्वर 'कम मात्रावाला' होता है, तो घोष व्यंजन के पहले आनेवाला ह्रस्व स्वर 'अधिक मात्रावाला' होता है। 'अट' शब्द में 'ट्' अघोष व्यंजन के पहले आया ह्रस्व स्वर 'अ' कम मात्रावाला है, तो 'अब' शब्द में 'ब्' घोष व्यंजन के पहले आया 'अ' ह्रस्व स्वर अधिक मात्रावाला है। 'जप' शब्द में 'प्' अघोष व्यंजन के पहले आया 'ज्' के साथ का 'अ' कम मात्रावाला ह्रस्व स्वर है, तो 'जग' शब्द में 'ग्' घोष व्यंजन के पहले आया 'ज्' के साथ का 'अ' अधिक मात्रावाला ह्रस्व स्वर है।

(4) अघोष व्यंजन के पहले आया दीर्घ स्वर कम मात्रावाला होता है, तो घोष व्यंजन के पहले आया दीर्घ स्वर अधिक मात्रावाला होता है। 'आप' शब्द में 'प्' अघोष व्यंजन के पहले आया 'आ' कम मात्रावाला दीर्घ स्वर है, तो 'आज' शब्द में 'ज्' घोष व्यंजन के पहले आया 'आ' अधिक मात्रावाला दीर्घ स्वर है।

(5) शब्द के बीच में और अन्त में एक ही प्रकार के आये स्वरों में से बीच में आया स्वर अधिक मात्रावाला होता है, तो अन्त में आया वही स्वर कम मात्रावाला होता है। इस कारण ही 'लचक' शब्द में अन्तिम 'क्' के साथ का 'अ' कम मात्रावाला ह्रस्व स्वर है, तो बीच में 'च्' के साथ का 'अ' अधिक मात्रावाला ह्रस्व स्वर है।

'दादा' और 'दीदी' इन शब्दों में भी अन्तिम 'आ' और 'ई' कम मात्रावाले दीर्घ स्वर हैं, तो मध्य के 'आ' और 'ई' अधिक मात्रावाले स्वर हैं।

(6) छोटे शब्द और बड़े शब्द के आरम्भ में एक ही प्रकार का स्वर आता है, तो छोटे शब्द के आरम्भ का स्वर 'अधिक मात्रावाला' होता है, तो बड़े शब्द के आरम्भ का वही स्वर 'कम मात्रावाला' होता है। इसलिए 'नागर' छोटे शब्द के आरम्भ का 'आ' अधिक मात्रावाला स्वर है, तो 'नागरिकता' बड़े शब्द के आरम्भ का 'आ' कम मात्रावाला स्वर है।

(7) एक ही प्रकार का स्वर संयुक्त व्यंजन के पहले आने पर कम मात्रावाला होता है और असंयुक्त व्यंजन के पहले आने पर अधिक मात्रावाला होता है। 'अग्नि' शब्द में 'ग्नि' संयुक्त व्यंजन के पहले का 'अ' कम मात्रावाला ह्रस्व स्वर है, तो 'अगिन' शब्द में 'गिन' असंयुक्त व्यंजन के पहले का 'अ' अधिक मात्रावाला ह्रस्व स्वर है। 'आम्ल' शब्द में 'म्ल' संयुक्त व्यंजन के पहले का 'आ' कम मात्रावाला दीर्घ स्वर है, तो 'आम' शब्द में 'म' असंयुक्त व्यंजन के पहले का 'आ' अधिक मात्रा वाला दीर्घ स्वर है।

(8) एक ही प्रकार का स्वर द्वित्व व्यंजन के पहले आने पर कम मात्रावाला होता है और अद्वित्व व्यंजन के पहले आने पर अधिक मात्रावाला स्वर होता है। इस कारण ही 'उत्तर' (उत्तर) शब्द में 'त्त' द्वित्व के पहले का 'उ' कम मात्रावाला ह्रस्व स्वर है, तो 'उतर' शब्द में 'त' अद्वित्व व्यंजन के पहले का 'उ' अधिक मात्रा

वाला ह्रस्व स्वर है। 'पक्का' शब्द में 'क्क' द्वित्व व्यंजन के पहले 'प्' व्यंजन के साथ आया 'अ' कम मात्रावाला ह्रस्व स्वर है, तो 'पका' शब्द में 'क्' अद्वित व्यंजन के पहले 'प्' व्यंजन के साथ आया 'अ' अधिक मात्रावाला स्वर है। 'आन्न' में 'न्न' द्वित्व व्यंजन के पहले का 'आ' कम मात्रावाला दीर्घ स्वर है, तो 'आन' में 'न' अद्वित्व व्यंजन के पहले का 'आ' अधिक मात्रावाला दीर्घ स्वर है।

(ख) व्यंजन के साथ मात्रा का सम्बन्ध

(1) स्वर की तुलना में व्यंजन की मात्रा कम होती है; क्योंकि व्यंजन के उच्चारण में ह्रस्व स्वर के उच्चारण से भी कम समय लगता है।

(2) व्यंजनों में सबसे बड़ी मात्रा नासिक्य व्यंजनों की होती है, उससे छोटी मात्रा लुंठित और पार्श्विक व्यंजनों की होती है, उससे छोटी मात्रा ऊष्म व्यंजनों (श्, ष्, स्) की होती है, उससे कम संघर्षी व्यंजनों की और सबसे कम स्पर्श व्यंजनों की होती है।

(3) अक्षर का अन्तिम व्यंजन उसके पहले ह्रस्व स्वर के आने पर कुछ बड़ी मात्रा का होता है और उसके पहले दीर्घ स्वर के आने पर कुछ छोटी मात्रा का होता है। 'दिन्' एकाक्षरी शब्द में अन्तिम 'न्' व्यंजन के पहले 'इ' ह्रस्व स्वर आने से 'न्' व्यंजन कुछ बड़ी मात्रा का है, लेकिन 'बीन्' एकाक्षरी शब्द में अन्तिम 'न्' व्यंजन के पहले 'ई' दीर्घ स्वर आने से यहाँ 'न्' व्यंजन कुछ छोटी मात्रा का है। 'नल्' एकाक्षरी शब्द में 'ल्' व्यंजन कुछ बड़ी मात्रा का है; क्योंकि 'ल्' अन्तिम व्यंजन के पहले 'अ' ह्रस्व स्वर आया है, लेकिन 'नील्' एकाक्षरी शब्द में 'ल्' व्यंजन कुछ छोटी मात्रा का है, क्योंकि 'ल्' अन्तिम व्यंजन के पहले 'ई' दीर्घ स्वर आया है।

(4) अनुनासिक व्यंजन, पार्श्विक व्यंजन और लुंठित व्यंजन घोष व्यंजन के पूर्व आने पर बड़ी मात्रा के होते हैं और अघोष व्यंजन के पूर्व आने पर छोटी मात्रा के होते हैं। 'कंगन' में 'ग्' घोष व्यंजन के पूर्व का 'ङ्' नासिक्य व्यंजन बड़ी मात्रा का है, परन्तु 'कंकण' में 'क्' अघोष व्यंजन के पूर्व का 'ङ्' नासिक्य व्यंजन (अनुनासिक व्यंजन) छोटी मात्रा का है।

'अल्हड़' में 'ह्' घोष व्यंजन के पूर्व का 'ल्' पार्श्विक व्यंजन बड़ी मात्रा का है, लेकिन 'अल्प' में 'प्' अघोष व्यंजन के पूर्व का 'ल्' पार्श्विक व्यंजन छोटी मात्रा का है।

'अर्ज' में 'ज' घोष व्यंजन के पूर्व का 'र्' लुंठित व्यंजन बड़ी मात्रा का है, लेकिन 'अर्क' में 'क्' अघोष व्यंजन के पूर्व का 'र्' लुंठित व्यंजन छोटी मात्रा का है।

स्पष्ट है कि स्वर और व्यंजन के साथ मात्रा का सम्बन्ध होता ही है। इसी तो 'मात्रा' को ध्वनि-गुण माना जाता है।

2. आघात (Accent)—ध्वनि का दूसरा गुण 'आघात' है। 'आघात' के दो मुख्य भेद हैं—(च) बलाघात (Stress accent) और (छ) सुर या स्वराघात (Pitch accent)।

(च) बलाघात—बोलते समय मनुष्य वाक्य के किसी एक भाग पर जोर अर्थात् बल देता है। इसे ही 'बलाघात' कहा जाता है। बोलते समय कभी-कभी किसी पूरे वाक्य पर भी बलाघात होता है। बलाघात जिस-जिस पर होता है, उन सबको ध्यान में रखकर बलाघात के पाँच भेद होते हैं :

(1) ध्वनि बलाघात—बोलते समय कभी वाक्य में किसी शब्द की किसी ध्वनि (स्वर या व्यंजन) पर जो बलाघात होता है, उसे 'ध्वनि बलाघात' कहते हैं। "लड़की लचक-लचक कर चलती है।" इस वाक्य में 'लचक' शब्द के 'ल्' व्यंजन के साथ जो 'अ' स्वर ध्वनि है, उस पर बलाघात है।

ध्वनि बलाघात की प्रभाव विशिष्टता

(अ) जिस ध्वनि पर बलाघात होता है वह ध्वनि उस शब्द में सबल अर्थात् शक्तिशाली होती है। उसके परिणामस्वरूप बलाघातरहित ध्वनियाँ निर्बल अर्थात् कमजोर होती हैं। इस कारण ही 'लचक' शब्द में 'ल्' के साथ ही 'अ' स्वर ध्वनि सबल है और उसके परिणामस्वरूप 'च्' तथा 'क्' के साथ की 'अ' स्वर ध्वनि निर्बल अर्थात् अशक्त है।

(आ) बलाघातयुक्त सबल ध्वनि के प्रभावस्वरूप निर्बल ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। "मैं बाज़ार गया था।" वाक्य में 'ज़्' के साथ की 'आ' स्वर ध्वनि बलाघात के कारण इतनी सबल है कि उसके प्रभाव से 'ब्' के साथ की 'आ' स्वर ध्वनि इतनी निर्बल बनती है कि उसमें अपने आप परिवर्तन होकर उसके स्थान पर 'अ' स्वर ध्वनि आकर शब्द 'बज़ार' बन जाता है।

(इ) बलाघातयुक्त ध्वनि ह्रस्व होती है तो वह कुछ दीर्घ ध्वनि बनती है और दीर्घ होती है तो वह अधिक दीर्घ बनती है। इस कारण ही 'लचक' शब्द में से 'ल्' के साथ की 'अ' ह्रस्व ध्वनि बलाघातयुक्त होने के कारण 'च्' के साथ की बलाघातरहित 'अ' ह्रस्व ध्वनि से कुछ दीर्घ ध्वनि बन गयी है। ठीक इसी तरह 'बाज़ार' शब्द में से 'ज़्' के साथ की 'आ' दीर्घ स्वर ध्वनि बलाघातयुक्त होने के कारण 'ब्' के साथ की बलाघातरहित 'आ' दीर्घ ध्वनि से अधिक दीर्घ ध्वनि बन गयी है।

(ई) बलाघातयुक्त ध्वनि के उच्चारण में अधिक हवा की आवश्यकता होती है। इस कारण बलाघातयुक्त अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन ध्वनि महाप्राण स्पर्श व्यंजन ध्वनि के रूप में सुनाई देती है। इस कारण ही 'बजार' शब्द की बलाघातयुक्त अल्पप्राण स्पर्श संघर्षी व्यंजन ध्वनि 'ज़्' महाप्राण स्पर्श संघर्षी व्यंजन ध्वनि 'झ्' के रूप में सुनाई देती है।

(उ) कभी बलाघातयुक्त व्यंजन ध्वनि द्वित्व व्यंजन के रूप में सुनाई देती है। "सुनीत, उज्ज्वल और राहुल ने अच्छे गाने गाये।" इस वाक्य में 'गाने' शब्द की 'ग्' व्यंजन ध्वनि द्वित्व व्यंजन 'ग्ग' के रूप में सुनाई देती है।

स्पष्ट है कि 'ध्वनि बलाघात' प्रभावशाली होता है।

(2) अक्षर बलाघात—अनेकाक्षरी शब्द में किसी एक अक्षर पर बलाघात होता है, जिसके परिणामस्वरूप अन्य अक्षर कमजोर बने रहते हैं और किसी कमजोर अक्षर में ध्वनि परिवर्तन भी हो जाता है। 'बाज़ार' शब्द में 'बा+ज़ार' इस प्रकार के दो अक्षर हैं, जिनमें से दूसरा अक्षर 'ज़ार' बलाघातयुक्त होने के कारण 'बा' अक्षर में 'ब्' के साथ के 'आ' के स्थान पर 'अ' का आगमन होकर 'ब' अक्षर बनता है और पूरे शब्द का उच्चारण 'बजार' हो जाता है। 'लचक' शब्द में 'ल+चक' इस प्रकार के दो अक्षर हैं, जिनमें से 'ल' अक्षर बलाघातयुक्त होने के कारण 'चक' अक्षर में से 'क्' के साथ के 'अ' का लोप होकर 'लचक्' के रूप में शब्द सुनाई देता है।

(3) शब्द बलाघात—वाक्य में किसी शब्द पर बलाघात होता है और वह शब्द बलाघात अर्थ परिवर्तन का कारण बनता है। इस कारण ही शब्द बलाघात 'सार्थक बलाघात' होता है। "मैंने ध्यान से ग्रन्थ पढ़ा।" इस वाक्य में 'मैंने' शब्द (पद) पर बलाघात होने पर कर्ता की प्रधानतासूचक अर्थबोध होगा। 'ध्यान से' शब्द (पद) पर बलाघात होने पर रीतिसूचक क्रिया विशेषण की प्रधानतासूचक अर्थबोध होगा। 'ग्रन्थ' शब्द (पद) पर बलाघात होने पर कर्म की प्रधानतासूचक अर्थबोध होगा। 'पढ़ा' शब्द (पद) पर बलाघात होने पर क्रिया की प्रधानतासूचक अर्थबोध होगा। वास्तव में वाक्य में जो 'शब्द बलाघात' होता है, वह तो 'पद (रूप) बलाघात' ही होता है।

(4) वाक्यांश बलाघात—वाक्य के किसी अंश पर ही बलाघात होता है, तो उसे 'वाक्यांश बलाघात' कहते हैं। "मैं तुम्हें साथ लेकर ही जाऊँगा।" इस वाक्य के 'तुम्हें साथ लेकर ही' इस अंश पर निश्चयसूचक बलाघात है।

(5) वाक्य बलाघात—बोलते समय जब किसी वाक्य पर बलाघात होता है, तो उसे 'वाक्य बलाघात' कहते हैं। "केवल परीक्षा के लिए पढ़ना ठीक नहीं। जीवन में कुछ बनने के लिए पढ़ना ठीक है।" यहाँ दूसरे वाक्य पर विशेष अर्थसूचक बलाघात है।

बलाघात के उपर्युक्त पाँच भेदों को सशक्त बलाघात, अशक्त बलाघात, सार्थक बलाघात, निरर्थक बलाघात, निश्चयात्मक बलाघात और अनिश्चयात्मक बलाघात इन रूपों में भी देखा जा सकता है। वास्तव में बलाघात चाहे ध्वनि या अक्षर या शब्द (पद) या वाक्यांश या वाक्य पर हो, वह सशक्त अर्थात् सबल ही होता है। इसके विरुद्ध जहाँ पर बलाघात रहित स्थिति होती है, वहाँ पर अशक्त बलाघात होता है। शब्द (पद), वाक्यांश और वाक्य पर जो बलाघात होता है वह सार्थक

और कुछ निश्चयात्मक भी होता है। इसके विरुद्ध ध्वनि बलाघात या अक्षर बलाघात निरर्थक तथा अनिश्चयात्मक होता है, लेकिन अंग्रेजी आदि बलाघात प्रधान भाषाओं में अक्षर बलाघात सार्थक बलाघात होता है।

(छ) सुर या स्वराघात या संगीतात्मक स्वराघात

(1) आघात इस ध्वनि गुण का एक रूप बलाघात है तो दूसरा रूप सुर या स्वराघात का है। जहाँ बलाघात का सम्बन्ध प्रायः वाक्य के किसी न किसी अंश के साथ होता है वहाँ सुर या स्वराघात का सम्बन्ध वाक्य की सभी ध्वनियों, सभी शब्दों (पदों), वाक्यांशों के रूप में पूरे वाक्य के साथ होता है। सुर या स्वर का आघात पूरे वाक्य पर पड़ा रहता है।

(2) भाषा ध्वनि के उच्चारण अवयवों में से केवल स्वर यन्त्र से सम्बन्धित स्वर तन्त्रियों के साथ ही सुर या स्वराघात का सम्बन्ध होता है। प्रश्वास रूप हवा के आघात से स्वरतन्त्रियों में जो कम्पन होता है, उसी कम्पन के साथ सुर या स्वराघात की उत्पत्ति का अभिन्न सम्बन्ध होता है। इसी कारण ही सुर या स्वराघात में आरोह-अवरोह या चढ़ाव-उतार बना रहता है। जब स्वरतन्त्रियों में अधिक शीघ्र गति से कम्पन होने लगता है, तब ध्वनियाँ ऊँचे (आरोह) सुर में सुनाई देती हैं, तो जब धीमी गति से कम्पन होता है, तब ध्वनियाँ नीचे (अवरोह) सुर या स्वराघात में सुनाई देती हैं। इस कारण ही सुर को संगीतात्मक स्वराघात भी कहा जाता है।

(3) सुर या स्वराघात स्वरतन्त्रियों के कम्पन के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखता है और घोष या सघोष ध्वनियाँ भी स्वरतन्त्रियों के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखती हैं। इसलिए सुर या स्वराघात घोष या सघोष ध्वनियों के साथ अधिक महत्वपूर्ण सम्बन्ध रखता है।

(4) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के रूप में सुर या स्वराघात के तीन भेद माने जाते हैं। उठा हुआ या ऊँचा हुआ सुर 'उदात्त सुर' होता है, जिसमें प्रश्वास रूप हवा की गति तीव्र होती है, स्वरतन्त्रियाँ अधिक कम्पित होती हैं और स्वर-यन्त्र या कंठ संकुचित होता है। जो स्वर उदात्त न होकर 'नीचा सुर' या 'निम्न सुर' होता है, वह 'अनुदात्त सुर' होता है, जिसमें प्रश्वास रूप हवा की गति मन्द होती है, स्वरतन्त्रियों में शिथिलता के कारण मन्द कम्पन होता है और स्वर-यन्त्र या कंठ संकुचित नहीं होता। उदात्त सुर या अनुदात्त सुर के मध्य 'स्वरित सुर' होता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'उच्चरित' या 'ध्वनित'। यह एक प्रकार से 'सम सुर' या 'सम स्वर' है। वैदिक भाषा में इन सुरों (स्वराघातों) के आधार पर 'अर्थभेद' होता था। इसलिए ये तीनों सुर (स्वराघात) सार्थक हैं। यदि 1 संख्या से 'उदात्त सुर', 2 संख्या से 'स्वरित सुर' और 3 संख्या से 'अनुदात्त सुर' को सूचित किया गया तो वैदिक भाषा में 'इन्द्रशत्रो' इस शब्द का उच्चारण 'इन्द्र^{3}श^{2}तो^{1}' (अन्त में उदात्त) इस प्रकार किया गया तो अर्थ होता है, 'इन्द्र का शत्रु'। यह अर्थ तत्पुरुष समास के

अनुकूल है, परन्तु 'इन्द्र[1]श[2]त्रो[3]' (आरम्भ में उदात्त) इस प्रकार किया गया तो अन्य अर्थ होता है, "इन्द्र है जिसका शत्रु या मारक।" यह अर्थ बहुव्रीहि समास के अनुकूल है।

(5) पूरे वाक्य में जो सुर-स्वरूप या स्वराघात-स्वरूप होता है, उसे 'सुर लहर' या 'अनुतान' (Intonation) के रूप में स्वीकार किया जाता है। वाक्य के उच्चारण में (घोष ध्वनियों के उच्चारण के रूप में) सुरों के उतार-चढ़ाव की जो लहर बनती है, उसे 'सुर लहर' या 'अनुतान' कहा जाता है।

(6) सुर लहर या अनुतान की विशेषता को ध्यान में रखकर विश्व की कुछ भाषाओं को 'तान' (Tone) भाषाएँ कहते हैं और अन्य भाषाओं को 'अतान' भाषाएँ कहते हैं। चीनी, बर्मी आदि तान भाषाएँ हैं तो हिन्दी, अंग्रेजी आदि अतान भाषाएँ हैं। तान भाषाओं में अनुतान अर्थभेदक के रूप में सार्थक होता है। इस कारण ही चीनी भाषा में एक प्रकार के अनुतान से चीनी शब्द 'मा' का अर्थ 'माता' होता है, तो दूसरे प्रकार के अनुतान से 'मा' का अर्थ 'घोड़ा' होता है।

(7) अतान भाषाओं में प्रश्न, आश्चर्य, अनिच्छा, आज्ञा का अतिरिक्त भाव ही अनुतान से व्यक्त होता है। "राहुल आ गया।" वाक्य एक ही प्रकार के सामान्य सुर के कारण केवल विधानार्थक या सूचनार्थक है, परन्तु 'राहुल आ गया ?' वाक्य निम्न सुर, उच्च सुर, उच्च सुर के प्रयोग के कारण प्रश्नार्थक बन गया है। "राहुल आ गया !" वाक्य उच्च सुर, उच्च सुर, निम्न सुर के प्रयोग से विस्मयार्थक बन गया है।

8. ध्वनि परिवर्तन के कारण

भाषा परिवर्तन होने के कारण शब्द की ध्वनियों में भी परिवर्तन (विकास) होता है और उसके कुछ महत्वपूर्ण कारण होते हैं :

1. **शब्द में घोष ध्वनियों का प्रभावशाली होना**—शब्द में यदि दो प्रभावशाली घोष ध्वनियों के बीच में अघोष ध्वनि आती है, तो अघोष ध्वनि भी घोष ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। जैसे 'काक' शब्द में दूसरा 'क्' अघोष व्यंजन दो घोष स्वरों के बीच में आ गया, क्योंकि उसके पहले 'आ' घोष स्वर है, तो उसके बाद 'अ' घोष स्वर है—क्+आ+क्+अ। इन घोष स्वरों के प्रभाव के कारण बीच के 'क्' अघोष व्यंजन का परिवर्तन 'ग्' घोष व्यंजन हो जाता है—काग्। 'कंकण' शब्द में भी 'ङ्' घोष व्यंजन और 'अ' घोष स्वर के बीच में दूसरा 'क्' अघोष व्यंजन आने के कारण 'ग्' घोष व्यंजन में उसका परिवर्तन होता है—कंगन।

2. **शब्द में महाप्राण ध्वनियों का प्रभावशाली होना**—शब्द में महाप्राण ध्वनि के प्रभावशाली होने के कारण अल्पप्राण ध्वनि का परिवर्तन महाप्राण ध्वनि में होता है। जैसे हस्त→हाथ, वाष्प→भाप, वेष→भेष, परशु→फरसा। 'हस्त'

शब्द में 'ह्' महाप्राण व्यंजन के प्रभाव के कारण 'त्' अल्पप्राण व्यंजन का परिवर्तन 'थ्' महाप्राण ध्वनि में हुआ है। 'वाष्प' तथा 'वेष' शब्दों में 'ष्' महाप्राण व्यंजन के प्रभाव के कारण 'ब्' तथा 'व्' अल्पप्राण व्यंजनों का परिवर्तन 'भ्' महाप्राण व्यंजन में हुआ है। 'परशु' शब्द में 'श्' महाप्राण व्यंजन के प्रभाव के कारण 'प्' अल्पप्राण ध्वनि का परिवर्तन 'फ्' महाप्राण व्यंजन में हुआ है।

3. शब्द में ध्वनियों का सबल होना—शब्द में ध्वनियों के सबल होने के कारण निर्बल ध्वनि का परिवर्तन किसी दूसरी ध्वनि में होता है या उसका लोप होता है। जैसे 'मदद' शब्द में अन्तिम 'द्' व्यंजन निर्बल है और उसके पहले के 'म्' और 'द्' सबल व्यंजन हैं। इस कारण अन्तिम 'द्' व्यंजन का परिवर्तन 'त्' व्यंजन में होता है—मदत्।

'धर्म्म' शब्द में 'ध्' और 'म्' सबल व्यंजन हैं और बीच का 'र्' निर्बल व्यंजन है। इस कारण ही 'र्' व्यंजन का परिवर्तन 'म्' व्यंजन में होता है—धम्म।

'अग्नि' शब्द में 'न्' निर्बल व्यंजन को छोड़कर अन्य सबल ध्वनियाँ हैं, इसलिए 'न्' का लोप होता है—आग।

4. शब्द में संयुक्त व्यंजन के दोनों व्यंजनों का समान शक्तिशाली होना—यदि संयुक्त व्यंजन के दोनों व्यंजन समान शक्ति वाले होते हैं, तो पहला निर्बल बनता है, जिससे उसका लोप हो जाता है। जैसे 'सप्त' शब्द में संयुक्त व्यंजन 'प्त' में 'प्' और 'त्' समान शक्ति वाले हैं, इसलिए पहला व्यंजन 'प्' निर्बल बनकर लुप्त हो जाता है—सात। 'दुग्ध' शब्द में भी 'ग्ध' संयुक्त व्यंजन में 'ग्' और 'ध्' दोनों समान शक्तिवाले व्यंजन होने के कारण पहला व्यंजन 'ग्' निर्बल होकर लुप्त हो जाता है—दूध।

5. शब्द का असाधारण लम्बा होना—असाधारण लम्बा होने के कारण शब्द ध्वनि परिवर्तन से छोटा रूप धारण करता है। जैसे नागपुर—>नाक्पुर, जय राम—>जैराम, धन दौलत—>धंदउलत, नागरिकता—>नाक्रिक्ता।

6. प्रयत्न लाघव या मुखसुख या उच्चारण सरलता—यह एक ऐसा अधिक महत्वपूर्ण कारण है, जो उस प्रयत्न के साथ सम्बन्ध रखता है, जिससे भाषा की ध्वनियों को उत्पन्न करने के रूप में शब्द का उच्चारण हो जाता है। उस प्रयत्न में मुख से सम्बन्धित विभिन्न उच्चारण-अवयव महत्वपूर्ण सहयोग करते रहते हैं। इसलिए मनुष्य अपने मुख से सम्बन्धित उच्चारण अवयवों से शब्द के उच्चारण के रूप में उस शब्द की ध्वनियों का उच्चारण करते समय ऐसे प्रयत्न लाघव से या उच्चारण सरलता से काम लेना है, जिससे उसके मुख को पीड़ा के बदले सुख मिलता रहेगा। इससे शब्द की ध्वनियों में कुछ परिवर्तन हो जाता है, जो अग्रांकित तालिका से स्पष्ट है।

मुख को पीड़ा (कष्ट) देने वाला कठिन शब्दोच्चारण	मुख को सुख देनेवाला सरल शब्दोच्चारण	ध्वनि परिवर्तन
बाजार	बजार	दीर्घ 'आ' का ह्रस्व 'अ'
काग	कागा	ह्रस्व 'अ' का दीर्घ 'आ'
प्रिय	पीव	ह्रस्व 'इ' का दीर्घ 'ई'
स्नेह	इस्नेह या स्नेह	'इ' या 'स्' के साथ 'अ' का आगम
कर्म	करम	'र्' के साथ 'अ' का आगम
असली	अस्ली	'स्' के साथ के 'अ' का लोप
भांडागार	भांडार	'गा' अक्षर का लोप

वास्तव में सम्पूर्ण ध्वनि परिवर्तन के मूल में प्रयत्न लाघव ही होता है।

7. बलाघात—बलाघात के कारण भी शब्द की ध्वनियों में बहुत-सा परिवर्तन हो जाता है; क्योंकि बलाघात भी शब्दोच्चारण में प्रयत्न लाघव का ही रूप धारण करता है। जैसे बाजार शब्द के उच्चारण में 'जा=ज्+आ' पर बलाघात होता है; लेकिन उस बलाघात में 'ब्' के साथ का 'आ' बाधा-सा बन जाता है। इसलिए बलाघात को लाघव या सरल बनाने के लिए 'ब्' के साथ के 'आ' का परिवर्तन 'अ' में हो जाता है। 'आप' तथा 'आज' इन शब्दों में 'आ' पर बलाघात है, इसलिए 'प' तथा 'ज' के साथ के 'अ' स्वर का लोप होकर उनका उच्चारण केवल व्यंजन 'प्', 'ज्' के रूप में होता है।

8. भावुकता—अत्यधिक भावुकता भी प्रयत्न लाघव जैसा बनकर ध्वनि-परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारण बनती है। जैसे अत्यधिक भावुकता में 'प्यारा' शब्द का उच्चारण 'पियारा', 'दुलार' शब्द का उच्चारण 'दुलियार' या 'दुल्लो', 'बच्चा' शब्द का उच्चारण 'बच्चे' या 'बच्चमजी' किया जाता, जिससे ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।

9. बोलने में शीघ्रता—बोलते समय शीघ्रता भी प्रयत्न लाघव जैसा रूप धारण करती है और शब्द में ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। जैसे बोलने में शीघ्रता आने पर 'पंडितजी' का उच्चारण 'पंडीजी', 'कब ही' का उच्चारण 'कभी' और 'लखनऊ' का उच्चारण 'नखलऊ' किया जाता है।

10. बनकर बोलना—बनकर बोलने अर्थात् अकड़कर बोलने के रूप में भी 'प्रयत्न लाघव' का ही आश्रय लिया जाता है और ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। इस कारण ही वक्ता श्रोताओं के सामने बोलते समय "भाइयो और बहनो! मैं कहना चाहता हूँ कि....।" का उच्चारण इस प्रकार करता है—"बाइयो अउर बेन्नो, मइ केना चाता हूँ कि....।" स्पष्ट है कि यहाँ बनकर बोलने से ध्वनि-परिवर्तन हुआ है।

11. अनुकरण की अपूर्णता—मनुष्य अनुकरण से ही भाषा सीखता है। परिवार के भीतर जो भाषा बोली जाती है, वही भाषा बालक अपने कानों से सुनता है और अपने उच्चारण अवयवों से अनुकरण के रूप में उसी भाषा अर्थात् उस भाषा के शब्दों अर्थात् शब्दों की ध्वनियों का उच्चारण करने लगता है, लेकिन कुछ कारणों से अनुकरण में अपूर्णता रह जाती है, जिससे ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।

(1) श्रवणेन्द्रिय के दोष के कारण अनुकरण की अपूर्णता—जिसके श्रवणेन्द्रिय में कुछ दोष होता है, वह दूसरों के द्वारा उच्चारित शब्दों को अपने कानों से ठीक सुन नहीं पाता, जिससे उसके शब्दोच्चारण के अनुकरण में अपूर्णता आ जाती है और ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। इस कारण ही कोई 'श्रावण' शब्द का उच्चारण 'सावन' सुनेगा और अपने उच्चारण अवयवों से 'सावन' ऐसा ही उच्चारण करेगा, जिससे 'श्रावण' शब्द की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। इस कारण ही वह व्यक्ति 'नाम' का उच्चारण 'आम' या 'वाम' सुनेगा और वही ध्वनि परिवर्तित शब्दोच्चारण करने लगेगा।

(2) उच्चारण अवयवों की विकासशील स्थिति में अनुकरण की अपूर्णता—बढ़ने वाली उम्र के साथ बालक के उच्चारण अवयव विकासशील स्थिति में होते हैं। परिणामस्वरूप बालक के शब्दोच्चारण में अनुकरण की अपूर्णता आकर ऐसा शब्दोच्चारण होने लगता है, जिससे शब्द में ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। इस कारण ही बालक 'रुपया, रोटी, घोड़ा-गाड़ी' ऐसा सही उच्चारण सुनने पर भी अपने उच्चारण अवयवों की विकासशील स्थिति में वह उन शब्दों का सही उच्चारण करने के बदले 'लुपया, लोटी, घोला-गाली' ऐसा ध्वनि परिवर्तित उच्चारण करता रहता है और फिर आगे चलकर अपने उच्चारण अवयवों की विकसित स्थिति में अपने गलत उच्चारण को ठीक कर देता है।

(3) अज्ञान में अनुकरण की अपूर्णता—यह भी एक प्रकार का प्रयत्न लाघव ही है; क्योंकि मनुष्य सही शब्दोच्चारण सुनने पर भी अपने द्वारा भी सही उच्चारण ही करना चाहिए, इस बात का ज्ञान या ध्यान नहीं रखता। परिणामस्वरूप वह अपनी या दूसरी भाषा के शब्दों का ऐसा सहज (सरल) उच्चारण करता है, जिससे शब्द की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे भाषा→भासा, श्रावण→सरावन, कृष्ण→किशन, आर्डर→आडर, डॉक्टर→डाक्टर या डागदर, कलेक्टर→कलकटर, ग्लास→गलास या गिलास, सप्टेंबर→सितम्बर, स्टेशन→सटेशन या ठेसन, ख़बर→खबर।

12. सादृश्य श्रेम—यह भी एक प्रकार का प्रयत्न लाघव ही है; क्योंकि जिस उच्चारण से अधिक परिचित रहते हैं, ठीक वही उच्चारण किसी दूसरी ध्वनि पर बड़ी सहजता से लादा जाता है, जिससे ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। 'पैंतीस' शब्द में 'पैं' 'पांच' इस शब्द का संक्षिप्त रूप है। 'पांच' शब्द में 'पां' अनुनासिक

है, जिसके कारण 'पैं' यह संक्षिप्त रूप भी अनुनासिक हुआ है। इसी 'पैं' का अनुनासिक उच्चारण बड़ी सहजता से 'सैंतीस' शब्द के 'सैं' पर लादा गया है, क्योंकि 'सैं' 'सात' इस शब्द का सही संक्षिप्त रूप नहीं है। 'सात' शब्द में 'सा' अनुनासिक-रहित है, इसलिए उसका सही संक्षिप्त रूप 'सैं' है, जो अनुनासिक रहित है। फिर भी सादृश्य प्रेम के कारण पहले से अधिक परिचित सहज उच्चारण 'पैं' के अनुसार 'सैं' उच्चारण को 'सैं' बनाया गया। इस कारण 'पैंतीस' के बाद 'सैंतीस' उच्चारण प्रचलित हो गया। ठीक इसी तरह 'सुख' शब्द के विसर्गरहित 'सु' के सहज उच्चारण के समान 'दुःख' शब्द के विसर्गसहित 'दुः' उच्चारण में परिवर्तन करके विसर्ग रहित 'दु' (दुख) उच्चारण प्रचलित किया गया।

13. लिखने की पद्धति का प्रभाव—देवनागरी लिपि में मंदिर, छिंपना, राम, कृष्ण, अशोक इसी तरह ही लिखे जाते हैं, इसलिए उनका उच्चारण भी इसी तरह ही किया जाता है, लेकिन उर्दू लिपि में 'मंदर', 'छुपना' ऐसा लिखा जाता है और उर्दू भाषा-भाषी ऐसा ही उच्चारण करते हैं, जिससे 'मंदिर' और 'छिपना' इन शब्दों में ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।

अंग्रेजी भाषा बोलने वाले 'राम' शब्द 'Rama' के रूप में, 'कृष्ण' शब्द 'Krishna' के रूप में और 'अशोक' शब्द 'Ashoka' के रूप में लिखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे 'राम' का उच्चारण 'रामा', 'कृष्ण' का उच्चारण 'कृष्णा' और 'अशोक' का उच्चारण 'अशोका' करते हैं।

14. विभाषा का प्रभाव—अपनी भाषा में दूसरी भाषा (विभाषा) के प्रभाव से कोई एक ध्वनि प्रचलित हो जाती है या कभी एक से अधिक ध्वनियाँ प्रचलित हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप अपनी भाषा की ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। जैसे हिन्दी भाषा की 'आ' स्वर ध्वनि के स्थान पर कभी अंग्रेजी भाषा की 'आँ' स्वर ध्वनि का प्रयोग होता है। 'शाल' शब्द में 'श्' के साथ हिन्दी भाषा की 'आ' स्वर ध्वनि है, लेकिन अंग्रेजी भाषा बोलने वाले हिन्दी भाषा-भाषी 'शाल' शब्द का उच्चारण 'शॉल' करते हैं, जिससे हिन्दी भाषा के 'आ' के बदले अंग्रेजी भाषा के 'आँ' का उच्चारण होकर ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। अरबी-फारसी के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में 'क़, ख़, ग़, ज़, ड़, ढ़' व्यंजन ध्वनियाँ प्रचलित हुई हैं। हिन्दी में 'खर' (गधा) शब्द के उच्चारण में 'ख्' हिन्दी व्यंजन ध्वनि है। लेकिन 'खर' उच्चारण के बदले 'ख़र' उच्चारण करने पर हिन्दी 'ख्' के स्थान पर फारसी 'ख़' का उच्चारण हो जाता है। (फारसी में भी 'ख़र' शब्द का एक अर्थ 'गधा' ही है।)

15. सामाजिक और राजनीतिक दबाव—कभी सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण में ऐसा परिवर्तन हो जाता है, जिसके कारण शब्दों की ध्वनियों का भी परिवर्तन हो जाता है। स्वतन्त्र भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक

वातावरण में ऐसा परिवर्तन हुआ है, जिसके दबाव से कुछ शब्दों की ध्वनियों में परिवर्तन हो रहा है।

(1) गाँवों के नामों पर पड़े अंग्रेजों के प्रभाव को हटाने से ध्वनि परिवर्तन—अंग्रेजों ने अपनी राजसत्ता के दिनों में अनेक गाँवों, नगरों तथा शहरों के नामों में ध्वनि परिवर्तन कर दिया था, लेकिन अब स्वतन्त्रता के दिनों में अंग्रेजों के प्रभाव को हटाकर फिर से पहले जैसे नामों का प्रयोग होने लगा है, जिससे गाँव, नगर तथा शहर के नाम में ध्वनि परिवर्तन हुआ है। जैसे देहली→दिल्ली, बॉम्बे→मुंबई, पूना→पुणे, कालिकट→कलकत्ता, मड्रास→मद्रास, बनारस→वाराणसी, बरोड़ा→बड़ोदा।

(2) पारिभाषिक शब्दों के प्रचलन के लिए ध्वनि परिवर्तन—स्वतन्त्र भारत में कुछ पारिभाषिक शब्दों को हिन्दी भाषा में प्रचलित करने के लिए अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द की ध्वनियों में थोड़ा अनुकूल परिवर्तन कर दिया जाता है और ध्वनि परिवर्तन से युक्त नये शब्द को हिन्दी भाषा का पारिभाषिक शब्द माना जाता है, जैसे एकेडमी→अकादमी, टेकनीक→तकनीक, ट्रेजेडी→त्रासदी, कॉमेडी→कामदी, जानेवारी→जनवरी, डिसेंबर→दिसम्बर आदि।

16. अन्धविश्वास का प्रभाव—सामाजिक व्यवहार में अन्धविश्वास का भी प्रभाव बना रहता है, जिससे शब्द में ध्वनि परिवर्तन भी हो जाता है। इस कारण ही हिन्दू सामाजिक व्यवहार में 'गोभी' शब्द में 'ग्' व्यंजन के स्थान पर 'क्' व्यंजन को रखकर शब्दोच्चारण 'कोबी' हो रहा है। 'गोभी' शब्द में जो 'गो' अक्षर है, उससे हिन्दू सामाजिक व्यवहार में अन्धविश्वास के आधार पर 'गाय' ऐसा अर्थ लिया गया और माना गया कि 'गाय' (गोभी इस तरकारी के समान) खाने की वस्तु नहीं है। इस प्रकार के अन्धविश्वास के प्रभाव के फलस्वरूप 'गो' इस अक्षर के स्थान पर 'को' इस अक्षर का प्रयोग किया जाने लगा और 'गोभी' का उच्चारण 'कोबी' प्रचलित हो गया, जिसमें ध्वनि परिवर्तन हो गया।

ध्वनि परिवर्तन के उपर्युक्त कारणों में से पहले पाँचों कारणों को 'आन्तरिक कारण' या 'आभ्यन्तर कारण' माना जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि शब्द के भीतर जो ध्वनियों की परिवर्तनशील स्वाभाविक स्थिति होती है, उसी के साथ पहले पाँचों कारणों का सम्बन्ध है। इसलिए ही किसी बाह्य कारण के बदले शब्द की ध्वनि अथवा 'ध्वनियों में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन' हो जाता है। इस प्रकार की विशेषता के कारण ही उनको ध्वनि परिवर्तन के आन्तरिक या आभ्यन्तर कारण माना जाता है।

पहले पाँचों कारणों को छोड़कर अन्य सभी 'ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारण' हैं। बाह्य कारणों में से छठे कारण से लेकर चौदह कारणों तक के जो नौ कारण हैं, वे भाषा के रूप में शब्दोच्चारण करने वाले व्यक्ति की इच्छा, भावुकता और उसके

श्रवणेन्द्रियों तथा उच्चारण अवयवों की विशिष्ट स्थिति के साथ सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार यहाँ भाषा का प्रयोगकर्ता व्यक्ति ही महत्व का कारण है।

अन्तिम दोनों बाह्य कारण समाज मन अर्थात् सामूहिक मन के साथ सम्बन्ध रखते हैं, जो विशिष्ट शब्द प्रयोग के लिए महत्व का कार्य करता है।

9. ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

भाषा की ध्वनि का परिवर्तन जिस रूप में होता है, उसे ध्वनि परिवर्तन की दिशा मानते हैं। ध्वनि परिवर्तन विविध रूपों में होता है, इसलिए ध्वनि परिवर्तन की विविध दिशाएँ मानी जाती हैं।

1. लोप—शब्द में से किसी ध्वनि का जो लोप हो जाता है, उसे ध्वनि परिवर्तन की दिशा माना जाता है। शब्द में जो ध्वनि लोप हो जाता है, वह स्वर लोप, व्यंजन लोप या स्वर-व्यंजन लोप के रूप में होता है।

(1) स्वर लोप—शब्द में आदि स्वर लोप, मध्य स्वर लोप या अन्त्य स्वर लोप होता है।

(क) आदि स्वर लोप—शब्द के प्रारम्भिक स्वर के लोप को 'आदि स्वर लोप' कहते हैं। जैसे 'अनाज, अगर, अफसाना' इन शब्दों के प्रारम्भिक स्वर 'अ' का लोप होता है और ये शब्द 'नाज, गर, फसाना' के रूप में भी प्रयुक्त हो जाते हैं।

(ख) मध्य स्वर लोप—शब्द के बीच के स्वर के लोप को 'मध्य स्वर लोप' कहते हैं। जैसे कपड़ा (क्+अ+प्+अ+ड़+आ)→कप्ड़ा (कप्ड़ा)='प्' के साथ के 'अ' का लोप।

असली (अ+स्+अ+ल्+ई)→अस्ली (अस्ली)='स्' के साथ के 'अ' का लोप।

(ग) अंत्य स्वर लोप— शब्द के अन्तिम स्वर के लोप को 'अंत्य स्वर लोप' कहते हैं। जैसे 'आम, दाम, दिल' इन शब्दों के अंतिम 'अ' स्वर का लोप होकर उनका उच्चारण व्यंजनांत होता है—'आम्, दाम्, दिल्'।

(2) व्यंजन लोप— शब्द में आदि, मध्य या अंत्य 'व्यंजन का लोप' होता है।

(च) आदि व्यंजन लोप—शब्द के प्रारम्भिक व्यंजन के लोप को 'आदि व्यंजन लोप' कहते हैं। जैसे 'स्थाली' शब्द के प्रारम्भिक 'स्' व्यंजन का लोप होकर 'थाली' शब्द का प्रयोग होता है।

(छ) मध्य व्यंजन लोप—शब्द के बीच के व्यंजन के लोप को 'मध्य व्यंजन लोप' कहते हैं। जैसे 'उपवास' शब्द के बीच के 'व्' व्यंजन का लोप होकर 'उपास' शब्द का प्रयोग होता है।

(ज) अंत्य व्यंजन का लोप—शब्द के अन्तिम व्यंजन के लोप को 'अंत्य व्यंजन लोप' कहते हैं। जैसे 'निम्ब' शब्द के अन्तिम 'ब्' व्यंजन का लोप होकर 'नीम' शब्द का प्रयोग होता है।

(3) स्वर व्यंजन अर्थात् अक्षर लोप—शब्द में आदि, मध्य या अंत्य अक्षर का लोप होता है।

(ट) आदि अक्षर लोप—'त्रिशूल' शब्द के प्रारम्भिक 'त्रि' अक्षर के लोप से 'शूल' शब्द का प्रयोग होता है।

(ठ) मध्य अक्षर लोप—'भांडागार' शब्द के बीच के 'डा' अक्षर के लोप से 'भांडार' या 'भंडार' शब्द का प्रयोग होता है।

(ड) अंत्य अक्षर लोप—'माता' शब्द के अन्तिम 'ता' अक्षर के लोप से 'मा' शब्द का प्रयोग होता है। 'जीव' शब्द के भी अन्तिम 'व' अक्षर का लोप होकर 'जी' शब्द का प्रयोग होता है।

2. आगम—शब्द में नयी ध्वनि को आगम (आगमन) को ध्वनि परिवर्तन की दिशा माना जाता है। इसके अनुसार स्वरागम, व्यंजनागम या अक्षरागम होता है।

(1) स्वरागम—शब्द में आदि, मध्य या अंत्य स्वरागम होता है।

(क) आदि स्वरागम—इसके अनुसार शब्द के आरम्भ में स्वर आता है। जैसे 'स्नान' शब्द के आरम्भ में 'अ' स्वर जोड़कर 'अस्नान' शब्द का और 'स्नेह' शब्द के आरम्भ में 'इ' स्वर जोड़कर 'इस्नेह' शब्द का प्रयोग होता है।

(ख) मध्य स्वरागम—इसके अनुसार शब्द के बीच में स्वर आता है। जैसे 'जन्म' शब्द के बीच में 'न्' के साथ 'अ' स्वर का आगम होकर 'जनम' शब्द प्रयोग होता है। 'कर्म' शब्द के भी बीच में 'र्' के साथ 'अ' स्वर का आगम होता है—क्र्+अ+म=करम। 'हुक्म' शब्द के बीच में 'क्' के साथ 'उ' स्वर का आगम होता है—हुक्+उ+म=हुकुम।

(ग) अंत्य स्वरागम—इसके अनुसार शब्द के अन्त में स्वर आता है। जैसे 'दवा' शब्द के अन्त में 'ई' स्वर का आगम 'दवाई' शब्द प्रयोग होता है। 'संदेश' शब्द के अन्त में 'आ' स्वर का आगम होकर 'संदेशा' (या संदेसा) शब्द प्रयोग होता है।

(2) व्यंजनागम—शब्द में आदि, मध्य या अंत्य व्यंजनागम होता है।

(च) आदि व्यंजनागम—इसके अनुसार शब्द के आरम्भ में व्यंजन आता है। जैसे 'ओष्ठ' शब्द के आरम्भ में 'ह्' व्यंजनागम होकर 'होठ' शब्द प्रयोग होता है। 'उल्लास' शब्द के भी आरम्भ में 'ह्' व्यंजनागम होकर 'हुलास' शब्द प्रयोग होता है।

(छ) मध्य व्यंजनागम—इसके अनुसार शब्द के मध्य में व्यंजन आता है। जैसे 'डेढ़' शब्द के बीच में 'व्' व्यंजनागम होकर 'डेढ़व' शब्द प्रयोग होता है।

(ज) अंत्य व्यंजनागम—इसके अनुसार शब्द के अन्त में व्यंजन आता है। जैसे 'भौं' शब्द के अन्त में 'ह्' व्यंजनागम होकर 'भौंह' शब्द प्रयोग होता है।

(3) अक्षरागम—शब्द में आदि, मध्य या अंत्य अक्षरागम होता है।

(ट) आदि अक्षरागम—शब्द के आरम्भ में अक्षर का आना 'आदि अक्षरागम' है। जैसे स्नेह→सनेह, स्कूल→सकूल (यहाँ 'स' अक्षर का आगम 'स्+अ' के रूप में हुआ है।)

(ठ) मध्य अक्षरागम—शब्द के बीच में अक्षर का आना 'मध्य अक्षरागम' है। जैसे कृष्ण→किशन (यहाँ 'श' अक्षर का आगम 'श्+अ' के रूप में हुआ है।)

(ड) अंत्य अक्षरागम—शब्द के अन्त में अक्षर का आना 'अंत्य अक्षरागम' है। जैसे दुःख→दुखड़ा, संदेस→संदेसड़ा (यहाँ 'ड़ा' अक्षर का आगम 'ड़+आ' के रूप में हुआ है।)

3. विपर्यय—शब्द में स्वर, व्यंजन या अक्षर का स्थान परिवर्तन 'विपर्यय' है। जैसे—

(1) स्वर विपर्यय—कुछ→कछु (यहाँ 'क्' के साथ के 'उ' और 'छ्' के साथ के 'अ' का स्थान परिवर्तन हुआ है।) पागल→पगला (यहाँ 'प्' के साथ के 'आ' और 'ल्' के साथ के 'अ' का स्थान परिवर्तन हुआ है।)

(2) व्यंजन विपर्यय—मतलब→मतबल (यहाँ 'ब्' तथा 'ल्' का स्थान परिवर्तन हुआ है।) चिह्न→चिन्ह (यहाँ 'ह्' और 'न्' व्यंजनों का स्थान-परिवर्तन हुआ है।)

(3) अक्षर विपर्यय—दालभात→भातदाल (यहाँ 'दाल' और 'भात' अक्षरों का स्थान परिवर्तन हुआ है।)

4. समीकरण—अपने प्रभाव के रूप में एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि को अपना रूप देना 'समीकरण' होता है। समीकरण पुरोगामी तथा पश्चगामी होता है।

(1) पुरोगामी स्वर समीकरण—जुल्म→जुलम→जुलुम (यहाँ पहले 'उ' स्वर ने अगले 'ल्' के साथ के 'अ' स्वर को भी अपना रूप दिया है।)

(2) पश्चगामी स्वर समीकरण—आदमी→अदमी (यहाँ 'द्' के साथ के 'अ' स्वर ने अपने से पहले 'आ' स्वर को अपना रूप दिया है।)

(3) पुरोगामी व्यंजन समीकरण—खटपट→खटखट (यहाँ पहले 'ख्' व्यंजन ने अगले 'प्' व्यंजन को अपना रूप दिया है।)

(4) पश्चगामी व्यंजन समीकरण—धर्म→धर्म→धम्म (यहाँ अगले 'म्' व्यंजन ने अपने से पहले 'र्' व्यंजन को अपना रूप दिया है।)

5. विषमीकरण—दो समान ध्वनियों में से किसी एक के अन्य ध्वनि में परिवर्तन होने को 'विषमीकरण' कहते हैं। यह भी पुरोगामी तथा पश्चगामी होता है।

(1) पुरोगामी स्वर विषमीकरण—दो समान स्वरों में से अगले स्वर का परिवर्तन 'पुरोगामी स्वर विषमीकरण' कहलाता है। जैसे पुरुष→पुरिस (यहाँ 'र्' के साथ का 'उ' स्वर 'इ' स्वर हुआ है।)

(2) **पश्चगामी स्वर विषमीकरण**—दो समान स्वरों में से पहले स्वर का परिवर्तन 'पश्चगामी स्वर विषमीकरण' कहलाता है। जैसे नूपुर→नेउर (यहाँ 'न्' के साथ का 'ऊ' स्वर 'ए' स्वर हुआ है।)

(3) **पुरोगामी व्यंजन विषमीकरण**—दो समान व्यंजनों में से अगले व्यंजन का परिवर्तन 'पुरोगामी व्यंजन विषमीकरण' कहलाता है। जैसे काक→काग; कंकण→कंगन (यहाँ दूसरे 'क्' व्यंजन का परिवर्तन 'ग्' व्यंजन में हुआ है।)

(4) **पश्चगामी व्यंजन विषमीकरण**—दो समान व्यंजनों में से पहले व्यंजन का परिवर्तन 'पश्चगामी व्यंजन समीकरण' कहलाता है। जैसे लाल (थूक)→राल (थूक) (यहाँ पहले 'ल्' व्यंजन का परिवर्तन 'र्' व्यंजन में हुआ है।)

6. **संधि**—स्वरों या व्यंजनों की संधि से जो ध्वनि परिवर्तन होता है, उसे संधि कहते हैं। जैसे सपत्नी→सवत→सउत→सौत (यहाँ 'सउत' शब्द में 'स्' के साथ 'अ' स्वर है और उसके आगे 'उ' स्वर है, इसलिए 'अ+उ' की संधि 'औ' होकर 'स्' के साथ 'औ' के मेल से 'सौत' शब्द बन गया है।)

दिक्+गज=दिग्गज, वाक्+ईश=वागीश (यहाँ शब्दान्त 'क्' व्यंजन के आगे 'ग्' घोष व्यंजन और 'ई' स्वर आने के कारण संधि के लिए 'क्' अघोष व्यंजन ने 'ग्' घोष व्यंजन का रूप धारण कर लिया है। इससे ज्ञात होता है कि व्यंजन+व्यंजन या व्यंजन+स्वर के रूप में संधि होते समय ध्वनि परिवर्तन होता है।

7. **ऊष्मीकरण**—जो ध्वनि अनूष्म है अर्थात् ऊष्म नहीं है उस ध्वनि का ऊष्म ध्वनि में परिवर्तन होने को 'ऊष्मीकरण' कहते हैं। 'श्, ष्, स्' ऊष्म ध्वनियाँ हैं। जैसे विश्व की भाषाओं के एक वर्ग को 'केंतुम् भाषा वर्ग' कहा जाता है, क्योंकि इस वर्ग की भाषाओं में 'स्' का (तथा ष्, श् इन ऊष्म ध्वनियों का भी) अभाव होने के कारण 'स्' के स्थान पर 'क्' का प्रयोग करते हैं। इसके विरुद्ध दूसरे 'शतम् भाषा वर्ग में क्' ध्वनि के अभाव में क्' ध्वनि के स्थान पर 'स् (श्)' ऊष्म ध्वनि का प्रयोग होता है। इस कारण ही 'केंतुम भाषा वर्ग' का 'केंतुम (सौ) शब्द 'सतम्' (सौ) रूप धारण करता है, जिससे 'क्' अनूष्ण ध्वनि का परिवर्तन स्' (संस्कृत में श्=शतम्) ऊष्म ध्वनि में हो जाता है। ('केंतुम्' लैटिन भाषा का शब्द है, जो संस्कृत भाषा में 'शतम्' और अवेस्ता भाषा में 'सतम्' बन गया है।)

8. **अनुनासिकीकरण**—अनुनासिक रहित ध्वनि के अपने आप अनुनासिक (नासिक्य) ध्वनि बनने को 'अनुनासिकीकरण' कहते हैं। जैसे सर्प→साँप, सत्य→साँच, अश्रु→आँसू, उष्ट्र→ऊँट (यहाँ मूल शब्द में 'स', 'अ', 'उ' अनुनासिक नहीं हैं, पर ध्वनि परिवर्तन में अनुनासिक हो गये हैं।)

9. **मात्रा का ह्रस्वीकरण**—दीर्घ मात्रावाली ध्वनि का ह्रस्व मात्रावाली ध्वनि में परिवर्तन 'मात्रा का ह्रस्वीकरण' है। जैसे बाजार→बजार (यहाँ 'ब के

साथ की दीर्घ मात्रावाली 'आ' ध्वनि का परिवर्तन ह्रस्व मात्रावाली 'अ' ध्वनि में हुआ है।

10. मात्रा का दीर्घीकरण—ह्रस्व मात्रा वाली ध्वनि का दीर्घ मात्रावाली ध्वनि में परिवर्तन 'मात्रा का दीर्घीकरण' है। जैसे लज्जा→लाज, जिव्हा→जीभ, सुपुत्र→सपूत (यहाँ 'ल' के साथ के 'अ' का 'आ', 'ज' के साथ के 'इ' का 'ई' और 'प्' के साथ के 'उ' का 'ऊ' दीर्घीकरण हुआ।)

11. घोषीकरण—अघोष ध्वनि का घोष ध्वनि में परिवर्तन 'घोषीकरण' है। जैसे काक→काग्. कंकण→कंगन, शती→सदी (यहाँ 'क्' अघोष ध्वनि का परिवर्तन 'ग्' घोष ध्वनि में और 'त्' अघोष ध्वनि का परिवर्तन 'द्' घोष ध्वनि में हुआ है।)

12. अघोषीकरण—घोष ध्वनि का अघोष ध्वनि में परिवर्तन 'अघोषीकरण' है। जैसे मदद→मदत (मराठी में), नागपुर→नागपुर (यहाँ 'द्' घोष ध्वनि का परिवर्तन 'त्' अघोष ध्वनि में और 'ग्' घोष ध्वनि का परिवर्तन 'क्' अघोष ध्वनि में हुआ है।)

13. महाप्राणीकरण—अल्पप्राण ध्वनि का महाप्राण ध्वनि में परिवर्तन 'महाप्राणीकरण' है। जैसे शुष्क→सूखा, गृह→घर, हस्त→हाथ, वाष्प→भाप (यहाँ अल्पप्राण ध्वनि 'क्', 'ग्', 'त्', 'ब्' का (क्रमानुसार) महाप्राणीकरण 'ख्', 'घ्', 'थ्', 'भ्' हुआ है।)

14. अल्पप्राणीकरण—महाप्राण ध्वनि का अल्पप्राण ध्वनि में परिवर्तन 'अल्पप्राणीकरण' है। जैसे भूख→भूक, धोखा→धोका, हाथ→हात, पौधा→पौदा (यहाँ महाप्राण ध्वनि 'ख्', 'थ्', 'ध्' का (क्रमानुसार) अल्पप्राणीकरण 'क्', 'त्', 'द्' हुआ है।)

15. श्रुति—केवल उच्चारण की सुविधा के लिए मूल स्वर के साथ 'य्' अथवा 'व्' अर्ध स्वर का आगम 'श्रुति' होता है। जैसे हिन्दी में धातु के आगे 'आ', 'ए', 'ई' प्रत्यय (स्वर) के जुड़ने से सामान्य भूतकाल के रूप बनते हैं। इस कारण ही 'चल+आ' से 'चला' सामान्य भूतकाल का रूप बनता है। ठीक इसी तरह 'आ+आ, खा+आ, खा+ए, खा+ई, हो (हु)+आ=आआ, खाआ, खाए, खाई, हुआ। उच्चारण के समय सुविधा (प्रयत्न-लाघव) के लिए अन्तिम स्वर के साथ 'य' या 'व' का उच्चार होकर (निरर्थक) ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, जो सुनने को मिलता है। इसलिए 'आआ' का रूप 'आया', 'खाआ' का रूप 'खाया', 'खाए' का रूप 'खाये', 'खाई' का रूप 'खायी' और 'हुआ' का रूप 'हुवा' हो जाता है। (वास्तव में जब शब्द में एक साथ दो स्वर आते हैं और अगला 'आ' या 'ओ' स्वर स्वतन्त्र होता है तब उसके साथ 'य्' अथवा 'व्' अर्ध स्वर आता है—कौआ→कौवा, आओ→आवो, गाओ→गावो, पाआ→पाया आदि।)

16. अपश्रुति (अवश्रुति)—शब्द में स्वर परिवर्तन से जो नया अर्थसूचक शब्द बनता है, उसे 'अपश्रुति' अर्थात् सार्थक (अर्थभेदक) ध्वनि परिवर्तन माना जाता है। जैसे मल (म्+अ+ल), माल (म्+आ+ल), मिल (म्+इ+ल), मील (म्+ई+ल), मेल (म्+ए+ल) आदि। (वास्तव में शब्द में व्यंजन परिवर्तन से भी सार्थक ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, जैसे काम (क्+आम), नाम (न्+आम), जाम (ज्+आम) दाम (द्+आम) आदि।)

10. अक्षर

सामान्य व्यवहार में वर्ण चिन्ह (Letter, हर्फ़) के अर्थ में 'अक्षर' शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु हिन्दी भाषा शास्त्र में अंग्रेजी शब्द सिलेबल (Syllable) के लिए हिन्दी पर्यायवाची शब्द के रूप में 'अक्षर' शब्द का प्रयोग होता है। इसलिए 'अक्षर' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने वाली परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—"अक्षर एक ध्वनि या एक से अधिक ध्वनियों की वह इकाई है, जिसका उच्चारण श्वास-प्रश्वास के एक झटके (एक चेस्टपल्स या एक हृद्-स्पंद) में होता है।" इसका अर्थ यह है कि 'अक्षर' एक विशिष्ट उच्चारण है, जो एक ध्वनि या एक से अधिक ध्वनियों की इकाई के साथ सम्बन्ध रखता है। अतः 'अक्षर' की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) अक्षर उच्चारण के स्तर पर स्वनिम से उच्चतर इकाई है। 'अक्षर' एक स्वनिम (जैसे 'आ'=तू इधर आ) या एक से अधिक स्वनिमों (जैसे आम्=2 स्वनिम, काम=3 स्वनिम) का भी हो सकता है।

(2) अक्षर शब्द या पद (रूप) से छोटी इकाई है। इस कारण से प्रायः एक शब्द या एक पद (रूप) में एक से अधिक अक्षर होते हैं। अपवाद के रूप में आम, काम्, नाम्, पान्, मेज, क्रम् आदि शब्दों में एक-एक ही अक्षर है और जा, ला, चल्, दौड़्, पी, दो, बैठ् आदि पदों (रूपों) में भी एक-एक ही अक्षर है।

(3) हिन्दी में केवल स्वर ही अक्षर का शीर्ष अर्थात् केन्द्रक होता है और व्यंजन गव्हर होता है। अक्षर में वह स्वर सबसे अधिक मुखर अर्थात् सबसे अधिक ऊँचा बोला जानेवाला होता है जो अक्षर का शीर्ष अर्थात् केन्द्रक होता है। इसके विरुद्ध अक्षर का गव्हर वह होता है, जो कम ऊँचा बोला जाता है अर्थात् गव्हर कम मुखर होता है। जैसे नाम्, दीन्, भोर्, सुख् इन शब्दों में क्रमानुसार आ, ई, ओ, उ ये स्वर शीर्ष (Peak) अर्थात् केन्द्रक (Nucleus) हैं और सभी व्यंजन गव्हर हैं। व्यंजनों में 'न्, द्, भ्, स्' ये 'पूर्व गव्हर' हैं और 'म्, न्, र्, ख्' ये 'पर गव्हर' हैं।

(4) शब्द या पद (रूप) में जितने अक्षर शीर्ष या केन्द्रक होते हैं, उतने ही अक्षर भी होते हैं। जैसे 'आया' में दोनों स्वर शीर्ष (केन्द्रक) होने से दो अक्षर हैं, 'बैठाया' में तीनों स्वर शीर्ष (केन्द्रक) होने से तीन अक्षर हैं, 'दौड़ाइए' में चारों स्वर शीर्ष (केन्द्रक) होने से चार अक्षर हैं और 'दौड़ाइएगा' में पाँचों स्वर शीर्ष (केन्द्रक) होने से पाँच अक्षर हैं।

(5) एक से अधिक अक्षर के शब्दों में प्रत्येक अक्षर के बीच छोटा-सा मौन (संगम या विराम) होता है, जैसे 'आया' में 'आ' व 'या' । इन अक्षरों के बीच तथा 'बैठाया' में 'बै' 'ठा' व 'या' इन अक्षरों के बीच में छोटा-सा संगम है ।

(6) केवल केन्द्रक (शीर्ष) का भी अक्षर होता है जैसे 'आ'/पूर्व गव्हर (on set)+केन्द्रक के रूप में भी अक्षर होता है, जैसे जो (=ज्+ओ), तो (=त्+ओ) दो (=द्+ओ), सा (=स्+आ), कि (=क्+इ) आदि । केन्द्रक+पर गव्हर (coda) के रूप में भी अक्षर होता है, जैसे आम्, आज्, ईख्, एक, ओर आदि । पूर्व गव्हर+केन्द्रक+पर गव्हर के रूप में अक्षर होता है, जैसे काम् (=क्+आ+म्), तुम (=त्+उ+म्), तीन (=त्+ई+न), शोर (=श्+ओ+र्) आदि ।

(7) शीर्षान्त अक्षर (Open syllable) के रूप में (1) केवल शीर्ष भी हो सकता है, जैसे 'आ' और (2) पूर्व गव्हर+केन्द्रक भी हो सकता है, जैसे का, कि, जो, तो, सौ, व, न, सा आदि ।

'गव्हरान्त अक्षर' (closed) के रूप में (1) पूर्व गव्हर+केन्द्रक+परगव्हर भी हो सकता है, जैसे नाम्, काम्, हम्, रोज्, तुम्, सब् आदि और (2) केन्द्रक+परगव्हर भी हो सकता है, जैसे आम्, आज्, ईख्, एक्, अब्, ऊन्, आन् आदि ।

(8) हिन्दी में पूर्व गव्हर के रूप में व्यंजनों की संख्या एक, दो या तीन हो सकती है और परगव्हर के रूप में भी एक, दो या तीन संख्या हो सकती है, जैसे काम्, क्रम्, क्या, श्वेत्, व्यर्थ, द्वार्, प्रिय्, द्वेष् स्त्री, स्त्रैण् आदि पूर्व गव्हर तथा काम्, कब्, सिर्, तेज्, शोर्, व्यर्थ शब्द इत्र, अत्र, अल, कृच्छ आदि परगव्हर ।

(9) हिन्दी शब्दों में एक अक्षर के शब्द सबसे ज्यादा हैं, दो अक्षर के शब्द उससे कम, तीन अक्षर के शब्द उससे कम, चार अक्षर के शब्द बहुत कम और पाँच अक्षर के शब्द बहुत ही कम होते हैं (इससे अधिक अक्षरों के शब्द अपवाद के रूप में ही मिल सकते हैं ।

(10) एकाक्षरी शब्दों के उच्चारण में केवल अक्षर का शीर्ष अधिक मुखर होता है । अक्षर में बलाघात हमेशा शीर्ष पर ही होता है अतः उसका उच्चारण कुछ मुखर होता है ।

(11) अनेकाक्षरी शब्दों के उच्चारण में कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है ।

अनेकाक्षरी शब्द में अक्षर का विभाजन ठीक तरह से होना चाहिए । जैसे वक्ता (वक् ता), पक्का (पक् का), नदी (न दी), पथिक (प थिक्) । शब्द में जहाँ पर आक्षरिक विभाजन होता है, वहाँ पर वक्ता थोड़ी देर के लिए रुकता है, जिसे अल्पकालिक संगम (Juncture) कहते हैं ।

शब्द में प्रत्येक अक्षर पर बलाघात होता है, परन्तु प्रायः किसी एक अक्षर पर अधिक होता है, तो दूसरे पर कम । इस कारण बलाघात इस प्रकार होता है—

प्रथम या मुख्य बलाघात, द्वितीय या गौण बलाघात, तृतीय बलाघात, चतुर्थ बलाघात, पंचम बलाघात। अनेकाक्षरी शब्दों में यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि बलाघात किस अक्षर पर है। जैसे 'अप्रामाणिकता' (अ प्रा मा णिक् ता) इस पंचाक्षरी शब्द में 'णिक्' अक्षर पर मुख्य बलाघात है।

(12) हिन्दी के अनेकाक्षरी शब्दों में अक्षर रचना इस प्रकार होती है :

(त) शब्द के आरम्भ में एक व्यंजन हो या एक से अधिक व्यंजन हों, अगले स्वर के साथ उनका संयोग होने से अक्षर रचना होती है—कमल (क मल्=क्[1]+अ+मल्); प्रेमी (प्रे मी=प्र्[2]+ए+मी), त्यागी (त्य्[2]+आ+गी), क्रमिक (क्र्[2]+अ+मिक्), प्यारा (प्य्[2]+आ+रा), स्त्रैणता (स्त्र्[3]+ऐण्) आदि।

(थ) शब्द के अन्त में एक व्यंजन हो या एक से अधिक व्यंजन हों पूर्ववर्ती स्वर के साथ उनका संयोग होने से अक्षर रचना होती है—सोयाबीन (सो+या+ब्+ईन्[1]), विभक्त (वि+भ्+अक्त्[2]), निर्वस्त्र (निर्+व+अस्त्र्[3])।

(द) शब्द के बीच का मूल व्यंजन अगले स्वर के साथ जाता है और अक्षर रचना हो जाती है—गला (ग ल्+आ), सादा (सा द्+आ), बेटी (बे ट्+ई)।

(ध) शब्द के बीच में एक साथ आ गये व्यंजनों में से पहला पूर्ववर्ती स्वर के साथ जुड़कर अक्षर रचना होती और बाद का व्यंजन (एक या अधिक संख्या में) परवर्ती स्वर के साथ जुड़कर अक्षर रचना होती है—चलता (चल् ता), भीगती (भीग् ती), वक्ता (वक् ता), आत्मा (आत् मा) अन्वर (अन् दर्) शिक्षार्थी (शिक् षार् थी) आर्द्रता (आर् द्रता)।

(न) कुछ एकाक्षरी शब्द—अस्त्र, आर्द्र, पुत्र, वत्सर्य (व्+अ+र् त् स् य् 4 व्यंजन) स्त्रीत्व आदि।

कुछ द्व्यक्षरी शब्द—आरोग्य, आलस्य, एकत्र, गुरु. वालिश्त, नगेन्द्र, अच्छा, अद्भुत, औत्सुक्य आदि।

कुछ त्र्यक्षरी शब्द—आजादी, अरुणिम, अतिरिक्त, आसक्ति, इकट्ठा, सपत्नी, सपत्नीक, सामग्री आदि।

कुछ चतुरक्षरी शब्द—अनासक्ति, अतिक्रमण, अभिव्यक्ति, प्राध्यापिका, परिवर्तित, प्रतिमाओं आदि।

कुछ पंचाक्षरी शब्द—अभिसारिका, अंधानुकरण, दियासलाई, अव्यावहारिकता, संग्रहालयों आदि।

छः अक्षरी शब्द—अप्रामाणिकताओं, शुक्लाभिसारिका आदि।

11. ध्वनि नियम

भाषा परिवर्तन होने के कारण भाषा की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, जिसका अध्ययन-विश्लेषण भाषा विज्ञानवेत्ता से किया जाता है और ध्वनि परिवर्तन से सम्बन्धित नियम बनाया जाता है। उसे ही 'ध्वनि नियम' (Phonetic Law) कहते हैं, जिसका संकेत मात्र इहरे और रैस्क नामक डैनिश विद्वान ने किया था। इस प्रकार के ध्वनि नियम की चार महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं—

(1) ध्वनि नियम किसी एक प्रकार की भाषा के साथ सम्बन्ध रखता है। इस कारण ही ध्वनि नियम दूसरे प्रकार की भाषा पर लागू नहीं हो सकता। (2) ध्वनि नियम जिस भाषा के साथ सम्बन्ध रखता है, उसी भाषा की सभी ध्वनियों पर वह ध्वनि नियम लागू नहीं हो सकता। (3) ध्वनि नियम जिस प्रकार के ध्वनि परिवर्तन पर आधारित होता है, उस प्रकार का ध्वनि परिवर्तन विशिष्ट भूतकाल में हुआ रहता है। (4) उस प्रकार का ध्वनि परिवर्तन विशिष्ट परिस्थिति में ही हुआ रहता है।

विख्यात ध्वनि नियम

1. ग्रिम नियम (Grim's Law)—भाषा विज्ञानवेत्ता याकोब ग्रिम जर्मनी का प्रसिद्ध विद्वान था, जिसने जर्मन भाषा की अपनी व्याकरण की पुस्तक का प्रकाशन ई० स० 1819 में किया था और ई० स० 1822 में उस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करके उसमें अपने 'ध्वनि नियम' का विवेचन किया था।

ग्रिम नियम' का सम्बन्ध उन भारोपीय भाषाओं की स्पर्श व्यंजन ध्वनियों से है, जिनका परिवर्तन जर्मन भाषा में हुआ है। उसे अर्थात् भारोपीय स्पर्श व्यंजन ध्वनियों के परिवर्तन को जर्मन भाषा का 'वर्ण परिवर्तन' कहा जाता है।

जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है। पहला वर्ण परिवर्तन ईस्वी सन् पूर्व सैकड़ों वर्ष पहले हुआ, जिसके परिणामस्वरूप जर्मन भाषा मूल भारोपीय भाषाओं से अलग हो गयी।

जर्मन भाषा का दूसरा वर्ण-परिवर्तन ईसा की सातवीं सदी में तब हुआ था जब उत्तरी जर्मन लोगों से ऐंग्लो सैक्शन लोग अलग हो गये थे। उस दूसरे वर्ण परिवर्तन के फलस्वरूप उच्च जर्मन भाषा अर्थात् नयी जर्मन भाषा उससे अलग हो गयी जिसे निम्न जर्मन भाषा अर्थात् पुरानी या मूल जर्मन भाषा कहा गया था।

निम्न या पुरानी या मूल जर्मन भाषा की एक प्रतिनिधि भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा प्रचलित रह गयी और उच्च या नयी जर्मन भाषा केवल जर्मन भाषा के रूप में प्रचलित रह गयी।

(अ) प्रथम वर्ण परिवर्तन

संस्कृत भाषा 'ग्रीक भाषा' लैटिन भाषा और अवेस्ता भाषा ये चार मूल भारोपीय भाषाएँ हैं जिनकी स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ प्रथम वर्ण परिवर्तन के रूप में निम्न या पुरानी जर्मन भाषा (एक प्रतिनिधि भाषा अंग्रेजी) में विशिष्ट पद्धति से परिवर्तित हो गयीं। वास्तव में इसी कारण ही निम्न या पुरानी जर्मन भाषा (एक प्रतिनिधि भाषा अंग्रेजी) मूल भारोपीय भाषाओं से अलग हो गयी।

(1) मूल भारोपीय भाषाओं की घोष महाप्राण, स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ 'घ ध भ' निम्न या पुरानी जर्मन भाषा में घोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ ग् द् ब्' बन गयी हैं। जैसे—

ध्वनि परिवर्तन	मूल भारोपीय संस्कृत भाषा	निम्न जर्मन भाषा की प्रतिनिधि अंग्रेजी भाषा
घ् (Gh/ह=H) से ग् (G)	हंस (Hansa)	Goose (गूज=हंस)
ध् (Dh) से द् (D=डी)	धूम् (Dhoom)	Dust (डस्ट=धूम)
	विधवा (Vidhava)	Widow (विडो=विधवा)
भ् (Bh) से ब् (B=बी)	भ्रातृ (Bhratra)	Brother (ब्रदर=भाई)

(2) मूल भारोपीय भाषाओं की 'ग्, द्, ब्' घोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ निम्न या पुरानी जर्मन भाषा में 'क्, त्, प्' अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ बन गयी हैं। जैसे—

ध्वनि परिवर्तन	मूल भारोपीय संस्कृत भाषा	निम्न जर्मन भाषा की प्रतिनिधि अंग्रेजी भाषा
ग् से क् (C)	गो (गाय)	Cow (काउ=गाय)
द् से त् (T)	दंत/दशन् (दस)/कद	Tooth (टूथ)/Ten (टेन=दस)/ What (व्हाट=क्या)
ब् से प् (P)	तुर्वा (Turba : लैटिन का शब्द)	Thorp (थॉर्प=गाँव या बस्ती)

(3) मूल भारोपीय भाषाओं की 'क्, त्, प्' अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ निम्न या पुरानी जर्मन भाषा में 'ख्, थ्, फ्' अघोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ बन गयी हैं। जैसे—

ध्वनि परिवर्तन	मूल भारोपीय संस्कृत भाषा	निम्न जर्मन भाषा की प्रतिनिधि अंग्रेजी भाषा
क् से ख् (Kh)	कद्/कः	What (व्हाट=क्या)/Who (हू=कौन)
त् से थ् (Th)	त्रि (तिर)/दंत	Three (थ्री=तीन)/Tooth (टूथ=दाँत)
प् से फ् (F)	पाद्/पितृ	Foot(फुट=पैर)/Father(फादर=पिता)

(आ) द्वितीय वर्ण परिवर्तन

ग्रिम नियम के अनुसार द्वितीय वर्ण परिवर्तन के रूप में निम्न या पुरानी जर्मन भाषा की स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ उच्च या नयी जर्मन भाषा में विशिष्ट पद्धति से परिवर्तित हो गयीं, जिससे नयी जर्मन भाषा अलग हो गयी। जैसे

ध्वनि परिवर्तन	निम्न जर्मन भाषा की प्रतिनिधि अंग्रेजी भाषा	उच्च जर्मन भाषा
ग् से क्	Gis (गिस)/Doughter	Kestre (कैस्ट्रे)/Tochter
द् से त् (T)	Doughter (डाटर)/Deed (डीड)	Tochter (टोख्टर)/Tat (टाट)
ब् से प्	Be (बी)	Pim (पिम्)
क् से ख् (Ch)	Book (बुक)	Buch (बुख)
त् से थ् (SS)	Foot (फुट)/Water	Fuss (फुस्स)/Wasser (व्हासेर)

प् से फ् (F)	Thorp (थॉर्प)/Deep (डीप)/ Sheep (शीप)	Dorf (डॉर्फ)/Tief (टीफ्) Schaf (शाफ)
ख् से ग्		
थ् से द् (D)	Three (थ्री)/North (नॉर्थ)	Drie(ड्राइ/ड्रेइ)/Norden(नोरदेन
फ् से व् (B)	Thief (थिफ्)	Dieb (डिब्)

इस प्रकार (1) निम्न जर्मन भाषा की 'ग्, द्, व्' व्यंजन ध्वनियाँ उच्च जर्मन भाषा में 'क्, त्, प्' व्यंजन ध्वनियाँ बन गयी हैं, (2) और निम्न जर्मन भाषा की 'क्, त्, प्' व्यंजन ध्वनियाँ उच्च जर्मन भाषा में 'ख्, थ्, फ्' व्यंजन ध्वनियों बन गयी हैं; (3) और निम्न जर्मन भाषा की 'ख्, थ्, फ्' व्यंजन ध्वनियाँ उच्च जर्मन भाषा में 'ग्, द्, व्' व्यंजन ध्वनियाँ बन गयी हैं।

स्पष्ट है कि 'ग्रिम नियम' ने विशिष्ट ध्वनि परिवर्तन के आधार पर उच्च या नयी जर्मन भाषा के सबसे अलग होने को स्पष्ट किया है।

2. ग्रेसमैन नियम—ध्वनि परिवर्तन से सम्बन्धित ग्रिम नियम में जो कुछ त्रुटियाँ रही थीं, उनमें से कुछ त्रुटियों में सुधार करने का काम ग्रेसमैन (या ग्रासमैन) ने तथा वर्नर ने किया है। ग्रेसमैन ने ग्रिम नियम में जो कुछ सुधार किया, उसे ही 'ग्रेसमैन' नियम' कहा जाता है।

ग्रेसमैन ने देखा कि ग्रिम नियम के अनुसार 'क्, त्, प्' का परिवर्तन 'ख् (ह्) थ्, फ्' होता है, लेकिन कुछ शब्दों में तो 'क्, त्, प्' के स्थान पर 'स् (ह्), थ्, फ्' के बदले 'ग्, द्, ब' हुआ है। इसलिए ग्रेसमैन ने दिखाया कि (अ) ग्रिम नियम के अनुसार भारोपीय ग्रीक भाषा के शब्द 'किग्खो' में से 'क्' अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन ध्वनि का परिवर्तन निम्न जर्मन प्रतिनिधि अंग्रेजी भाषा में 'ख् (ह्)=h' होने के बदले घोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन 'ग् (G)' में हुआ है—किग्खो→Go।

(आ) ग्रेसमैन ने यह भी दिखाया कि ग्रिम नियम के अनुसार भारोपीय ग्रीक भाषा के शब्द 'तुप्लोस' में से 'त्' अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन का परिवर्तन अंग्रेजी भाषा में 'थ्' होने के बदले घोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन 'द् (D)' में हुआ है—तुप्लोस→Dump (डम)।

(इ) ग्रेसमैन ने यह भी दिखाया कि ग्रिम-नियम के अनुसार भारोपीय ग्रीक भाषा के शब्द 'पिथास' में से 'प्' अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन का परिवर्तन अंग्रेजी भाषा में 'फ्' होने के बदले घोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन 'ब (B) में हुआ है—पिथास→Body।

इस प्रकार की स्थिति का समाधान पाने के लिए ग्रेसमैन ने यह खोज निकाला कि भारोपीय मूल भाषा में यदि शब्द या धातु के आरम्भ या अन्त में दो महाप्राण व्यंजन ध्वनियाँ होती थीं, तो संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भारोपीय भाषाओं में पहला महाप्राण व्यंजन उसी वर्ग का अल्पप्राण बन जाता था। इसलिए ग्रेसमैन के

मतानुसार ग्रीक भाषा के 'किग्खो', 'तुप्लोस', 'पिथास' ये शब्द भारोपीय मूल भाषा में इस प्रकार रहे होंगे—'घिग्खो', 'धुप्लोस', भिथास'। यहाँ 'घिग्खो' शब्द के आरम्भ में 'घ्' घोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजन है, तो अन्त में अघोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजन 'ख्' है। 'धुप्लोस' शब्द के आरम्भ में 'ध्' घोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजन है, तो अन्त में अघोष, महाप्राण, संघर्षी व्यंजन 'स्' है। 'भिथास' शब्द के आरम्भ में 'भ्' घोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजन है, तो अन्त में अघोष, महाप्राण, संघर्षी व्यजन 'स्' है। इससे ग्रेसमैन ने तीन तथ्यों पर प्रकाश डाला है।

(1) पहला तथ्य यह है कि ग्रिम नियम के अनुसार भारोपीय मूल भाषा के 'घिग्खो, धुप्लोस, भिथास' इन शब्दों के आरम्भ के 'घ्, ध्, भ्' घोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजनों का परिवर्तन अंग्रेजी भाषा (निम्न जर्मन प्रतिनिधि भाषा) में घोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजन 'ग्' (Go), 'द्' (Dump) और 'ब्' (Body) में हुआ है। इसलिए 'ग्, द्, ब्' इस ध्वनि परिवर्तन का सम्बन्ध ग्रीक भाषा की 'क्' (किग्खो), 'त्' (तुप्लोस) और 'प्' (पिथास) इन ध्वनियों के साथ नहीं है।

(2) दूसरा तथ्य यह है कि ग्रेसमैन नियम के अनुसार भारोपीय मूल भाषा के 'घिग्खो, धुप्लोस, भिथास' इन शब्दों के आरम्भ के 'घ्, ध्, भ्' घोष, महाप्राण, व्यंजन का परिवर्तन ग्रीक भाषा में 'क्' (किग्खो), 'त्' (तुप्लोस) और 'प्' (पिथास) इन अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यंजनों में हुआ है। इसलिए ग्रीक भाषा की 'क्, त्, प्' इन ध्वनियों का परिवर्तन अंग्रेजी भाषा में 'ग्, द्, ब्' इन 'ध्वनियों के रूप में नहीं हुआ है।

(3) तीसरा तथ्य यह है कि आरम्भ में भारोपीय मूल भाषा की दो अवस्थाएँ रही होंगी। भारोपीय मूल भाषा की पहली अवस्था में दो महाप्राण ध्वनियों से युक्त शब्द रहे होंगे जैसे—घिग्खो, धुप्लोस, भिथास आदि। इस कारण ही भारोपीय मूल भाषा संस्कृत की पहली अवस्था में 'कन्या' अर्थबोधक 'धुहितृ' शब्द प्रचलित रहा होगा, जिसमें 'ध्' और 'ह्' महाप्राण ध्वनियाँ रही होंगी। इसलिए ही 'धुहितृ' शब्द में से पहले 'ध्' सहप्राण ध्वनि का परिवर्तन, ग्रिम नियम के अनुसार, सीधा अंग्रेजी भाषा में 'द्' (Daughter=डाटर) अल्पप्राण, घोष ध्वनि में हो गया।

भारोपीय मूल भाषा की दूसरी अवस्था में दो महाप्राण ध्वनियों से युक्त शब्दों में से पहली घोष, महाप्राण ध्वनि का परिवर्तन अघोष, महाप्राण ध्वनि में हुआ होगा। इसलिए ग्रेसमैन के मतानुसार 'घिग्खो, धुप्लोस, भिथास' इन शब्दों में से 'घ्, ध्, भ्' इन घोष महाप्राण ध्वनियों का परिवर्तन भारोपीय मूल भाषा ग्रीक की दूसरी अवस्था में अघोष, अल्पप्राण क् (किग्खो), त् (तुप्लोस), प् (पिथास) में हुआ।

3. वर्नर नियम—ग्रिम नियम में वर्नर द्वारा जो संशोधन किया गया, उसे 'वर्नर नियम (या व्हर्नर नियम या फेर्नर नियम) कहा जाता है, जिसमें ध्वनि परिवर्तन के सन्दर्भ में स्वराघात अर्थात् सुर (Pitch Accent) को महत्व मिला है।

(1) वर्नर से किया गया एक संशोधन यह है कि किसी भारोपीय भाषा के शब्द में 'क्, त्, प्' के पहले उदात्त स्वर आता है, तो अंग्रेजी भाषा में उनका परिवर्तन 'ख्, थ्, फ्' में हो जाता है और 'क्, त्, प्' के बाद उदात्त स्वर (स्वराघात) आता है, तो अंग्रेजी भाषा में उनका परिवर्तन 'ग्, द्, ब्' में हो जाता है। जैसे संस्कृत भाषा के 'युवकः' शब्द में 'क्' के बाद; 'शतम्' शब्द में 'त्' के बाद और ग्रीक भाषा के 'पियास' शब्द में 'प्' के बाद उदात्त स्वर (स्वराघात) आने के कारण यहाँ 'क्, त्, प्' का परिवर्तन 'ग्, द्, ब्' में अंग्रेजी भाषा में इस प्रकार हुआ है=Young (यंग्), Hundred (हण्ड्रेड) और Body (बॉडी)।

(2) वर्नर से किया गया दूसरा संशोधन यह है कि किसी भारोपीय भाषा के शब्द में 'स्' के पूर्व स्वराघात हो, तो अंग्रेजी भाषा में 'स्' ही रहता, परन्तु 'स्' के बाद स्वराघात हो, तो अंग्रेजी में 'स्' का 'र्' हो जाता है। जैसे संस्कृत के 'स्तुषा' शब्द में 'ष् (=स्)' के बाद स्वराघात होने के कारण अंग्रेजी में उसका 'र्' हुआ है—स्तुषा→Shourt।

(3) वर्नर का तीसरा संशोधन यह है कि भारोपीय भाषा के शब्द में 'क्, त्, प्' के पहले 'स्' हो तो वह अंग्रेजी में 'स्' ही रहता है। जैसे लैटिन का शब्द 'Hosts' अंग्रेजी में 'Guest' बनता है, जिसमें 'त्' के पूर्व 'स्' सुरक्षित है।

(4) वर्नर का चौथा संशोधन यह है कि भारोपीय भाषा के शब्द में 'क्' या 'प्' के पूर्व जो 'त्' ध्वनि होती है वह अंग्रेजी में भी सुरक्षित रहती है, उसका परिवर्तन नहीं होता।

12. स्वनिम विज्ञान (ध्वनि ग्राम विज्ञान)

उसे स्वनिम विज्ञान (Phonemics) कहते हैं, जो किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनि ग्रामों) और उनसे सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यवस्था का विचार तथा विश्लेषण करता है। इस कारण से ही स्वनिम, उपस्वन, अनुतान, बलाघात, दीर्घता, अनुनासिकता और संहिता इन विषयों को लेकर स्वनिम विज्ञान अध्ययन-विश्लेषण करता है।

स्वनिम विज्ञान स्वनिमों को दो मुख्य भेदों में स्वीकार करता है—

(अ) खंड्य स्वनिम (Segmental Phoneme)

(आ) खंड्येतर स्वनिम (Supersegmental Phoneme)।

स्वनिम के अनुसार वे 'खंड्य स्वनिम' हैं जिन्हें अलग-अलग खण्डित किया जा सकता है। इस प्रकार की विशेषता के कारण खण्ड्य स्वनिमों की स्वतन्त्र सत्ता होती है।

स्वनिम विज्ञान के अनुसार वे 'खंड्येतर स्वनिम' हैं जिन्हें अलग-अलग खण्डित नहीं किया जा सकता। वास्तव में एक से अधिक खण्ड्य स्वनिमों के आधार

पर ही खण्ड्येतर स्वनिमों का अस्तित्व बना रहता है। इसलिए खण्ड्येतर स्वनिमों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती।

स्वनिम विज्ञान के अनुसार खण्ड्य स्वनिमों के दो उपभेद होते हैं—(1) स्वर स्वनिम, और (2) व्यंजन स्वनिम।

स्वनिम विज्ञान के अनुसार खण्ड्येतर स्वनिमों के पाँच उपभेद होते हैं—(1) अनुनासिकता, (2) बलाघात, (3) दीर्घता, (4) अनुतान, (5) संगम (संहिता)।

स्वनिम (ध्वनि ग्राम) और उपस्वन (संध्वनि)

किसी भाषा की उन भाषण ध्वनियों (Speech sounds) अर्थात् भाषा ध्वनियों को 'स्वनिम' कहते हैं जो आपस में वितरण (distribution) की दृष्टि से व्यतिरेकी contrastive) होती हैं और अर्थ की दृष्टि से उस भाषा की सार्थक लघुतम इकाई होती हैं। भाषा की सार्थक लघुतम इकाई होने के कारण ही स्वनिम 'अर्थभेदक' होते हैं। 'अर्थभेदक' होने के कारण ही प्रत्येक स्वनिम एक स्वतन्त्र 'ध्वनि चिन्ह' बना रहता है। अर्थ की दृष्टि से भेदक (distinctive) होना 'स्वनिम' की बहुत महत्वपूर्ण विशेषता है। इसलिए ही स्वनिमों का व्यतिरेकी वितरण (Contrastive distribution) हो सकता है।

प्रत्येक स्वनिम, शब्दों के उच्चारण में उच्चारण की दृष्टि से ऐसे अलग-अलग रूप धारण करता है, जो अर्थ की दृष्टि से निरर्थक होने के कारण आपस में उनका या तो परिपूरक वितरण (Complementary distribution) हो सकता है या मुक्त वितरण (Free Variation) हो सकता है। स्वनिम के इस प्रकार के उच्चरित रूपों को ही 'उपस्वन' (Allophone) कहते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि वाक्य भाषा की सहज सार्थक इकाई है। इसका अर्थ यह है कि व्यवहार में भाषा का प्रयोग वाक्य के रूप में अर्थात् वाक्य के उच्चारण के रूप में होता है, इसलिए वाक्य का उच्चारण करते समय वाक्य में प्रयुक्त पदों अर्थात् शब्द रूपों का ही उच्चारण होता है, जिससे एक ही स्वनिम के विभिन्न उपस्वनों का उच्चारण हो जाता है। इस प्रकार उपस्वन वाक्य के उच्चारण के माध्यम से अपनी अनुमेय भौतिक सत्ता को बनाये रखते हैं। ऐसी स्थिति में उपस्वनों का परिपूरक वितरण करने पर 'स्वनिम' की प्रातिनिधिक तथा मानसिक अननुमेय सत्ता का बोध हो जाता है। जैसे—

के[1]वल क[2]नक्[3] कु[4]छ की[5]मती होता है।

इस वाक्य के उच्चारण में 'क्' स्वनिम का उच्चारण पाँच रूपों में होता है। 'क्' कंठ्य स्वनिम है। 'केवल' शब्द के उच्चारण में 'ए' स्वर के सहयोग से क्[1] का उच्चारण 'जिव्हाग्र' की ओर बढ़ जाता है। 'कनक्' शब्द के उच्चारण में क्[2] का उच्चारण 'अ' स्वर के सहयोग से 'जिव्हामध्य' की ओर बढ़ जाता है। क्[3] का उच्चारण शुद्ध या केवल व्यंजन के रूप में कंठ से होता है। क्[4] का उच्चारण 'कुछ'

शब्द के उच्चारण में 'उ' स्वर के सहयोग से कंठ से कुछ आगे बढ़ जाता है और 'कीमती' शब्द के उच्चारण में क्^{5} का उच्चारण 'जिव्हाग्र' की ओर बढ़ जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उच्चारण और श्रवण 'क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{4} और क्^{5}' का होता है, इसलिए इनकी सत्ता भौतिक और अनुमेय है। इनकी तुलना में 'क्' की सत्ता भौतिक तथा अनुमेय नहीं है। 'क्' की सत्ता तो मानसिक और अननुमेय है। 'क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{4}, क्^{5}' के आधार पर ही एक मुखिया के रूप में 'क्' को अर्थात् सामान्य 'क्' को स्वीकार कर लिया जा सकता है। इसका अर्थ यह होता है कि मुखिया रूपी 'क्' मानसिक, जाति जैसा, परिवार जैसा, अननुमेय, अर्थभेदक तथा महत्वपूर्ण सत्तावाला 'स्वनिम' होता है तो इसके विरुद्ध 'क्^{1}, क्^{2}, क्^{3}, क्^{3}, क्^{4}, क्^{5}' ये 'क्' स्वनिम के प्रतिनिधि रूपी भौतिक, व्यक्ति, जैसे पारिवारिक सदस्य, जैसे अनुमेय (Predictable), अर्थ अभेदक तथा अमहत्वपूर्ण सत्तावाले 'उपस्वन' होते हैं। इस प्रकार के स्वनिम और उसके उपस्वनों का वितरण भी एक-दूसरे के विरुद्ध होता है।

एक भाषा के स्वनिन आपस में वितरण की दृष्टि से व्यतिरेकी या विरोधी होते हैं, लेकिन एक स्वनिम के उपस्वन आपस में वितरण की दृष्टि से प्रायः परिपूरक होते हैं या कभी मुक्त होते हैं। एक भाषा के जितने भी स्वनिम होते हैं, वे ध्वन्यात्मक रूप में एक-दूसरे से मिलते-जुलते नहीं, बल्कि एक-दूसरे के विरोधी होते हैं, इस कारण से ही स्वनिम अर्थभेद करने वाले अर्थात् अर्थभेदक होते हैं और अर्थभेद करने के लिए वे शब्द में अपने-अपने स्थान पर ही आते हैं। एक-दूसरे के स्थान पर स्वनिम के आने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है। इस कारण से ही 'कनक' और 'सनक' इन शब्दों के आरम्भ में 'क्' और 'स्' ये भिन्न या विरोधी या व्यतिरेकी स्वनिम अपने-अपने स्थान पर एक ही स्थिति में आकर ही अर्थभेद करने की क्षमता रखते हैं। इसलिए यहाँ 'क्' और 'स्' इन स्वनिमों का आपस में व्यतिरेकी वितरण है। स्वनिमों का इस प्रकार का व्यतिरेकी वितरण दिखाने के लिए प्रायः न्यूनतम विरोधी युग्म (Mini-malpair) का प्रयोग किया जाता है। इस कारण से ही 'कनक' और 'सनक' इन शब्दों में 'अनक' इस समान ध्वनि समूह के साथ आरम्भ में एक ही स्थिति में 'क्' और 'स्' स्वनिमों का प्रयोग हुआ है, जिससे 'क्' और 'स्' दोनों अर्थभेदक स्वनिम बन गये हैं। परिणामस्वरूप 'क्' और 'स्' दोनों स्वनिम हैं और अपने-अपने शब्द में केवल एक-एक का अन्तर रखते हैं। इस कारण से स्वनिम भाषा में महत्वपूर्ण बने रहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि स्वनिम भाषा में महत्वपूर्ण (significant) होते हैं और जो न्यूनतम विरोधी युग्म होता है उसमें केवल एक-एक स्वनिम का विरोध होता है।

लेकिन भाषा में एक स्वनिम के उपस्वन अर्थभेदक के रूप में महत्वपूर्ण नहीं होते। इस कारण से ही उपस्वनों का मुक्त वितरण या परिपूरक वितरण अर्थभेदक नहीं होता। 'कानून' और 'क़ानून' इन शब्दों के आरम्भ में दोनों 'क्' और 'क़्'

'आनून' ध्वनि समूह के साथ एक ही स्थिति में तथा अर्थभेदकरहित स्थिति में आकर एक ही 'क्' स्वनिम के उपस्वन बन गये हैं और दोनों मुक्त वितरण में आ गये हैं।

उपर्युक्त 'क्[1], क्[2], क्[3], क्[4], क्[5]' ये उपस्वन अपने-अपने शब्द में अलग-अलग स्थिति में तथा अर्थभेदकरहित स्थिति में आकर परिपूरक वितरण वाले उपस्वन बन गये हैं।

इस प्रकार दो स्वनिम एक ही स्थिति में आकर अर्थ में परिवर्तन लाते हैं, तो उनका वितरण 'विरोधी वितरण' या 'व्यतिरेकी वितरण' कहलाता है। इसके विरुद्ध दो उपस्वन भिन्न स्थिति में आकर भी अर्थ में परिवर्तन नहीं लाते हैं, तो उनका वितरण 'परिपूरक वितरण' कहलाता है। जब दो उपस्वन एक ही स्थिति में मुक्त रूप से आकर अर्थ में परिवर्तन नहीं लाते, तब उनका वितरण 'मुक्त वितरण' कहलाता है। इस प्रकार के उपस्वनों को 'मुक्त परिवर्तन' (Free Variant) कहा जाता है।

निष्कर्ष के रूप में 'स्वनिम' और 'उपस्वन' में महत्वपूर्ण अन्तर होता है, जिसे संक्षेप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

	स्वनिम	उपस्वन
(प)	अननुमेय	अनुमेय
(फ)	मानसिक सत्ता	भौतिक सत्ता
(ब)	जाति के समान	व्यक्ति या व्यष्टि के समान
(भ)	परिवार के समान	परिवार के सदस्यों के समान
(म)	अर्थभेदक	अर्थभेदकरहित
(य)	आपस में व्यतिरेकी वितरण वाले	आपस में परिपूरक वितरण वाले
(र)	भाषा में महत्वपूर्ण	भाषा में अमहत्वपूर्ण

(अ) खंड्य स्वनिम—(अ-1) हिन्दी स्वर स्वनिम

स्वनिम निश्चिति के लिए जिस व्यतिरेकी वितरण पद्धति और उसके लिए आवश्यक न्यूनतम विरोधी शब्द युग्मों के आधार पर हिन्दी भाषा में 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' ये दसों स्वर स्वनिम हैं। जैसे—

अग-आग, आला-इला, इशा-ईशा, ईषा-उषा, उमर-ऊमर, ऊड़ी-एड़ी, एड़-ऐड, ओड़-औड, दल-दाल, दाना-दिन, दिन-दीन, पीर-पुर, सुर-सूर, तूल-तेल, मेल-मैल, मोल-मौल, अमर-उमर, मार-सुर, फल-फूल, मल-मोल, तिल-तौल, गैर-गौर, कीट-कूट, सेर-सैर।

इस प्रकार हिन्दी में दस 'मुख्य स्वर स्वनिम' हुए हैं और अंग्रेजी का 'ऑ' स्वर शिक्षितों की हिन्दी में एक गौण स्वर स्वनिम हुआ है—हाल (हालचाल)-हॉल (बड़ा कमरा), काफी (पर्याप्त)-कॉफी, बाल-बॉल (गेंद)।

(अ-2) हिन्दी व्यंजन स्वनिम

व्यतिरेकी वितरण पद्धति और आवश्यक न्यूनतम विरोधी शब्द युग्मों के आधार पर हिन्दी भाषा में जिन व्यंजन स्वनिमों को स्वीकार किया गया है, वे इस प्रकार हैं—

क्—काल	ट्—टाल	च्—चाल	त्—तार	प्—पाल	न्—कान	य्—याद
ख्—खाल	ठ्—ठाल	छ्—छाल	थ्—थार	फ्—फाल	न्ह्—कान्ह	व्—वाद
ग्—गाल	ड्—डाल	ज्—जाल	द्—दार	ब्—बाल	र्—कूरा	श्—शाल
घ्—घाल	ढ्—ढाल	झ्—झाल	ध्—धार	भ्—भाल	ल्—कूला	स्—साल
ह्—हाल	ण्—वाण			म्—मारा	ल्ह्—कूल्हा	
	ड़—बाड़			म्ह्—म्हारा		
	ढ़—बाढ़			व्—वारा		

इस प्रकार हिन्दी में 35 व्यंजन स्वनिम प्रचलित हैं। ये सभी व्यंजन हिन्दी के 'केन्द्रीय (core) स्वनिम' हैं जो स्वनिम भाषा में सामान्य रूप से अर्थभेदक और व्यतिरेकी होते हैं, उन्हें 'केन्द्रीय स्वनिम' या 'मुख्य स्वनिम' कहा जाता है। इसलिए हिन्दी के ये 35 व्यंजन स्वनिम 'केन्द्रीय स्वनिम' या 'मुख्य स्वनिम' हैं।

लेकिन जो कुछ स्वनिम मर्यादित लोगों में, मर्यादित शब्दों में या मर्यादित परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें 'परिधीय स्वनिम' या 'गौण स्वनिम' कहते हैं। हिन्दी में 'आँ, क़, ख़, ग़, ज़, फ़' ये 'परिधीय स्वनिम' या 'गौण स्वनिम' हैं, क्योंकि थोड़े से लोगों के द्वारा हिन्दी में इन गौण स्वनिमों का प्रयोग होता है। जैसे—

आ—काफी, बाल	क़—ताक (देख)	ख़—ख़ैर (कत्था)	ग़—बाग़	ज़—ज़रा (बुढ़ापा)
आँ—काँफी, बाँल	क़—ताक़(आला)	ख़—ख़ैर	ग़—बाग़	ज़—ज़रा (थोड़ा)

फ-फ़=फ—फन, फ़—फ़न (कारीगरी)।

इस प्रकार के हिन्दी के गौण स्वनिमों को 'अकेन्द्रीय स्वनिम' भी कहते हैं। हिन्दी के 'ङ्, ञ्, न' ये व्यंजन उपस्वन हैं और 'न्' स्वनिम है—

स्वनिम	उपस्वन	वितरण
न्	ङ्	(1) क्, ख्, ग्, घ के पूर्व 'ङ्' का आगम (अंक, शंख, अंग, जंघा) (अपवाद—वाङ्मय, पराङ्मुख)
	ञ	(2) च्, छ्, ज्, झ् के पूर्व 'ञ्' का आगम (चंचल, वांछा, मंजु, झंझा)
	न	(3) अन्यत्र (डंडा, संदेह, संशय आदि)

('अनुस्वार' का अर्थ है, जो स्वर का अनुसरण करे, अर्थात् 'स्वर' के बाद आ जाय। शब्दान्त में अनुस्वार का उच्चारण सदा 'म्' होता है—अहं, स्वयं।)

(आ) खंड्येतर स्वनिम

इन्हें इसलिए स्वनिम न कहकर स्वनिमिक (Phonemic) अर्थात अर्थभेदक कहना अधिक समुचित माना जाता है कि इनका अलग से उच्चारण नहीं हो सकता। हिन्दी में न्यूनतम विरोधी युग्मों की उपलब्धि के आधार पर खंड्येतर स्वनिम या स्वनिमिक के रूप में दीर्घता (Length), अनुनासिकता (Nasalization), बलाघात (Stress), अनुतान (Intonation) तथा संगम या संहिता या विवृति (Juncture) को स्वीकार किया जाता है।

(आ-1) दीर्घता

दीर्घता स्वनिम या स्वनिमिक दीर्घता का आधार व्यंजन का द्वित्व होना है। जैसे—पका—पक्का, बचा—बच्चा, पता—पत्ता, चपल—चप्पल, बला—बल्ला, लसी—लस्सी, सजा—सज्जा।

(आ-2) अनुनासिकता

यह न स्वर है, न व्यंजन। अनुनासिकता इस बात का संकेत है कि जिस स्वर के साथ होती है, उस स्वर के उच्चारण में हवा नाक से भी बाहर की ओर निकल जाती है। इसीलिए अनुनासिकता को स्वर रंजक कहा जा सकता है। अनुनासिकता स्वर को नासिक्यता से रंजित कर देती है। इसलिए हिन्दी में सभी स्वर अनुनासिक होते हैं—हँसना (अँ), साँस (आँ), बिंधना (इँ), सींचना (ईं), उँगली, खूँटा (ऊँ), गेंद (एँ), भैंस (ऐं), गोंद (ओं), भौं (औं)।

अनुनासिकता स्वनिम या स्वनिमिक अनुनासिकता का आधार स्वर का नासिक्यता से रंजित होना है। जैसे सास-साँस, पूछ-पूँछ, गोद-गोंद, सवार-सँवार, बिंधना-बिंधना, चिड़िया-चिड़ियाँ, है-हैं, थी-थीं, चले-चलें। (चिड़ियाँ, हैं, थीं, चलें—इन शब्द रूपों में बहुवचनसूचक अनुनासिकता है।)

(आ-3) बलाघात

बलाघात स्वनिम या स्वनिमिक बलाघात का आधार वाक्य में किसी एक शब्द (पद) पर अधिक बल पड़ना है। जैसे—

(क) मैंने ध्यान से ग्रन्थ पढ़ा। (ख) मैंने ध्यान से ग्रन्थ पढ़ा।
(ग) मैंने ध्यान से ग्रन्थ पढ़ा। (घ) मैंने ध्यान से ग्रन्थ पढ़ा।

यहाँ (क) वाक्य में 'मैंने' शब्द (पद) पर कर्ता की प्रधानता का अर्थबोध कराने वाला बलाघात है। (ख) वाक्य में 'ध्यान से' शब्द (पद) पर रीतिवाचक क्रिया विशेषण की प्रधानता का अर्थबोध कराने वाला बलाघात है। (ग) वाक्य में 'ग्रन्थ' शब्द (पद) पर कर्म की प्रधानता का अर्थबोध कराने वाला बलाघात है। (घ) वाक्य में 'पढ़ा' शब्द (पद) पर क्रिया की प्रधानता का अर्थबोध कराने वाला बलाघात है। इस प्रकार इन चारों वाक्यों में स्वनिमिक बलाघात है।

(आ-4) अनुतान

अनुतान स्वनिम या स्वनिमिक अनुतान का आधार वाक्य में सुर लहर के प्रभाव का होना है। जैसे सुनीता ने गाना गाया। उज्ज्वल और राहुल ने गाना सुना। (इन दोनों वाक्यों में सुर लहर का सामान्य प्रभाव है, इसलिए दोनों वाक्य विधानार्थक हैं।)

सुनीता ने गाना गाया ? उज्ज्वल और राहुल ने गाना सुना ? (यहाँ दोनों वाक्यों में सुर-लहर का प्रभाव आरम्भ से अन्त तक उच्चतर हुआ है, इसलिए दोनों वाक्य प्रश्नार्थक बन गये हैं।)

(आ-5) संगम

संगम स्वनिम या स्वनिमिक संगम का आधार शब्द आदि के उच्चारण में 'विराम' का होना है। जैसे खाली-खा ली, होली-हो ली, पीली-पी ली, तुम्हारे-तुम हारे, रोको, मत जाने दो। रोको मत, जाने दो।

इस प्रकार परस्पर न्यूनतम विरोधी युग्मों के उपलब्ध हो जाने से हिन्दी भाषा में दीर्घता, अनुनासिकता, बलाघात, अनुतान तथा संगम खंड्येतर स्वनिम या स्वनिमिक हैं।

3
पद विज्ञान (रूप विज्ञान)

पद विज्ञान को रूप विज्ञान कहा जाता है। पद सम्बन्धी अर्थात् रूप सम्बन्धी अनेक बातों का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण पद विज्ञान अर्थात् रूप विज्ञान ही करता है, जिससे अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का परस्पर महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

1. पद की परिभाषा

मनुष्य व्यवहार में भाषा का प्रयोग वाक्य के रूप में ही होता है और वाक्य की रचना अपेक्षित शब्दों के मूल रूप में या परिवर्तित रूप में परस्पर सम्बन्धित होने पर ही होती है। इस दृष्टि से शब्द के मूल रूप में या परिवर्तित रूप में उस 'पद' का बहुत महत्व होता है, जिसमें अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का वाक्यार्थानुकूल समुचित समन्वय बना रहता है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर 'पद' की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी जाती है—

"जब शब्द (अर्थतत्व) सम्बन्धतत्व के सहयोग से मूल रूप में रहकर या परिवर्तित होकर वाक्य में प्रयोग करने योग्य 'रूप' को धारण करता है, तब उसे 'पद' कहा जाता है।"

पद की परिभाषा से पद सम्बन्धी महत्वपूर्ण विशेषताएँ व्यक्त होती हैं—

(1) पद का महत्व वाक्य में प्रयोग करने योग्य होने की दृष्टि से ही है।

(2) पद वाक्य में प्रयोग करने योग्य 'रूप' होता है, जो शब्द, सम्बन्धतत्व और वाक्य इन तीनों के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखता है।

(3) शब्द अपने मूल रूप में भी सार्थक होता है और परिवर्तित रूप में भी सार्थक अर्थात् अर्थपूर्ण होता है। इस कारण ही शब्द को 'अर्थतत्व' माना जाता है। यह 'अर्थतत्व' ही वाक्य में प्रयोग करने योग्य 'रूप' धारण करके 'पद' बन जाता है।

(4) वाक्य में प्रयोग करने योग्य 'रूप' धारण करके 'पद' बनने के लिए शब्द अर्थात् अर्थतत्व को सम्बन्धतत्व का सहयोग लेना आवश्यक होता है।

(5) सम्बन्धतत्व का सहयोग शब्द अर्थात् अर्थतत्व को या तो मूल रूप में रख देता है या उसे परिवर्तित कर देता है, जिसके परिणामस्वरूप शब्द (अर्थतत्व) वाक्य में प्रयोग करने योग्य 'रूप' अर्थात 'पद' बन जाता है।

स्पष्ट है कि 'पद' मूल शब्द, सम्बन्धतत्व तथा वाक्य इन तीनों के साथ अभिन्न और महत्वपूर्ण सम्बन्ध रखता है। वास्तव में शब्द अर्थात् अर्थतत्व ही पद का मूलभूत घटक है, सम्बन्धतत्व अर्थतत्व का कुछ विस्तार करने वाला घटक है और वाक्य अपने पूर्ण अर्थ (वाक्यार्थ) में विस्तारित अर्थतत्व का समुचित योजन करने वाला घटक है। इस प्रकार 'पद' कहते ही अर्थतत्व (शब्द), सम्बन्धतत्व और वाक्य इन परस्पर सम्बन्धित तीन घटकों का स्मरण हो आता है। यह' वस्तुस्थिति 'अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व के परस्पर सम्बन्ध' को देखने पर अपने आप स्पष्ट हो जाती है।

2. अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का परस्पर सम्बन्ध

पद विज्ञान जिसे 'पद' मानता है. वह अर्थतत्व, सम्बन्धतत्व और वाक्य इन तीन घटकों के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखता है। वैसे, पद का अपना कोई स्वतन्त्र महत्व नहीं है। पद का महत्व तो इन तीन घटकों पर ही आधारित है। 'पद' तो तभी 'पद' सिद्ध होता है, जब वाक्य में उसका समुचित योजन किया जाता है। वाक्य में अपना समुचित योजन हो, इसलिए अर्थतत्व ही सम्बन्धतत्व के सहयोग से 'रूप' अर्थात् 'पद' बन जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि 'पद' के सन्दर्भ में अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का परस्पर सम्बन्ध अपरिहार्य होता है। अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व के परस्पर सम्बन्ध के आधार पर ही उस 'पद' का निर्माण हो जाता है, जो वाक्य रचना के लिए एक अत्यावश्यक घटक होता है।

अयोगात्मक भाषाओं के वाक्य में भी रचना की दृष्टि से अर्थतत्व के साथ सम्बन्धतत्व के रूप में वाक्य में शब्द (पद) का विशिष्ट स्थान क्रम महत्वपूर्ण होता है। 'वाक्य में शब्द का विशिष्ट स्थान क्रम' ऐसा सम्बन्धतत्व है, जिसके सहयोग से शब्द (अर्थतत्व) मूल रूप में रहकर वाक्य में प्रयोग करने योग्य 'रूप' अर्थात् 'पद' बन जाता है। इस कारण ही अयोगात्मक वाक्य में शब्द (पद) के स्थान क्रम में परिवर्तन होने पर वाक्य में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है, जैसे चीनी भाषा के अयोगात्मक वाक्य में होता है।

(1) पा ताङ् शेन=पा मारता है शेन को=पा शेन को मारता है।

(2) शेन ताङ् पा=शेन मारता है पा को=शेन पा को मारता है।

चीनी भाषा के इन दो अयोगात्मक वाक्यों में प्रत्येक शब्द का विशिष्ट स्थान क्रम ही सम्बन्धतत्व के रूप में अर्थतत्व के साथ महत्व का कार्य कर रहा है। 'पा' यह संज्ञात्मक शब्द (अर्थतत्व/पद) पहले वाक्य में प्रथम स्थान क्रम पर होने के कारण वाक्य के कर्ता का अर्थ व्यक्त कर रहा है, तो दूसरे वाक्य में अन्तिम स्थान क्रम पर होने

के कारण वाक्य के कर्म का अर्थ व्यक्त कर रहा है। ठीक इसी तरह 'शेन' यह संज्ञात्मक शब्द पहले वाक्य में अन्तिम स्थान-क्रम पर वाक्य के कर्म का अर्थ व्यक्त कर रहा है, तो दूसरे वाक्य में प्रथम स्थान क्रम पर वाक्य के कर्ता का अर्थ व्यक्त कर रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि **अयोगात्मक वाक्य में भी अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का परस्पर सम्बन्ध बना रहता ही है; क्योंकि अयोगात्मक वाक्य में शब्द का विशिष्ट स्थान क्रम ही सम्बन्धतत्व का कार्य करता रहता है।**

योगात्मक भाषाओं के वाक्य में तो अर्थतत्व के साथ भिन्न-भिन्न प्रत्यय सम्बन्ध तत्व के रूप में महत्व का कार्य करते हैं। इस प्रकार की वास्तविकता को हिन्दी भाषा के कुछ वाक्यों के उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है, क्योंकि **हिन्दी भाषा योगात्मक भाषा है।**

(1) लड़का पुस्तक पढ़ता है। (2) लड़की पुस्तक पढ़ती है।
(3) लड़के पुस्तकें पढ़ते हैं। (4) लड़कियाँ पुस्तकें पढ़ती हैं।
(5) लड़के ने पुस्तक को पढ़ा। (6) लड़की ने पुस्तक को पढ़ा।
(7) लड़कों ने पुस्तकों को पढ़ा। (8) लड़कियों ने पुस्तकों को पढ़ा।
(9) तूने ग्रन्थालय में पुस्तक पढ़ी। (10) मैं घर पर आँखों से पुस्तक पढ़ूंगा।

हिन्दी भाषा के उपर्युक्त वाक्यों में से पहले आठ वाक्यों की रचना 'लड़के', 'पुस्तक' और 'पढ़' इन अर्थतत्वों (शब्दों) और विभिन्न सम्बन्धतत्वों के परस्पर सम्बन्ध से हुई है। हिन्दी भाषा के वाक्य में पद के स्थान क्रम रूपी सम्बन्धतत्व के अनुसार पहले स्थान-क्रम पर 'कर्ता-पद' होता है, उसके बाद के स्थान-क्रम पर 'कर्म पद' होता है और वाक्य के अन्तिम स्थान क्रम पर 'क्रिया-पद' होता है। इस कारण ही पहले आठों वाक्यों में प्रथम स्थान पर 'लड़क्' अर्थतत्व से बना 'कर्ता पद' है, तो उसके बाद के स्थान क्रम पर 'पुस्तक' अर्थतत्व से बना 'कर्म पद' है और अन्तिम स्थान क्रम पर 'पढ़' अर्थतत्व से बना 'क्रिया पद' है।

पहले वाक्य में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष 'आ' प्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़का' कर्ता पद का योजन हुआ है। 'पुस्तक' अर्थतत्व के साथ केवल शून्य प्रत्यय रूपी स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष सम्बन्धतत्व के साथ 'कर्ता पद' के बाद के स्थान क्रमी रूपी सम्बन्ध तत्व के सहयोग से 'पुस्तक' कर्म पद का योजन हुआ है। 'पढ़' अर्थतत्व के साथ वर्तमान कालसूचक 'त्' प्रत्यय-रूपी सम्बन्धतत्व के साथ पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष 'आ' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पढ़ता' मुख्य क्रिया पद का योजन हुआ है और उसके साथ 'है' एकवचन सहायक क्रिया पद जोड़ दिया गया है।

दूसरे वाक्य में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष 'ई' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़की' कर्ता पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पुस्तक' कर्म पद की स्थिति पहले वाक्य में जैसी है, वैसी ही है। यहाँ 'पढ़' अर्थतत्व के साथ

वर्तमान कालसूचक 'त्' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के साथ स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष 'ई' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पढ़ती' मुख्य क्रिया पद का योजन हुआ है और उसके साथ 'है' एकवचन सहायक क्रिया पद जोड़ दिया गया है।

तीसरे वाक्य में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष 'ए' प्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़के' कर्ता पद का योजन हुआ है। 'पुस्तक' अर्थतत्व के साथ स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष 'एँ' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पुस्तकें' कर्म-पद का योजन हुआ है। 'पढ़' अर्थतत्व के साथ वर्तमान कालसूचक 'त्' प्रत्यय-रूपी सम्बन्धतत्व के साथ पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष 'ए' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पढ़ते' मुख्य क्रिया पद का योजन हुआ है और उसके साथ 'हैं' बहुवचन सहायक क्रिया पद जोड़ दिया गया है।

चौथे वाक्य में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष 'इयाँ' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़कियाँ' कर्ता पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पुस्तकें' कर्म पद की स्थिति तीसरे वाक्य में जैसी है, वैसी ही है। यहाँ 'पढ़ती हैं' क्रिया पद की स्थिति स्त्रीलिंग, बहुवचन अन्य पुरुष है।

पाँचवें वाक्य में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ कर्ताकारक की 'ने' विभक्ति प्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के प्रभावस्वरूप पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष 'ए' सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़के ने' अप्रधान सप्रत्यय कर्ता पद का योजन हुआ है। 'पुस्तक' अर्थतत्व के साथ शून्य प्रत्ययरूपी स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, सम्बन्धतत्व के साथ कर्म कारक की 'को' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पुस्तक को' सप्रत्यय कर्म पद का योजन हुआ है। 'पढ़' अर्थतत्व के साथ सामान्य भूतकालसूचक, पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष 'आ' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पढ़ा' क्रिया पद का योजन हुआ है।

छठे वाक्य में स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, 'लड़की' शब्द रूप के साथ कर्ता कारक 'ने' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़की ने' अप्रधान सप्रत्यय कर्ता पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पुस्तक को' कर्म पद और 'पढ़ा' क्रिया पद का योजन पाँचवें वाक्य के अनुसार हुआ है।

सातवें वाक्य में कर्ता कारक 'ने' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के प्रभाव-स्वरूप 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, 'ओं' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़कों ने' अप्रधान सप्रत्यय कर्तापद का योजन हुआ है। कर्म कारक 'को' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के प्रभावस्वरूप 'पुस्तक' अर्थतत्व के साथ स्त्रीलिंग बहुवचन, अन्य पुरुष 'ओं' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से पुस्तकों को' सप्रत्यय कर्म पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पढ़ा' क्रिया पद का योजन पाँचवें वाक्य के अनुसार हुआ है।

आठवें वाक्य में कर्ता कारक 'ने' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के प्रभाव-स्वरूप 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष 'इयो' (इओं) प्रत्यय-रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'लड़कियों ने' अप्रधान सप्रत्यय कर्ता पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पुस्तकों को' कर्म पद और 'पढ़ा' क्रिया पद का योजन सातवें वाक्य के अनुसार हुआ है।

नौवें वाक्य की रचना 'तू', 'ग्रन्थालय', 'पुस्तक' और 'पढ़' इन अर्थतत्वों (शब्दों) और विभिन्न सम्बन्धतत्वों के परस्पर सम्बन्ध से हुई है। इस वाक्य में पुल्लिग/स्त्रीलिंग, एकवचन, मध्यम पुरुष 'तू' अर्थतत्व के साथ कर्ता कारक 'ने' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'तूने' सप्रत्यय अप्रधान कर्ता पद का योजन हुआ है। पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष 'ग्रन्थालय' अर्थतत्व के साथ अधिकरण कारक 'में' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'ग्रन्थालय में' स्थानवाचक क्रिया-विशेषण पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पुस्तक' अप्रत्यय कर्म पद का योजन पहले वाक्य के अनुसार हुआ है। यहाँ 'पढ़' अर्थतत्व के साथ सामान्य भूतकालसूचक स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष 'ई' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'पढ़ी' क्रिया पद का योजन हुआ है।

दसवें वाक्य की रचना 'मैं', 'घर', 'आँख', 'पुस्तक' और 'पढ़' इन अर्थतत्वों (शब्दों) और विभिन्न सम्बन्धतत्वों के परस्पर सम्बन्ध से हुई है। इस वाक्य में पुल्लिग, एकवचन, उत्तम पुरुष 'मैं' प्रधान अप्रत्यय कर्ता पद का योजन हुआ है। पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष 'घर' अर्थतत्व के साथ अधिकरण कारक 'पर' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'घर पर' स्थानवाचक क्रियाविशेषण पद का योजन हुआ है। करण कारक 'से' विभक्ति प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के प्रभावस्वरूप 'आँख' अर्थतत्व के साथ स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष 'ओं' प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'आँखों से' साधनसूचक क्रियाविशेषण पद का योजन हुआ है। यहाँ 'पुस्तक' अप्रत्यय कर्म पद का योजन पहले वाक्य के अनुसार हुआ है। यहाँ 'पढ़' अर्थतत्व के साथ उत्तम पुरुष सूचक 'ऊँ' भविष्यकाल सूचक 'ग्' और पुल्लिग, एकवचन 'आ' सम्बन्धतत्व के योग से 'पढ़ूँगा' क्रिया पद का योजन हुआ है।

हिन्दी भाषा के उपर्युक्त दस वाक्यों में योजित पदों के विश्लेषण से और चीनी भाषा के उपर्युक्त दो वाक्यों में योजित पदों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि—

(अ) चाहे अयोगात्मक वाक्य हो, चाहे योगात्मक वाक्य हो, उसमें अर्थतत्व (शब्द) और सम्बन्धतत्व का परस्पर सम्बन्ध बना ही रहता है।

(आ) अयोगात्मक वाक्य में अर्थतत्व और शब्द (पद) का विशिष्ट स्थान क्रम रूपी सम्बन्धतत्व का परस्पर सम्बन्ध बना रहता है।

(इ) योगात्मक वाक्य में भी अर्थतत्व और शब्द (पद) का विशिष्ट स्थानक्रम रूपी सम्बन्धतत्व का परस्पर सम्बन्ध बना रहता है।

(ई) परन्तु योगात्मक वाक्य में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण इन अर्थतत्वों (शब्दों) के साथ लिंग, वचन, पुरुष, कारक सूचक विभिन्न प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व का महत्व-पूर्ण सम्बन्ध बना रहता है।

(उ) योगात्मक वाक्य में 'क्रिया' अर्थतत्व (शब्द) के साथ कालसूचक प्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के साथ हिन्दी में लिंग, वचन, पुरुष सूचक भी सम्बन्धतत्व का महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है।

(ऊ) वाक्य में कभी अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व अपने परस्पर सम्बन्ध के आधार पर एक-दूसरे के साथ पूर्णरूप से मिले रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि कभी अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का **'पूर्ण संयोग'** हो जाता है। जैसे 'पढ़' धातु का पुल्लिग, एकवचन, सामान्य भूतकालसूचक रूप 'पढ़ा' बन जाता है, जिसमें 'पढ़' अर्थतत्व और 'आ' सम्बन्धतत्व का पूर्ण संयोग हो जाता है। 'लड़की' इस रूप में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ 'ई' स्त्रीलिंग, एकवचन प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व का पूर्ण संयोग हुआ है। 'लड़के' इस रूप में 'लड़क्' अर्थतत्व के साथ 'ए' पुल्लिग, बहुवचन प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व का पूर्ण संयोग हुआ है। जहाँ अर्थतत्व के साथ 'स्वर प्रतिस्थापन रूपी सम्बन्धतत्व' का योग होता है वहाँ **'पूर्ण संयोग'** हो जाता है। इस कारण ही अंग्रेजी भाषा में 'Tooth' एकवचन रूप से 'Teeth' बहुवचन रूप बनने में, 'Find' क्रिया रूप से 'Found' क्रिया रूप बनने में और 'Sing' क्रिया रूप से 'Sang' और 'Sung' क्रिया रूपों के बनने में **'स्वर प्रतिस्थापन'** के रूप में अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का पूर्ण संयोग होता है।

(ए) वाक्य में कभी अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व परस्पर सम्बन्ध को लेकर **'अपूर्ण संयोग'** के रूप में मिले रहते हैं। जैसे 'अहित' पद में अभावसूचक सम्बन्ध तत्व 'अ' और अर्थतत्व 'हित' का अपूर्ण संयोग है। मुंडा भाषा के 'मंपञ्जि' (मुखिये) पद में बहुवचन सूचक 'प' सम्बन्धतत्व और 'मंञ्जि' (मुखिया) अर्थतत्व का अपूर्ण संयोग है। 'सुन्दरता' पद में भाववाचक संज्ञासूचक 'ता' सम्बन्धतत्व और 'सुन्दर' अर्थतत्व का अपूर्ण संयोग है। अंग्रेजी भाषा के Talked या Walked पद में 'Talk' या 'Walk' अर्थतत्व के साथ भूतकालसूचक 'ed' सम्बन्धतत्व का अपूर्ण संयोग हुआ है। उपसर्ग, मध्यसर्ग, परसर्ग रूपी सम्बन्धतत्व और अर्थतत्व का **'अपूर्ण संयोग'** बना रहता है।

(ऐ) वाक्य में कभी अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व परस्पर सम्बन्ध के आधार पर 'दोनों स्वतन्त्र' रूप से मिले रहते हैं। जैसे 'गाय ने' पद में 'गाय' अर्थतत्व और 'ने' सम्बन्धतत्व 'दोनों स्वतन्त्र' हैं। 'घास को' पद में 'घास' अर्थतत्व और 'को' सम्बन्धतत्व दोनों स्वतन्त्र हैं। 'नर चीता' में 'नर' सम्बन्धतत्व और 'चीता' अर्थतत्व दोनों स्वतन्त्र हैं। 'मादा चीता' में 'मादा' सम्बन्धतत्व और 'चीता' अर्थतत्व दोनों स्वतन्त्र हैं।

इस प्रकार वाक्य में किसी न किसी रूप से अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध बना ही रहता है।

3. सम्बन्धतत्व के प्रकार

वाक्य भाषा की सहज इकाई होने के कारण वाक्य में जिन पदों का योजन होता है, उन पदों के साथ अलग-अलग प्रकार का ऐसा सम्बन्धतत्व होता है, जिसके सहयोग से अपना-अपना विशिष्ट अर्थ व्यक्त करने में तथा एकत्रित वाक्यार्थ भी व्यक्त करने में पद सफल हो जाते हैं। सम्बन्धतत्व के सहयोग से ही वाक्य में योजित पद विशिष्ट अर्थ का बोधक बना रहता है। इसलिए सम्बन्धतत्व के परिवर्तन से नया पद नये अर्थ का बोधक बन जाता है। इससे ज्ञात होता है कि पद के साथ भिन्न-भिन्न रूपों से संयोग होने के कारण सम्बन्धतत्व के कुछ प्रकार बने रहते हैं।

1. स्थान क्रम रूपी सम्बन्धतत्व—वाक्य रचना की दृष्टि से जिस-जिस शब्द को पद के रूप में वाक्य में स्थान दिया जाता है, तब उसका एक विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ होता है। इस कारण ही वाक्य में विशिष्ट स्थान क्रम पर योजित होने पर ही मूल शब्द रूपी पद विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ का बोधक बन जाता है। जब वही मूल शब्द रूपी पद वाक्य में किसी दूसरे स्थान क्रम पर योजित किया जाता है तब वह पहला विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ छोड़कर दूसरे नये विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ का बोधक बन जाता है। जैसे (1) आम मीठा है। (2) भोजन ताजा है। (3) लड़का चलता है।

इन तीनों वाक्यों में क्रमानुसार 'आम', 'भोजन', 'लड़का' ये तीनों मूल शब्द रूपी पद हैं, जिनका प्रयोग वाक्य में पहले स्थान क्रम पर होने से तीनों व्याकरणिक अर्थ की दृष्टि से 'कर्ता पद' का अर्थबोधक हैं, लेकिन वाक्य में इनके स्थान क्रम परिवर्तन से इनके व्याकरणिक अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे (1) मैंने आम खाया। (2) राम ने भोजन किया। (3) लड़की ने लड़का देखा।

इन तीनों वाक्यों में क्रमानुसार 'आम', 'भोजन', 'लड़का' इन तीनों पदों का प्रयोग वाक्य में 'कर्ता पद' के बाद के स्थान क्रम पर होने से तीनों व्याकरणिक अर्थ की दृष्टि से 'कर्म पद' का अर्थबोधक बन गये हैं।

(1) Rama Saved Gopal (2) Gopal Saved Rama. यहाँ अंग्रेजी भाषा के वाक्यों में जो मूल शब्द रूपी 'Rama' पद है, वह पहले वाक्य में प्रथम स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने के कारण 'कर्ता पद' का अर्थबोधक है, तो दूसरे वाक्य में क्रिया पद के बाद के स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने के कारण 'कर्म पद' का अर्थबोधक है। इन वाक्यों में जो मूल शब्द रूपी 'Gopal' पद है, वह पहले वाक्य में क्रिया पद के बाद के स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने के कारण 'कर्म पद' का अर्थबोधक है, तो दूसरे वाक्य में प्रथम स्थान-क्रम पर प्रयुक्त होने के कारण 'कर्ता पद' का अर्थबोधक है।

(1) पा ताङ् शेन (2) शेन ताङ् पा

यहाँ चीनी भाषा के वाक्यों में जो मूल शब्द रूपी पद 'पा' है, वह पहले वाक्य में प्रथम स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने से 'कर्ता पद' का बोधक है, तो दूसरे वाक्य में क्रिया पद के बाद के स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने से कर्म पद' का अर्थबोधक है। इन वाक्यों में जो मूल शब्द रूपी पद 'शेन' है, वह पहले वाक्य में क्रिया पद के बाद के स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने से 'कर्म पद' का अर्थबोधक है, तो दूसरे वाक्य में प्रथम स्थान क्रम पर प्रयुक्त होने से 'कर्ता पद' का अर्थबोधक है।

स्पष्ट है कि जब वाक्य में मूल शब्द रूपी पदों का प्रयोग होता है, तब उसके विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ की दृष्टि से वाक्य में 'स्थान क्रम रूपी सम्बन्ध तत्व' महत्व का होता है।

2. शब्द में अपरिवर्तन रूपी सम्बन्धतत्व अर्थात् शून्य सम्बन्धतत्व—हिन्दी भाषा के अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त पुल्लिग संज्ञा शब्द विभक्तिरहित एकवचन और बहुवचन में अपने मूल रूप में ही वाक्य में प्रयुक्त किये जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि विभक्तिरहित बहुवचन में इन संज्ञा शब्दों के साथ अपरिवर्तन रूपी सम्बन्ध तत्व अर्थात् शून्य सम्बन्धतत्व का योग होता है। जैसे—

(1) मैंने यात्रा में घर देखा, बैल देखा, मुनि देखा, माली देखा, साधु भी देखा।

(2) मैंन यात्रा में घर देखे, बैल देखे, मुनि देखे, माली देखे, साधु भी देखे।

इन दो वाक्यों में विभक्तिरहित एकवचन तथा बहुवचन में 'घर', 'बैल', 'माली' और 'साधु' इन पदों में अपरिवर्तनरूपी सम्बन्धतत्व अर्थात् शून्य सम्बन्धतत्व का योग हुआ है।

अंग्रेजी भाषा के सामान्य वर्तमान काल के वाक्य में एकवचन पुल्लिग या स्त्रीलिंग, उत्तम पुरुष कर्ता के साथ और बहुवचन, पुल्लिग या स्त्रीलिंग, उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष कर्ता के साथ ऐसा एक ही प्रकार का क्रिया पद आता है, जिसमें अपरिवर्तन रूपी सम्बन्धतत्व अर्थात् शून्य सम्बन्धतत्व का योग होता है—

(1) I go (एकवचन अर्थबोधक क्रिया पद)

(2) We go (3) You go (4) They go. (बहुवचन अर्थबोधक क्रियारूप)

इस प्रकार वाक्य में अपरिवर्तन रूपी सम्बन्धतत्व अर्थात् शून्य सम्बन्धतत्व भी पद के अर्थ में परिवर्तन करता है।

3. स्वतन्त्र शब्द रूपी सम्बन्धतत्व—वाक्य में प्रयोग करने योग्य पद बनने के लिए शब्द के साथ कभी आवश्यकता के अनुसार ऐसा स्वतन्त्र शब्द रूपी सम्बन्ध तत्व जुड़ जाता है, जिससे वाक्य में पद विशिष्ट अर्थबोधक तथा क्रिया पद के साथ या अन्य पदों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध सूचक बना रहता है। इस दृष्टि से हिन्दी के कारक चिन्ह अर्थात् विभक्तियों ने, को, से, पर, में, का, की, के' स्वतन्त्र शब्द रूपी सम्बन्धतत्व हैं। जैसे राम ने शेर को देखा।' इस वाक्य में ने' विभक्ति के

योग से 'राम ने' यह पद अप्रधान कर्ता का अर्थबोधक बनकर 'देखा' इस क्रिया के साथ जुड़ा है। 'को' विभक्ति के योग से 'शेर को' यह पद 'कर्म' का अर्थबोधक बन कर 'राम ने' और 'देखा' इन दो पदों के साथ जुड़ा है।

'राम ने घर पर बैठकर अपने मित्र को लेखनी से पत्र लिखा और घर से निकलकर डाकखाने में पत्र छोड़ दिया।' इस वाक्य में 'पर' विभक्ति के योग से 'घर पर' यह पद स्थानवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक बन गया। 'को' विभक्ति के योग से 'मित्र को' यह पद जिसके लिए क्रिया की गयी उस गौण कर्म का अर्थबोधक बन गया है। 'से' विभक्ति के योग से 'लेखनी से' यह पद साधनवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक बन गया। 'से' विभक्ति के योग से 'घर से' यह पद स्थानवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक बन गया। 'में' विभक्ति के योग से 'डाकखाने में' यह पद स्थानवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक बन गया।

अंग्रेजी भाषा के वाक्य में भी टू (to), फ्रॉम (from), ऑन (on) और इन (in) इसी प्रकार के ही स्वतन्त्र शब्द रूपी सम्बन्धतत्व उपयोग में लाये जाते हैं।

हिन्दी भाषा में दो वाक्यों को जोड़ने वाले भी स्वतन्त्र शब्द रूपी सम्बन्धतत्व का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'यदि मैं गाता तो अच्छा होता।' इस मिश्र वाक्य में 'यदि···तो' स्वतन्त्र शब्द रूपी सम्बन्धतत्व हैं, जिनसे दो वाक्य जुड़ गये हैं जो संकेतार्थक हैं। 'अगर···तो', 'ज्यों···त्यों' 'यद्यपि··· तथापि' आदि स्वतन्त्र शब्दरूपी सम्बन्धतत्व हैं।

4. ध्वनि प्रतिस्थापन रूपी सम्बन्धतत्व—एक ध्वनि के स्थान पर दूसरी ध्वनि का प्रतिस्थापन भी नया अर्थबोधक सम्बन्धतत्व है। इसका एक भेद स्वर प्रतिस्थापन है, दूसरा भेद व्यंजन प्रतिस्थापन है और तीसरा भेद स्वर-व्यंजन प्रतिस्थापन है।

(1) स्वर प्रतिस्थापन—एक स्वर के स्थान पर दूसरे स्वर का प्रतिस्थापन नया अर्थबोधक सम्बन्धतत्व होता है। जैसे 'चला' यह रूप (पद) पुल्लिग, एकवचन तथा सामान्य भूतकाल बोधक है, लेकिन 'चला' इस रूप के अन्त में जो 'आ' (चल्+आ) स्वर है, उसके स्थान पर 'ई' स्वर का प्रतिस्थापन करने से स्त्रीलिंग, एकवचन, सामान्य भूतकाल बोधक रूप (पद) 'चली' बन जाता है और 'ए' स्वर का प्रतिस्थापन करने से पुल्लिग, बहुवचन, सामान्य भूतकाल बोधक रूप (पद) 'चले' बन जाता है। ठीक इसी तरह मामा, नाना, दादा इन शब्दों के अन्तिम स्वर 'आ' के स्थान पर 'ई' स्वर का प्रतिस्थापन करने से 'मामी, नानी, दादी' ये स्त्रीलिंग अर्थबोधक रूप (पद) मिलते हैं। 'करना' इस क्रिया रूप में 'र्' के साथ जो 'अ' स्वर (र्+अ) है, उसके स्थान पर 'आ' स्वर का प्रतिस्थापन पर 'कराना' यह प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया रूप बनता है।

(2) व्यंजन प्रतिस्थापन—एक व्यंजन के स्थान पर दूसरे व्यंजन का प्रतिस्थापन नया अर्थबोधक सम्बन्धतत्व होता है। जैसे 'गाल' इस पद में जो 'ग्' व्यंजन है, उसके स्थान पर 'भ्' या 'म्' या 'ख्' व्यंजन का प्रतिस्थापन करने से नया अर्थसूचक 'भाल' या 'माल' या 'खाल' रूप (पद) मिलता है।

(3) स्वर व्यंजन प्रतिस्थापन—स्वर व्यंजन के स्थान पर दूसरे स्वर व्यंजन का प्रतिस्थापन नया अर्थबोधक सम्बन्धतत्व होता है। जैसे 'तू जा।' इस वाक्य में जो प्रत्यक्ष विधिकाल तथा आज्ञा का अर्थबोधक 'जा' (ज्+आ) पद है, उसके स्थान पर स्वर व्यंजन के प्रतिस्थापन के रूप में सामान्य भूतकाल तथा विधान का अर्थबोधक 'गया' (ग्+अ+य्+आ)=(वह गया।) पद मिलता है।

इस प्रकार नये अर्थ का बोध कराने वाला ध्वनि प्रतिस्थापन रूपी सम्बन्ध तत्व भी होता है।

5. ध्वनि द्विरावृत्ति रूपी सम्बन्धतत्व—पद की कुछ ध्वनियों की द्विरावृत्ति करना भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम करना है। जैसे 'भलापन भला होता है।' इस वाक्य में 'भलापन' भाववाचक संज्ञा पद की 'भला' इन ध्वनियों की द्विरावृत्ति करने से 'भला' यह कर्तृपूरक विधेय विशेषण बोधक पद बन गया है। लंका की एक बोली में 'चाहना' के अर्थ में 'manao' क्रिया का प्रयोग होता है और इस पद में से 'nao' ध्वनियों की द्विरावृत्ति कर '(वे) चाहते हैं' के अर्थ में 'manaonao' पद का प्रयोग किया जाता है।

6. ध्वनि निष्कासन रूपी सम्बन्धतत्व—पद में से किसी ध्वनि या कुछ ध्वनियों को घटाकर या निकाल कर भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम किया जाता है। जैसे 'नन्दन' (आनन्ददायक) इस विशेषण अर्थबोधक पद में से अन्तिम 'न्+अ' ध्वनियों को घटाकर अर्थात् निकालकर 'नन्द' संज्ञा पद का प्रयोग किया जाता है।

7. पूर्व प्रत्यय (पूर्व सर्ग/आदि सर्ग/उप सर्ग) रूपी सम्बन्धतत्व—पूर्व प्रत्यय के योग से भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम होता रहता है। जैसे शरीर दृश्य, आत्मा अदृश्य, मान सुखद, अपमान दुःखद, जय आनन्दप्रद और पराजय वेदनाप्रद है। इस वाक्य में 'अ' पूर्व प्रत्यय के योग से 'दृश्य' का विरोधार्थक 'अदृश्य' पद बना है, 'अप' पूर्व प्रत्यय के योग से 'मान' का विरोधार्थक 'अपमान' पद बना है और 'परा' पूर्व प्रत्यय के योग से विरोधार्थक 'पराजय' पद बना है। इस प्रकार पूर्व प्रत्यय सम्बन्धतत्व का काम करता है।

8. मध्य प्रत्यय (मध्यसर्ग) रूपी सम्बन्धतत्व—मध्य प्रत्यय के योग से भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम होता है। हिन्दी में 'वा' मध्य प्रत्यय के योग से

क्रिया का द्वितीय प्रेरणार्थक रूप (पद) बन जाता है, जैसे करना→कर+वा+ना= करवाना, पढ़ना→पढ़+वा+ना=पढ़वाना आदि। मुंडा भाषा में 'प' बहुवचन मध्य प्रत्यय के योग से एकवचन 'मंझि' (मुखिया) पद बहुवचन 'मंपझि' (मुखिये) पद बन जाता है।

9. पर प्रत्यय (परसर्ग/अन्तसर्ग/विभक्ति) रूपी सम्बन्धतत्व—पर प्रत्यय के योग से भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम हो जाता है। "राम ने रावण को बाण से मारा।" इस वाक्य में 'ने' पर प्रत्यय के योग से अर्थात् कर्ताकारक विभक्ति 'ने' के योग से 'राम ने' कर्तावाचक पद बन गया है। 'को' पर प्रत्यय अर्थात् कर्म कारक विभक्ति के योग से 'रावण को' कर्मवाचक पद बन गया है। 'से' पर प्रत्यय अर्थात् करणकारक विभक्ति के योग से 'बाण से' साधनवाचक क्रियाविशेषण पद बन गया है। पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, सामान्य भूतकालसूचक 'आ' पर प्रत्यय के योग से 'मारा' सामान्य भूतकालसूचक क्रिया पद बन गया है।

"वह बहुत सुन्दर है, इसलिए उसकी सुन्दरता की चर्चा है।" इस वाक्य में 'ता' परप्रत्यय के योग से 'सुन्दर' विशेषण से 'सुन्दरता' यह भाववाचक संज्ञा पद बन गया है।

भिन्न-भिन्न पर प्रत्ययों के योग से अनेक भिन्नार्थक पद बन जाते हैं, जो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया इन शब्दों से बने रहते हैं।

10. ध्वनिगुण रूपी सम्बन्धतत्व—बलाघात और सुर ये ध्वनि गुण भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम करते हैं। वाक्य में शब्द (पद) 'बलाघात' नये अर्थ-बोधक सम्बन्धतत्व का काम करता है। जैसे "राम ने रावण को बाण से मारा।" वाक्य में 'राम ने' पद पर बलाघात होने पर 'राम ने ही मारने की क्रिया की है, अन्य किसी ने नहीं' अर्थबोध होता है, 'रावण को' पद पर बलाघात होने पर 'रावण को ही मारा गया है, अन्य किसी को नहीं' अर्थबोध होता है और 'बाण से' पद पर बलाघात होने पर 'बाण से ही मारा गया है, अन्य किसी से नहीं' अर्थबोध होता है।

वाक्य में सुर यह ध्वनिगुण भी नये अर्थबोधक सम्बन्धतत्व का काम करता है। 'राम गया' इस वाक्य का उच्चारण एक ही प्रकार के साधारण सुर में किया गया तो यह 'विधानार्थक वाक्य' बन जाता है। यदि इसी वाक्य के उच्चारण में आरम्भ से अन्त तक क्रमानुसार सुर को बढ़ाया गया तो यह 'प्रश्नार्थक वाक्य' बन जाता है। यदि इसी वाक्य के उच्चारण में आरम्भ में सुर को कुछ बढ़ाया और क्रमानुसार उसे कर दिया गया तो यही वाक्य विस्मयार्थक वाक्य' बन जाता है।

इस प्रकार वाक्य में सम्बन्धतत्व अपने विभिन्न प्रकारों के साथ शब्दों को ऐसे ऐसे पद (रूप) बना रखता है, जो नया-नया अर्थ व्यक्त करते हुए पूरे वाक्य का अविभाज्य घटक बनकर रहते हैं।

4. अर्थतत्व के साथ सम्बन्धतत्व के कार्य

अर्थतत्व अर्थात् शब्द के ऐसे चार प्रकार हैं जिनके साथ सम्बन्धतत्व के महत्व-पूर्ण कार्य होते हैं। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया इन चार प्रकार के अर्थतत्वों (शब्दों) के साथ सम्बन्धतत्व के ऐसे कार्य होते हैं जिनके परिणामस्वरूप ये चारों अर्थतत्व (शब्द) ऐसे रूप धारण कर लेते हैं, जिनका वाक्य में प्रयोग होने पर 'पद' कहलाये जाते हैं। लिंग, वचन, पुरुष, काल आदि को आधार बनाकर सम्बन्धतत्व अर्थतत्व को विभिन्न रूप प्रदान करने के कार्य करता है। इससे भी ज्ञात होता है कि अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का अभिन्न सम्बन्ध है।

1. लिंग सम्बन्धी कार्य—'लिंग' शब्द का अर्थ ऐसा चिन्ह है, जिससे किसी पदार्थ को पहचाना जा सके। एक 'प्राकृतिक' या 'लौकिक' लिंग होता है और दूसरा 'व्याकरणिक' लिंग होता है। प्राकृतिक अर्थात् लौकिक लिंग के अनुसार 'पुरुष, पिता, बैल' आदि शब्दों को पुल्लिग माना जाता है और 'स्त्री, माता, गाय' आदि शब्दों को स्त्रीलिंग शब्द माना जाता है। इसके विरुद्ध 'व्याकरणिक लिंग' सम्बन्धतत्व के आधार पर प्रचलित हो जाता है। बहुधा प्राणियों का पुल्लिग पहले से प्रचलित रहता है और फिर सम्बन्धतत्व के योग से पुल्लिग से स्त्रीलिंग अस्तित्व में आ जाता है।

(1) संज्ञा के साथ सम्बन्धतत्व का लिंग सम्बन्धी कार्य—हिन्दी भाषा में पुल्लिग संज्ञा से स्त्रीलिंग संज्ञा बनाने के लिए सम्बन्धतत्व दो पद्धतियों से कार्य करता है। उनमें से एक पद्धति के अनुसार पुल्लिग संज्ञा के साथ पर प्रत्यय के रूप में स्त्रीलिंग सूचक सम्बन्धतत्व का योग हो जाता है और स्त्रीलिंग संज्ञा बन जाती है। जैसे—

पुल्लिग संज्ञा	पर प्रत्यय के रूप में स्त्रीलिंग सूचक सम्बन्धतत्व		स्त्रीलिंग संज्ञा
देव/लड़का/घोड़ा/मुर्गा	+	ई	=देवी/लड़की/घोड़ी/मुर्गी
माली/बाघ/साँप	+	इन	=मालिन/बाघिन/साँपिन
हंस/हाथी/मानी	+	इनी	=हंसिनी/हथिनी/मानिनी
मोर/सिंह/शेर	+	नी	=मोरनी/सिंहनी/शेरनी
देवर/नौकर/भव	+	आती	=देवरानी/नौकरानी/भवानी
पंडित/बनिया	+	आइन	=पंडिताइन/बनियाइन
प्रिय/छात्र/कांत	+	आ	=प्रिया/छात्रा/कांता

दूसरी पद्धति के अनुसार पुल्लिग या स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ पूर्व प्रत्यय के रूप में पुल्लिगसूचक सम्बन्धतत्व रूपी स्वतन्त्र शब्द या स्त्रीलिंगसूचक सम्बन्धतत्व रूपी स्वतन्त्र शब्द प्रयोग में लाया जाता है। जैसे—

पुल्लिग सम्बन्धतत्व	पुल्लिग शब्द	स्त्रीलिंग सम्बन्धतत्व	स्त्रीलिंग शब्द
नर	चिड़िया	मादा	चिड़िया
नर	कोयल	मादा	कोयल
नर	लोमड़ी	मादा	लोमड़ी
नर	चीता	मादा	चीता
नर	भेड़िया	मादा	भेड़िया
He	Goat	She	Goat

(2) सर्वनाम के साथ सम्बन्धतत्व का लिंग सम्बन्धी कार्य—हिन्दी में सर्वनाम का पुल्लिग या स्त्रीलिंग सूचित करने के लिए प्रत्ययों तथा स्वतन्त्र शब्दों के रूप में कोई सम्बन्धतत्व नहीं है। यहाँ तो वाक्य में प्रयुक्त क्रिया पद का विशिष्ट रूप ही पुल्लिगसूचक सम्बन्धतत्व या स्त्रीलिंगसूचक सम्बन्धतत्व का कार्य करता है जिससे वाक्य में प्रयुक्त सर्वनाम के लिंग का अर्थबोध हो जाता है। जैसे 'मैं/तू/वह चला।' इस वाक्य में 'चला' इस क्रिया पद के आकारान्त रूप से 'मैं/तू/वह' सर्वनाम के पुल्लिग का अर्थबोध होता है।

'मैं/तू/वह चली।' इस वाक्य में 'चली' इस क्रिया पद के ईकारान्त रूप से 'मैं/तू/वह' सर्वनाम के स्त्रीलिंग का अर्थबोध होता है।

(3) विशेषण के साथ सम्बन्धतत्व का लिंग सम्बन्धी कार्य—हिन्दी में केवल आकारान्त पुल्लिग विशेषण से स्त्रीलिंग विशेषण बनाने के लिए 'ई' पर प्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व का प्रयोग होता है। जैसे—

अच्छा (ग्रन्थ)+ई=अच्छी (पुस्तक)

भला (पुरुष)+ई=भली (स्त्री)

(4) क्रिया के साथ सम्बन्धतत्व का लिंग सम्बन्धी कार्य—हिन्दी में क्रिया को पुल्लिग बनाने का कार्य 'आ' पर प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व करता है और स्त्रीलिंग रूप प्रदान करने का कार्य 'ई' पर प्रत्ययरूपी सम्बन्धतत्व करता है। जैसे—

पुल्लिग क्रिया रूप=बालक चलता है (चलत्+आ) बालक चला (चल्+आ), बालक चलेगा (चलेग्+आ)।

स्त्रीलिंग क्रिया रूप=बालिका चलती है (चलत्+ई), बालिका चली (चल्+ई), बालिका चलेगी (चलेग्+ई)।

2. वचन सम्बन्धी कार्य—हिन्दी में शब्द के एकवचन रूप के साथ पर प्रत्यय के रूप में बहुवचनसूचक सम्बन्धतत्व के योग से शब्द का बहुवचन रूप धारण करने का कार्य हो जाता है।

(1) संज्ञा के साथ सम्बन्धतत्व का वचनसम्बन्धी कार्य—हिन्दी पुल्लिग संज्ञाओं में से केवल एकवचन आकारान्त पुल्लिग संज्ञा के साथ अन्तिम 'आ' के स्थान पर 'ए' पर प्रत्यय पुल्लिग बहुवचनसूचक सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा पुल्लिग

बहुवचन बन जाती है। जैसे घोड़ा+ए=घोड़े, बकरा+ए=बकरे, लड़का+ए=लड़के।

हिन्दी की सभी एकवचन स्त्रीलिंग संज्ञाओं के साथ 'एँ' या 'इयाँ' पर प्रत्यय स्त्रीलिंग बहुवचनसूचक सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा स्त्रीलिंग बहुवचन बन जाती है। जैसे गाय/बात/पाठशाला/धेनु/बहू/गौ+ए = गायें/बातें/पाठशालाएँ/धेनुएँ/बहुएँ/गौएँ तिथि/रीति/लड़की/नदी+इयाँ=तिथियाँ/रीतियाँ/लड़कियाँ/नदियाँ।

हिन्दी में पुल्लिग संज्ञा तथा स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ 'ओं' पर प्रत्यय रूपी बहुवचन सम्बन्धतत्व के योग से विभक्ति सहित बहुवचन संज्ञा रूप बन जाता है। जैसे पुल्लिग संज्ञा→बैल/घोड़ा/मुनि/माली/साधु+ओ=बैलों ने/घोड़ों ने/मुनियों ने/मालियों ने/साधुओं ने। स्त्रीलिंग संज्ञा→बात/बाला/नदी/गौ+ओं=बातों ने/बालाओं ने/नदियों में/गौओं को।

(2) सर्वनाम के साथ सम्बन्धतत्व का वचन सम्बन्धी कार्य—सर्वनाम का एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए कोई सम्बन्धतत्व नहीं है, क्योंकि हिन्दी में एकवचन सर्वनाम 'मैं, तू, वह' के बहुवचन के रूप में क्रमानुसार 'हम, तुम, वे' को स्वीकार किया गया है।

(3) विशेषण के साथ सम्बन्धतत्व का वचनसम्बन्धी कार्य—हिन्दी में केवल आकारान्त विशेषण के अन्तिम 'आ' के स्थान पर 'ए' पर प्रत्यय रूपी पुल्लिग बहुवचन सम्बन्धतत्व के योग से विशेषण बहुवचनसूचक बन जाता है। जैसे अच्छा (लड़का)+ए=अच्छे (लड़के), भला (मनुष्य)+ए=भले (लोग)।

(4) क्रिया के साथ सम्बन्धतत्व का वचनसम्बन्धी कार्य—हिन्दी में पुल्लिग एकवचन क्रिया 'आ' परप्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'आ'कारान्त' बनी रहती है और स्त्रीलिंग एकवचन क्रिया 'ई' परप्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'ई'कारान्त' बनी रहती है। जैसे—

पुल्लिग एकवचन क्रिया=मैं/तू/वह चलता (चलत्+आ)। मैं/तू/वह चला (चल्+आ)/मैं चलूँगा (चलूँग्+आ)/तू/वह चलेगा (चलेग्+आ)।

स्त्रीलिंग एकवचन क्रिया=मैं/तू/वह चलती (चलत्+ई)। मैं/तू/वह चली (चल्+ई)। मैं चलूँगी (चलूँग्+ई)। तू/वह चलेगी (चलेग्+ई)।

हिन्दी में पुल्लिग बहुवचन क्रिया 'ए' परप्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'ए'करान्त' बनी रहती है और स्त्रीलिंग बहुवचन क्रिया 'ईं' परप्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'ईं'करान्त' बनी रहती है। जैसे—

पुल्लिग बहुवचन क्रिया=हम/तुम/वे चलते (चलत्+ए)। हम/तुम/वे चले (चल+ए)। हम/वे चलेंगे (चलेंग्+ए)। तुम चलोगे (चलोग्+ए)।

स्त्रीलिंग बहुवचन क्रिया—हम/तुम/वे चलतीं (चलत्+ईं)। हम/तुम/वे चलीं (चल्—ईं)। (अपवाद—स्त्रीलिंग बहुवचन भविष्यकाल सूचक क्रिया केवल 'ईं'कारान्त' ही बनी रहती है, जैसे हम/वे चलेंगी। तुम चलोगी।)

3. **पुरुष सम्बन्धी कार्य**—हिन्दी में 'संज्ञा' का पुरुषसूचक कोई सम्बन्ध तत्व नहीं है। फिर भी सभी संज्ञाएँ अन्य पुरुष मानी गयी हैं।

'सर्वनाम' का भी पुरुषसूचक कोई सम्बन्धतत्व नहीं है, फिर भी जो बोलता है उसे 'उत्तम पुरुष' मानकर उसके एकवचन के लिए 'मैं' (सर्वनाम) को स्वीकार किया गया है। जो सुनता है उसे 'मध्यम पुरुष' मानकर उसके एकवचन के लिए 'तू' (सर्वनाम) का स्वीकार किया गया है। जो तीसरा वहाँ उपस्थित या अनुपस्थित होता है, उसे 'अन्य पुरुष' मानकर उसके एकवचन के लिए 'वह' (सर्वनाम) को स्वीकार किया गया है।

'विशेषण' का तो पुरुषसूचक किसी भी प्रकार का सम्बन्धतत्व नहीं है। वर्तमान तथा भूतकालसूचक 'क्रिया' का पुरुषसूचक सम्बन्धतत्व 'आ, ए, ई, ईं' इन प्रत्ययों के रूप में मिलता है। जैसे उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष सम्बन्धतत्व 'आ' के योग से पुल्लिग, एकवचन क्रिया 'आ'कारान्त बनी रहती है—(मैं/तू/वह) चलता (वर्तमान), चला (भूतकाल)।

उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष सम्बन्धतत्व 'ए' के योग से पुल्लिग, बहुवचन क्रिया 'ए'कारान्त बनी रहती है—(हम/तुम/वे) चलते (वर्तमान काल), चले (भूतकाल)।

उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष, एकवचन सम्बन्धतत्व 'ई' और बहुवचन सम्बन्धतत्व 'ईं' के योग से स्त्रीलिंग क्रिया 'ई'कारान्त या 'ईं'कारान्त बनी रहती है (मैं/तू/वह) चलती (वर्तमानकाल), (मैं/तू/वह) चली (भूतकाल), (हम/तुम/वे) चलतीं (वर्तमानकाल), चलीं (भूतकाल)।

भविष्यकालसूचक 'क्रिया' का पुरुषसूचक सम्बन्धतत्व 'ऊँ, ए, एँ, ओ' इन प्रत्ययों के रूप में मिलता है। जैसे उत्तम पुरुष, एकवचन सम्बन्धतत्व 'ऊँ' के योग से पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग क्रिया का धातु 'ऊँ'कारान्त बनता है—(मैं) चलूँगा/चलूँगी (चल्+ऊँ+ग्+आ/ई)।

मध्यम तथा अन्य पुरुष, एकवचन सम्बन्धतत्व 'ए' के योग से पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग क्रिया का धातु 'ए'कारान्त बनता है—(तू/वह) चलेगा/चलेगी (चल्+ए+ग्+आ/ई)।

उत्तम तथा अन्य पुरुष, बहुवचन सम्बन्धतत्व 'एँ' के योग से पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग क्रिया का धातु 'एँ'कारान्त बनता है—(हम/वे) चलेंगे/चलेंगी (चल्+एँ+ग्+ए/ई)।

मध्यम पुरुष, बहुवचन सम्बन्धतत्व 'ओ' के योग से पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग क्रिया का धातु 'ओ'कारान्त बनता है—(तुम) चलोगे/चलोगी (चल्+ओ+ग्+ए/ई)।

4. काल सम्बन्धी कार्य—जो काल चल रहा होता है उसे हिन्दी में 'वर्तमान काल' कहा जाता है। इसी वर्तमान काल का अर्थबोध कराने के लिए हिन्दी में क्रिया के मूल रूप अर्थात् धातु के साथ वर्तमानकालसूचक 'त्' सम्बन्धतत्व का योग हो जाता है। जैसे 'मैं चलता हूँ।' 'तू/वह चलता है।' 'हम/वे चलते हैं।' 'तुम चलते हो।'=चल्+त्=चलत्।

जो काल बीता हुआ होता है, उसे हिन्दी में 'भूतकाल' कहा जाता है। इसी भूतकाल का अर्थबोध कराने के लिए हिन्दी में क्रिया के मूल रूप अर्थात् धातु के साथ 'आ' या 'ई' या 'ई' या 'ए' भूतकालसूचक सम्बन्धतत्व का योग हो जाता है। जैसे 'मैं/तू/वह चला (चल्+आ)।' 'मैं/तू/वह चली (चल्+ई)'। 'हम/तुम/वे चलीं (चल्+ईं)'। 'हम/तुम/वे चले (चल्+ए)'।

जो काल आने वाला होता है, उसे हिन्दी में 'भविष्य (भविष्यत्) काल' कहा जाता है। इसी भविष्यकाल का अर्थबोध कराने के लिए हिन्दी में क्रिया के मूल रूप अर्थात् धातु के साथ पुरुषसूचक परप्रत्यय का योग होने के बाद उसके साथ सामान्य भविष्यकालसूचक 'ग्' सम्बन्धतत्व का योग हो जाता है। जैसे—
'मैं चलूँगा' [चल्+ऊँ (उत्तम पुरुषसूचक प्रत्यय)+ग+आ (पुल्लिग, एकवचन प्रत्यय)] 'तू/वह चलेगा' [चल्+ए (मध्यम/अन्य पुरुष प्रत्यय)+ग+आ (पुल्लिग, एकवचन प्रत्यय)] 'मैं चलूँगी' [चल्+ऊँ (उत्तम पुरुष प्रत्यय)+ग्+ई (स्त्रीलिंग, एकवचन प्रत्यय)] 'तू/वह चलेगी' [चल्+ए (मध्यम/अन्य पुरुष प्रत्यय)+ग्+ई (स्त्रीलिंग, एकवचन प्रत्यय)] 'हम/वे चलेंगे' [चल्+एँ (उत्तम/अन्य पुरुष प्रत्यय)+ग्+ए (पुल्लिग, बहुवचन प्रत्यय)] 'तुम चलोगे' [चल्+ओ (मध्यम पुरुष प्रत्यय)+ग्+ए (पुल्लिग, बहुवचन प्रत्यय)] 'हम/वे चलेंगी' [चल्+एँ (उत्तम/अन्य पुरुष प्रत्यय)+ग्+ई (स्त्रीलिंग, बहुवचन प्रत्यय)] 'तुम चलोगी' [चल्+ओ (मध्यम पुरुष प्रत्यय)+ग्+ई (स्त्रीलिंग, बहुवचन प्रत्यय)]

5. कारक सम्बन्धी कार्य—वाक्य में क्रिया के साथ या किसी अन्य शब्द के साथ संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण का सम्बन्ध सूचित करने के लिए संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण को जो रूप धारण करना पड़ता है, उसे 'कारक' कहते हैं और प्रत्येक कारक की पृथकता सूचित करने के लिए प्रत्येक कारक का अपना-अपना स्वतन्त्र चिन्ह है, जिसे विभक्ति (या विभक्ति प्रत्यय) कहा जाता है। वास्तव में ये कारक चिन्ह अर्थात् विभक्तियाँ अर्थात् विभक्ति प्रत्यय ही ऐसा सम्बन्धतत्व है, जिसके योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया विशेषण आदि के रूप में क्रिया के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखते हैं।

वाक्य में क्रिया के साथ 'कर्ताकारक' बनकर रहने के लिए 0 (शून्य) सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण 'अप्रत्यय' कर्ता अर्थात् प्रधान उद्देश्य बनता है और 'ने' विभक्तिरूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'सप्रत्यय' कर्ता अर्थात् अप्रधान उद्देश्य बनता है। जैसे—

अप्रत्ययकर्ता=प्रधान उद्देश्य→राम/लड़का/वह/दीन रोटी खाता है/खायेगा।

सप्रत्ययकर्ता=अप्रधान उद्देश्य→राम ने/लड़के ने/उसने/दीन ने रोटी खायी।

वाक्य में क्रिया के साथ 'कर्मकारक' बनकर रहने के लिए 0 (शून्य) या 'को' विभक्ति रूपी सम्बन्धतत्व के योग से 'संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण अनिश्चित अर्थसूचक अप्रत्यय कर्म या निश्चित अर्थबोधक सप्रत्यय कर्म बनता है। जैसे—

अप्रत्यय कर्म→मैंने राम/लड़का/वह/दीन देखा।

सप्रत्यय कर्म→मैंने राम को/लड़के को/उसको/दीन को देखा।

वाक्य में क्रिया के साथ 'करणकारक' बनकर रहने के लिए 'से' विभक्ति रूपी सम्बन्धतत्व के योग से साधन/कारण/रीतिसूचक क्रिया विशेषण संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण को बनना पड़ता है। जैसे कारणवाचक क्रिया विशेषण→मुझे राम से/लड़के से/उससे दीन से लाभ हुआ।

वाक्य में क्रिया जिसके लिए की जाती है, इसे सूचित करने के लिए अर्थात् द्विकर्म क्रिया के साथ (गौण कर्म के रूप में) 'सम्प्रदानकारक' बनकर रहने के लिए 'को' विभक्ति रूपी सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण को 'सप्रत्यय गौण कर्म' बनना पड़ता है। जैसे मैंने राम को/लड़के को/उसको/दीन को पत्र लिखा।

वाक्य में क्रिया के साथ 'अपादानकारक' बनकर रहने के लिए 'से' विभक्ति रूपी सम्बन्ध तत्व के योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण क्रिया के निकलने का अर्थबोधक स्थानवाचक क्रिया विशेषण बनता है। जैसे राम से/लड़के से/उससे/दीन से पत्र आया।

वाक्य में क्रिया के साथ 'अधिकरणकारक' बनकर रहने के लिए 'में' या 'पर' विभक्ति रूपी सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण स्थानवाचक क्रिया विशेषण बनता है। जैसे राम में/लड़के में/उसमें/दीन में कई गुण हैं। राम पर/लड़के पर/उस पर/दीन पर मेरा विश्वास है।

वाक्य में क्रिया के साथ 'सम्बोधनकारक' बनकर रहने के लिए 'हे' जैसे सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण चेताने या पुकारने का अर्थबोधक बनता है। जैसे हे राम/हे लड़के/हे तुम/हे दीन, मेरी मदद करो!

वाक्य में 'सम्बन्धकारक' बनकर रहने के लिए 'का, की, के' विभक्ति रूपी सम्बन्धतत्व के योग से संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण अन्य पद के साथ सम्बन्ध का अर्थ-बोधक बनता है। जैसे राम का/लड़के का/उसका/दीन का पत्र आया है। राम की/लड़के की/उसकी/दीन की पुस्तक मिली। मैंने राम के/लड़के के/उसके/दीन के भाई को देखा।

स्पष्ट है कि विभक्ति प्रत्यय रूपी सम्बन्धतत्व से कारक सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य होता है, जिससे अर्थबोधक वाक्य रचना हो जाती है।

विशिष्ट अर्थबोधक वाक्य रचना के लिए लिंग, वचन, पुरुष, काल, कारक इन सभी से सम्बन्धित सम्बन्धतत्व, अर्थतत्व के साथ महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। साथ ही साथ संज्ञा से भाववाचक संज्ञा (मनुष्य→मनुष्यता, मित्र→मित्रता) बनाने में विशेषण से भाववाचक संज्ञा (सुन्दर→सुन्दरता) बनाने में क्रिया से भाववाचक संज्ञा (पढ़→पढ़ाई, बह→बहाव, बन्→बनावट) बनाने में, संज्ञा से क्रिया (हाथ→हथियाना) बनाने में, संज्ञा से विशेषण (प्यार→प्यारा, देश→देशी) बनाने में, क्रिया से विशेषण (चल्→चलाऊ, टिक्→टिकाऊ) बनाने में और सर्वनाम से क्रियाविशेषण (यह→ऐसा, वह→वैसा) बनाने में सम्बन्धतत्व अर्थतत्व के साथ महत्व का कार्य करता है।

5. पद परिवर्तन के कारण

भाषा के वाक्य में प्रयुक्त होने वाले पदों में कुछ कारणों से परिवर्तन होता है। इसलिए 'पद विज्ञान' में पद परिवर्तन के कारणों का भी विचार किया जाता है। पद परिवर्तन के कारणों को 'पद विकास के कारण' या 'रूप परिवर्तन के कारण' भी कहा जाता है।

1. सरलता के कारण पद परिवर्तन—हिन्दी में क्रिया का सामान्य भूतकाल का पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष पद (रूप) धातु के साथ 'आ' सम्बन्धतत्व के योग से बनता है, जैसे पढ़+आ=पढ़ा, लिख्+आ=लिखा। ठीक इसी तरह 'करना' क्रिया का रूप 'करा' (कर्+आ) प्रचलित रहना चाहिए। लेकिन 'करा' शुद्ध रूप के बदले 'किया' अशुद्ध रूप प्रचलित है। अब सरलता के आग्रह के कारण 'किया' रूप के स्थान पर 'करा' रूप अधिक प्रचलित हो रहा। सरलता के आग्रह के कारण ही 'मुझको, हमको, तुझको, तुमको' इन प्रचलित पदों के स्थान पर क्रमानुसार 'मेरे को, हमारे को, तेरे को, तुम्हारे को' नये पद (रूप) प्रचलित हो रहे हैं। ठीक इसी तरह 'मुझसे' पद के स्थान पर 'मेरे से' पद प्रचलित हो रहा है। स्पष्ट है कि सरलता के कारण पद परिवर्तन हो जाता है।

2. सादृश्य के कारण पद परिवर्तन—हिन्दी में पूर्णांकबोधक विशेषण के साथ 'ओं' प्रत्यय के योग से समुदायवाचक विशेषण बनता है, जैसे—"मैंने तीनों पुस्तकें पढ़ीं।" यहाँ 'तीनों' यह समुदायवाचक विशेषण पद 'तीन' के साथ 'ओं' के योग से बना है। इसी 'तीनों' पद के साथ सादृश्य रखने वाला 'दोनों' यह नया पद प्रचलित हुआ है। वास्तव में 'दोनों' इस नये पद में 'तीन' के सादृश्य पर 'दो' इस मूल रूप को 'दोन' यह नया रूप दिया गया है और बाद में उसके साथ 'ओं' प्रत्यय का योग कर दिया गया है। इसलिए 'दोनों' यह नया पद (रूप) प्रचलित हो गया।

'पाँच' शब्द में अनुस्वार युक्त 'पाँ' होने के कारण 'पैंतीस' (35 के लिए) पद प्रचलित है, इसी के सादृश्य पर 'सात' शब्द में 'सा' अनुस्वार रहित होने पर भी 'सैंतीस' (37 के लिए) अनुस्वारयुक्त पद प्रचलित हुआ है।

हिन्दी में प्रचलित 'रूह, उम्र, बू, फतह, ताकत, किताब' इन अरबी-फारसी के स्त्रीलिंग शब्दों के सादृश्य पर 'आत्मा, आयु, गंध, जय, सामर्थ्य, पुस्तक' ये पुल्लिग तत्सम शब्द भी स्त्रीलिंग में प्रचलित हो गये। इस प्रकार सादृश्य के कारण पद परिवर्तन हो जाता है।

3. स्पष्टता के कारण पद परिवर्तन—हिन्दी की अवधी बोली में 'घोड़ा' इसी पद का प्रयोग एकवचन और बहुवचन में किया जाता था, जिससे बहुवचन के बारे में अस्पष्टता आ जाती थी। इसी अस्पष्टता के स्थान पर स्पष्टता लाने के लिए 'घोड़ा' (घोड्) इस पद के साथ बहुवचनसूचक 'वन' या 'अन' प्रत्यय का योग कर दिया जाने लगा, जिससे 'घोड़वन' या 'घोड़न' बहुवचनसूचक नये पद प्रचलित हो गये। अवधी तथा ब्रज इन हिन्दी की बोलियों में एकवचन और बहुवचन रूप सम्बन्धी अस्पष्टता तथा एकरूपता को मिटाने के लिए स्पष्ट बहुवचनसूचक 'अन' प्रत्यय स्वीकार कर 'नैन' से 'नैनन' या 'लरिका' (लड़का) से 'लरिकन' बहुवचनसूचक नये पद प्रचलित किये गये। इस प्रकार स्पष्टता के कारण तथा अनेकरूपता के कारण पद परिवर्तन हो जाता है।

4. अज्ञान के कारण पद परिवर्तन—हिन्दी में अज्ञान के कारण ही 'करा' इस शुद्ध पद के स्थान पर 'किया' अथवा 'करिए' इस शुद्ध पद के स्थान पर 'कीजिए' अशुद्ध पद का प्रयोग किया जाता है और उसे ही शुद्ध पद माना जाता है। छोटे बच्चे और गाँव में रहने वाले लोग अज्ञान के कारण पद परिवर्तन करते रहते हैं। इस कारण ही वे 'दयालुता, कृपणता, कुटिलता, कोमलता, पांडित्य' इन भाववाचक संज्ञा रूपों को नया रूप प्रदान करते हुए कहते हैं—'दयालुताई, कृपणताई, कुटिलताई, कोमलताई, पांडित्यता।' फारसी में 'दर' पूर्व प्रत्यय का अर्थ 'में' है, इस कारण ही फारसी में 'दर असल', 'दर हकीकत' ये पद प्रचलित हैं, लेकिन फारसी भाषा न जानने वाला अपने अज्ञान के कारण 'दर असल में', 'दर हकीकत में' कहकर नये रूप (पद) का प्रयोग करता है। इसी कारण ही 'फिजूल' के स्थान पर यों ही 'बेफिजूल' नये पद का प्रयोग हो रहा है। इस प्रकार अज्ञान के कारण भी पद परिवर्तन हो जाता है।

5. बल के कारण पद परिवर्तन—पद के अर्थ पर बल पड़ने पर अर्थात् उस पर बलाघात होने पर उस पद में कुछ परिवर्तन हो जाता है। जैसे हिन्दी में 'श्रेष्ठता का भाव' व्यक्त करने के लिए 'श्रेष्ठ' पद का प्रयोग किया जाता है, लेकिन जब वक्ता 'श्रेष्ठता के भाव' पर अधिक बल देता है तब वह उस भाव की अधिक मात्रा व्यक्त करने के लिए 'श्रेष्ठतम' या 'सर्वश्रेष्ठ' नये पद का प्रयोग करता है, जिससे पद परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी में 'अनेकता का भाव' व्यक्त करने के लिए 'अनेक' पद का प्रयोग होता है लेकिन जब भी 'अनेकता के भाव' पर अधिक बल दिया

जाता है, तब 'अनेकों' इस नये पद का प्रयोग किया जाता है, जिससे पद परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार बल के कारण भी पद में परिवर्तन हो जाता है।

6. नवीनता के कारण पद परिवर्तन—हिन्दी में उत्तम पुरुष, एकवचन में 'मैं' सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है और उत्तम पुरुष, बहुवचन में 'हम' सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। बोलने वाला या लिखने वाला प्रायः अपने लिए 'मैं' सर्वनाम का ही प्रयोग करता है, लेकिन कभी-कभी वह नवीनता के कारण अपने लिए 'मैं' के स्थान पर 'हम' सर्वनाम का प्रयोग करता है और उसके बहुवचन के अर्थ में 'हम लोग' इस नये पद का प्रयोग करता है। हिन्दी में 'प्रभावशाली' इस विशेषण पद का अधिक प्रयोग होता है, परन्तु कभी नवीनता के कारण 'प्रभावी' इस नये पद का प्रयोग किया जाता है। 'स्वीकार किया' इस संयुक्त क्रिया पद के स्थान पर नवीनता के कारण 'स्वीकारा' इस असंयुक्त क्रिया पद का नया प्रयोग होता है। इस प्रकार नवीनता के कारण भी पद परिवर्तन हो जाता है।

7. समुचित भावाभिव्यक्ति की आवश्यकता के कारण पद परिवर्तन—'चार मैंओं के नीचे दबी यह मेरी लाश।' इस डॉ० भोलानाथ तिवारी की काव्यपंक्ति में समुचित भावाभिव्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'मैं' का बहुवचनसूचक 'मैंओं के' यह नया पद प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार साहित्य की भाषा में इसी तरह पद परिवर्तन होता रहता है।

स्पष्ट है कि कुछ कारणों से 'पद परिवर्तन' अर्थात् 'रूप परिवर्तन' होता रहता है।

6. पद परिवर्तन की दिशाएँ

पद विज्ञान में पद परिवर्तन की दिशाएँ अर्थात् रूप परिवर्तन की दिशाएँ भी स्पष्ट की जाती हैं। पद परिवर्तन की दिशाएँ इस प्रकार होती हैं—

1. एकरूपता की दिशा में पद परिवर्तन—भाषा में वाक्य के भीतर प्रयोग करने की दृष्टि से जब एक ही प्रकार के अनेक पद प्रचलित हो जाते हैं, तब किसी नियम के आधार पर उन अनेक पदों में एकरूपता लायी जाती है और एकरूपता की दिशा में पद में परिवर्तन या विकास हो जाता है। जैसे हिन्दी में एकरूपता की दिशा के अनुसार ही 'किया' पद के स्थान पर 'करा' पद और 'कीजिए' पद के स्थान पर 'करिए' पद का प्रयोग किया जा रहा है। हिन्दी में 'चलना, लिखना, पढ़ना' इन क्रियाओं के 'चला/चलिए', 'लिखा/लिखिए', 'पढ़ा/पढ़िए' ये एक से रूप प्रचलित हैं, लेकिन 'करना' क्रिया के 'करा/करिए' इन सही रूपों के बदले 'किया/कीजिए' ये अशुद्ध रूप प्रचलित रहे, जिससे असुविधाजनक अनेकरूपता बनी रह गयी। इस प्रकार की असुविधाजनक अनेकरूपता के स्थान पर सुविधाजनक एकरूपता लाने के लिए अब 'करा/करिए' इन शुद्ध रूपों का प्रयोग हो रहा है।

2. अनेकरूपता की दिशा में पद परिवर्तन— जब वाक्य में प्रयोग करने की दृष्टि से पदों में असुविधाजन एकरूपता प्रचलित रहती है, तब सुविधा के लिए उस एकरूपता के स्थान पर अनेकरूपता को प्रचलित किया जाता है जिससे समुचित अर्थबोध होने के लिए स्पष्टता आ जाती है। हिन्दी की अवधी बोली में 'घोड़ा' इस पद के एकवचन और बहुवचन में ऐसी एकरूपता प्रचलित थी जिससे अर्थबोध में अस्पष्टता आ जाती थी। जैसे—

'घोड़ा दौड़त अहै।' (एकवचन पद)/'घोड़ा दौड़त अहैं।' (बहुवचन पद)

'घोड़ा' पद से सम्बन्धित अस्पष्ट अर्थबोधक वचन सम्बन्धी एकरूपता को हटाने के लिए और स्पष्ट अर्थबोधक वचन सम्बन्धी अनेकरूपता लाने के लिए अवधी में 'घोड़ा' (घोड्) पद के साथ बहुवचनसूचक 'वन' या 'अन' प्रत्यय का योग किया जाने लगा—

'घोड़वन दौड़त अहैं।' (बहुवचन)/'घोड़न दौड़त अहैं।' (बहुवचन)

'अवधी' बोली के समान 'ब्रज' बोली में भी बहुवचनसूचक 'अन' प्रत्यय के योग से वचन सम्बन्धी एकरूपता के स्थान पर अनेकरूपता को स्थान दिया जाता है। 'भोजपुरी' बोली में भी ऐसा ही होता है। जैसे ब्रज में 'नैन' (नैन्)+अन्='नैनन' (बहुवचन पद), लरिका (लरिक्)+अन=लरिकन (बहुवचन पद)।

'भोजपुरी' में 'लड़का डूबि जइहै।' (एकवचन पद)/'लड़कन डूबि जइहैं।' (बहुवचन पद) 'ब्रज' में 'खाट' पद का ही एकवचन और बहुवचन में प्रयोग किया जाता था, लेकिन उस एकरूपता के स्थान पर स्पष्ट अर्थबोधक अनेकरूपता लाने के लिए 'खाट्' इस स्त्रीलिंग पद के साथ बहुवचन सूचक 'एँ' प्रत्यय का योग किया जाने लगा—खाट+एँ=खाटें।

3. नवीनता की दिशा में पद परिवर्तन— हिन्दी में 'प्रभावशाली' इस प्रचलित पद के साथ 'प्रभावी' नये पद का प्रचलन हुआ है। 'श्रेष्ठता का भाव' व्यक्त करने के लिए 'श्रेष्ठ' इस प्रचलित पद के साथ 'श्रेष्ठतम', 'सर्वश्रेष्ठ' इन नये पदों का भी प्रचलन हो रहा है। 'अनेकता का भाव' व्यक्त करने के लिए 'अनेक' इस प्रचलित पद के साथ 'अनेकों' इस नये पद का भी प्रयोग होता है। साहित्य में भाव की समुचित अभिव्यक्ति के लिए प्रचलित पद के स्थान पर नये पद का प्रयोग किया जाता है। इस कारण ही डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपनी एक काव्य पंक्ति में 'चार लोगों के' इस प्रचलित पद के स्थान पर 'चार मैंओं के' इस नये पद का प्रयोग किया है—

"चार मैंओं के नीचे दबी यह मेरी लाश !"

ठीक इसी तरह काव्य में 'साठ' संख्यावाचक विशेषण 'कुर्सी' तथा 'स्पर्श' इन संज्ञाओं से क्रियासूचक नये क्रिया पदों का प्रयोग हुआ है—

"पहले लोग सठिया जाते थे, अब कुर्सिया जाते हैं, मेरे दोस्त।"

'विपदग्रस्त धरती को स्पर्श ।'

स्पष्ट है कि साहित्य में नवीनता की दिशा में बहुत पद परिवर्तन होता है ।

4. सादृश्यीकरण की दिशा में पद परिवर्तन—हिन्दी में 'पैंतीस' पद के सादृश्य पर 'सैंतीस' अनुसारयुक्त पद प्रचलित हो गया। अन्यथा अनुसाररहित 'सैंतीस' यह पद प्रचलित रहता। 'तीनों' इस समुदायवाचक विशेषण पद के सादृश्य पर 'दोनों' यह समुदायवाचक विशेषण पद प्रचलित हुआ है। अन्यथा 'दोनों' पद 'दो' और 'ओं' के योग से बन नहीं पाता।

हिन्दी में अरबी-फारसी के 'रूह, उम्र, बू, फतह, ताकत, किताब' इन स्त्रीलिंग शब्दों (पदों) के प्रचलित होने पर उनके स्त्रीलिंग के सादृश्य पर 'आत्मा, आयु, गन्ध, जय, सामर्थ्य, पुस्तक' ये तत्सम पुल्लिग शब्द (पद) भी हिन्दी में स्त्रीलिंग के रूप में प्रचलित हुए हैं।

5. सरलीकरण की दिशा में पद परिवर्तन—हिन्दी में 'को, से, में, पर' इन विभक्तियों के योग के लिए 'मैं' का 'मुझ' और 'तू' का 'तुझ' हो जाता है—मुझको, मुझसे, मुझमें, मुझपर, तुझको, तुझसे, तुझमें, तुझ पर। लेकिन 'मैं, तू, हम, तुम' के सम्बन्धकारकीय रूप कुछ अलग बनते हैं—मेरा, मेरी, मेरे, तेरा, तेरी, तेरे, हमारा, हमारी, हमारे, तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे। ये सम्बन्धकारकीय रूप उच्चारण के लिए अधिक सरल हैं। इसलिए अब इन सम्बन्धकारकीय रूपों में से 'ए'कारान्त रूपों के साथ ही 'को, से, में, पर' इन विभक्तियों का योग किया जा रहा है, जिससे नये पद प्रचलित हो जाते हैं—मेरे को, मेरे से, मेरे में, मेरे पर, तेरे को, तेरे से, तेरे मैं, तेरे पर, हमारे को, हमारे से, हमारे मैं, हमारे पर, तुम्हारे को, तुम्हारे से, तुम्हारे में, तुम्हारे पर। सरलीकरण को ही लेकर संस्कृत में प्रचलित 'रामः, रामं, रामस्य, रामे' इन पदों के स्थान पर हिन्दी मैं 'राम ने, राम को, राम का, राम में' इन सरल पदों का प्रयोग हो रहा है। 'रोटी' या 'पानी' के बदले 'रोटी-वोटी', 'पानी-वानी' भी सरलीकरण से पद परिवर्तन है। 'नौकर' या 'खान' के बदले 'नौकर-चाकर', 'खान-पान भी सरलीकरण से ही पद परिवर्तन है।

6. अतिरिक्तकरण की दिशा में पद परिवर्तन—फारसी में 'दर' (में) पूर्व प्रत्यय है, इसलिए 'दरअसल', 'दर हकीकत' पद प्रचलित हैं, लेकिन हिन्दी में इन पदों के अन्त में अतिरिक्त 'में' को जोड़ा जाता है—'दर असल में', 'दर हकीकत में।' 'फिजूल' के साथ भी अतिरिक्त 'बे' पूर्वसर्ग को जोड़ा जाता है—'बेफिजूल'/ 'छठा' के साथ भी अतिरिक्त 'वाँ' पर प्रत्यय जोड़ा जाता है—'छठवाँ।'

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दिशाओं में पद-परिवर्तन हो जाता है।

7. रूपिमविज्ञान या रूपग्राम विज्ञान (Morphemics)

रूपविज्ञान (Morphology) का ही आधुनिक युग में विकसित एक प्रमुख अंग 'भाषाओं का रूपिमिक अध्ययन-विश्लेषण करने वाला रूपिमविज्ञान' है। रूपिम

विज्ञान किसी भाषा का रूप (Morph) सम्बन्धी अध्ययन-विश्लेषण करके रूपों के अर्थ तथा वितरण के आधार पर रूपिम या रूपग्राम (Morpheme) और उपरूप या संरूप (Allomorph) का निर्धारण करता है। वास्तव में व्याकरणिक अर्थवाला पद या पद भाग ही रूपिम है।

(7-1) रूप (Morph) और रूपिम (Morpheme)—रूप और रूपिम में महत्वपूर्ण अन्तर है। सम्बन्धतत्व के विभिन्न प्रकारों के सहयोग से अर्थतत्व (शब्द) वाक्य में प्रयोग करने योग्य पद बन जाता है। यह पद ही रूप कहलाता है।

"मैं उसे राम के घर में पुस्तक दूँगा।"

इस वाक्य-रचना में (1) मैं (2) उसे (3) राम के (4) घर में (5) पुस्तक (6) दूँगा इन 'छह' पदों अर्थात् रूपों का प्रयोग हुआ है। इनमें से प्रत्येक पद का व्याकरणिक अर्थ महत्व का है। 'मैं' पद का व्याकरणिक अर्थ है—अप्रत्यय कर्ता-कारक अर्थात् 'दूँगा' इस क्रिया का अप्रत्यय तथा प्रधानकर्ता। 'उसे' पद का व्याकरणिक अर्थ है—सम्प्रदानकारक अर्थात् व्यक्तिवाचक गौण कर्म। 'राम के' पद का व्याकरणिक अर्थ है—सम्बन्धकारक अर्थात् घर के साथ राम का सम्बन्ध। 'घर में' पद का व्याकरणिक अर्थ है—अधिकरणकारक अर्थात् 'दूँगा' क्रिया का स्थान वाचक क्रियाविशेषण। 'पुस्तक' पद का व्याकरणिक अर्थ है—अप्रत्यय कर्मकारक अर्थात् 'दूँगा' क्रिया का कर्म। 'दूँगा' पद का व्याकरणिक अर्थ है—सामान्य भविष्य कालवाचक क्रिया।

लेकिन प्रस्तुत वाक्य में उपर्युक्त छह पदों अर्थात् रूपों के आधार पर 'बारह' रूपिमों का प्रयोग हुआ है, जो इस प्रकार हैं—

(1) मैं (2) वह (उस) (3) ए (4) राम (5) के (6) घर (7) में (8) पुस्तक (9) दे (10) ऊँ (11) ग् (12) आ। इनमें से प्रत्येक रूपिम का अर्थ इस प्रकार है—

(1) मैं=उत्तम पुरुष, एकवचन, पुल्लिग सर्वनाम
(2) वह=अन्य पुरुष, एकवचन, पुल्लिग या स्त्रीलिंग सर्वनाम
(3) ए=(को) सम्प्रदानकारक की विभक्ति जिसके सहयोग के लिए 'वह' से 'उस' बनता है।
(4) राम=व्यक्तिवाचक संज्ञा, अन्य पुरुष, एकवचन, पुल्लिग संज्ञा
(5) के=सम्बन्धकारक की विभक्ति
(6) घर=अन्य पुरुष, एकवचन, पुल्लिग जातिवाचक संज्ञा
(7) में=अधिकरणकारक की विभक्ति
(8) पुस्तक=अन्य पुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग जातिवाचक संज्ञा
(9) दे=धातु, जिससे देने की क्रिया का भाव सूचित होता है
(10) ऊँ=उत्तम पुरुष वाचक प्रत्यय

(11) ग्=सामान्य भविष्यकालसूचक प्रत्यय

(12) आ=एकवचनसूचक तथा पुल्लिगसूचक प्रत्यय

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि—

(अ) वाक्य की लघुतम इकाई रूपिम या रूपग्राम कहलाती है, जो व्याकरण की दृष्टि से विशिष्ट तथा स्वतन्त्र अर्थ पर आधारित होती है। इस कारण से ही रूपिम या रूपग्राम को 'भाषा अथवा वाक्य की लघुतम सर्थाक इकाई' कहा जाता है।

(आ) वाक्य में व्याकरण की दृष्टि से अर्थपूर्ण पद अथवा पद भाग भी रूपिम होता है। इस कारण से ही उपर्युक्त वाक्य में 'मैं' और 'पुस्तक' व्याकरणिक अर्थ की दृष्टि से पद भी हैं और रूपिम या रूपग्राम भी हैं। इसके विरुद्ध 'वह (उस), ए, राम, के, घर, में, दे, ऊँ, ग्, आ' ये दसों व्याकरणिक अर्थ की दृष्टि से पद भाग हैं और साथ ही साथ सार्थक रूपिम भी हैं। अतः पद या रूप और रूपिम में महत्वपूर्ण अन्तर है।

(इ) व्याकरणिक अर्थ के आधार पर 'पद' या 'रूप' और पद भाग भी रूपिम के अर्थ में भाषा या वाक्य में अतिशय महत्व का होता है, क्योंकि वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई वाले रूपिमों के ही सुव्यवस्थित संयोग से वाक्य रचना होती है। इस दृष्टि से उपर्युक्त वाक्य की रचना महत्वपूर्ण है।

(ई) रूपिम में जो व्याकरणिक अर्थ की लघुतम इकाई होती है, उसे अर्थिम (Semanteme) या अर्थग्राम या अर्थ या अर्थतत्व कहा जाता है।

(उ) उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त रूपिमों से 'मैं, वह, राम, घर, पुस्तक, दे' ये छह 'स्वतन्त्र रूपिम' अर्थात् 'मुक्त रूपिम' हैं, क्योंकि इनका अकेले या अलग या मुक्त या स्वतन्त्र भी प्रयोग हो सकता है अथवा अन्य रूपिमों के साथ भी प्रयोग हो सकता है। जैसे मुक्त या स्वतन्त्र रूप से प्रयोग—मैं चला। वह गया। राम दौड़ा। घर देखा गया। पुस्तक प्रकाशित हो गयी। तू पुस्तक दे।

अन्य रूपिमों के साथ भी प्रयोग—मैंने उसे राम के घर में देखा है। पुस्तक की कीमत सौ रुपये है। मैं तुझे पुस्तक दूँगा। वहाँ रामघर है।

(ऊ) लेकिन उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त रूपिमों से 'ए, के, में, ऊँ, ग्, आ' ये छह 'बद्ध रूपिम' हैं, योंकि वाक्य में इनका अकेले या अलग से या स्वतन्त्र या मुक्त प्रयोग नहीं हो सकता। सदा किसी के साथ ही प्रयोग में आना, इनकी महत्वपूर्ण विशेषता है। इसलिए ही इन्हें 'बद्ध रूपिम' या 'आबद्ध रूपिम' कहते हैं।

(ए) उपर्युक्त वाक्य में 'राम, घर, पुस्तक' ऐसे मुक्त रूपिम हैं जो एक दृष्टि से संज्ञाएँ हैं, तो दूसरी दृष्टि से ऐसे शब्द हैं जो अर्थ ही व्यक्त करते हैं। इसलिए इन्हें अर्थतत्व या 'अर्थदर्शी रूपिम' या अर्थद्योतक रूपग्राम कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं, वह' सर्वनाम शब्द हैं और 'अर्थदर्शी रूपिम' भी हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'दे' क्रियावाचक धातु शब्द है और 'अर्थदर्शी रूपिम' भी हैं।

(ऐ) उपर्युक्त वाक्य में 'ए' (को), के, में, ऊँ, ग्, आ' ये सब ऐसे 'सम्बन्धदर्शी रूपिम' हैं, जिनमें अर्थ के होने पर भी अर्थ का प्राधान्य नहीं होता और इस कारक से जिनका प्रमुख कार्य 'सम्बन्ध दर्शन' या 'व्याकरणिक कार्य' ही महत्वपूर्ण होता है। इसलिए 'सम्बन्धदर्शी रूपिम' को 'सम्बन्धतत्व' भी कहा जाता है। वैसे ये व्याकरणिक तत्व के रूप में ही महत्व के हैं। इस कारण से ही वाक्य में सभी पदों का पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाने का महत्व का कार्य सम्बन्धदर्शी रूपिम करते हैं।

(7-2) रूपिम का वर्गीकरण—मुख्य दो आधारों को लेकर रूपिम के वर्ग अर्थात् भेद किए जाते हैं—(अ) रचना और प्रयोग का आधार और (आ) अर्थ और कार्य का आधार।

(अ) रचना और प्रयोग का आधार—इस आधार पर रूपिम के दो भेद होते हैं—(1) मुक्त रूपिम (Free Morpheme) और (2) बद्ध रूपिम (Bound Morpheme)

(1) मुक्त रूपिम—उन्हें मुक्त रूपिम कहते हैं जो वाक्य में अकेले या अलग से या मुक्त या स्वतन्त्र रूप से और अन्य रूपिमों के साथ भी प्रयोग में आते हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं, वह, राम, घर, पुस्तक, दे' ये सब मुक्त रूपिम ही हैं। इस दृष्टि से 'रामघर' भी मुक्त रूपिम ही है—वह रामघर है।

(2) बद्ध रूपिम—उन्हें बद्ध रूपिम कहते हैं जो वाक्य में अकेले या अलग से या मुक्त या स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में आ नहीं सकते। सदा किसी के साथ ही प्रयोग में आते हैं। इस कारण से ही उपर्युक्त वाक्य में 'ए (को), के, में, ऊँ, ग्, आ' ये सब बद्ध रूपिम हैं। इस दृष्टि से स्त्रीलिंगसूचक 'ई' (लड़की, घोड़ी) और पुल्लिग बहुवचन 'ए' (लड़के, घोड़े) भाववाचक संज्ञासूचक 'ता' (सुन्दरता) ये सब बद्ध रूपिम हैं। बद्ध रूपिम को 'आबद्ध' रूपिम भी कहते हैं। बद्ध रूपिम प्राय: जिसके साथ आते हैं उसके साथ आते हैं उसके साथ पूर्णतया मिले रहते हैं, जैसे उसे (उसको), लड़की, लड़के, सुन्दरता, मानवता आदि। लेकिन हिन्दी में कारक विभक्ति रूपी बद्ध रूपिम केवल सर्वनाम के साथ मिलकर आते हैं और संज्ञा के साथ अलग से जुड़े रहते हैं। वास्तविकता यही है कि लिंगसूचक प्रत्यय, वचनसूचक प्रत्यय, पुरुषसूचक प्रत्यय, कालसूचक प्रत्यय और कारकसूचक प्रत्यय ये सभी बद्ध रूपिम ही हैं जिसमें एक अर्थदर्शी रूपिम और एक सम्बन्धदर्शी रूपिम मिला रहता है, उसे 'संयुक्त रूपिम' कहते हैं, जैसे उसको, उसे, लड़की, सुन्दरता आदि। कभी 'संयुक्त रूपिम' में एक अर्थदर्शी रूपिम के साथ एक से अधिक सम्बन्धदर्शी रूपिम मिले रहते हैं, जैसे दूँगा, दूँगी, देंगे, चला, चली, चले, चलता, चलती, चलते आदि।

जिसमें एक से अधिक अर्थदर्शी रूपिमों का स्वतन्त्र रूप से या सम्बन्धदर्शी रूपिम के साथ मेल बना रहना है, उसे 'मिश्रित रूपिम' कहते हैं, जैसे राजगृह, रसोईघर, डाकघर में, महाविद्यालय से, माँ-बाप ने, बेटा-बेटी को आदि।

(आ) अर्थ और कार्य का आधार—इस आधार को लेकर भी रूपिम के दो भेद होते हैं—(1) अर्थदर्शी रूपिम और (2) सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम।

(1) अर्थदर्शी रूपिम—उन्हें अर्थदर्शी रूपिम कहते हैं जिनका स्पष्ट रूप से अर्थ होता है और अर्थ व्यक्त करना ही जिनका प्रधान कार्य होता है। इन्हें ही अर्थतत्व कहते हैं। इनके साथ ही विचारों और भावों का सीधा सम्बन्ध होता है। संज्ञा (राम, घर, पुस्तक), सर्वनाम (मैं, तू, वह), विशेषण (सुन्दर, कोमल, मधुर), क्रिया (दे, ले, चल, दौड़) आदि व्याकरणिक या प्रायोगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अर्थ-दर्शी रूपिम हैं। प्रत्येक भाषा में इस प्रकार के रूपिम बहुत अधिक हैं।

(2) सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम—उन्हें सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम कहते हैं, जो अपने में अर्थ का प्राधान्य नहीं रखते और वाक्य में 'सम्बन्ध दर्शन' अथवा 'व्याकरणिक कार्य' की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हें ही सम्बन्धतत्व या व्याकरणिक तत्व भी कहते हैं। इन्हें 'कार्यद्योतक रूपिम' भी कहा जाता है। लिंग, वचन, पुरुष, काल, कारक आदि को सूचित करने वाले प्रत्यय कार्यात्मक रूपिम या कार्यद्योतक रूपिम या सम्बन्धदर्शी रूपिम कहलाते हैं। ये रूपिम वाक्य में एक शब्द का सम्बन्ध दूसरे शब्द के साथ दिखाते हैं। इन रूपिमों के संयोग से अर्थदर्शी रूपिमों में लिंग, वचन, पुरुष, काल, कारक आदि की दृष्टि से परिवर्तन हो जाता है। इसलिए 'लड़क्' इस अर्थदर्शी रूपिम के साथ 'आ, ई, इयाँ, इयों, ए, ओं' आदि सम्बन्धदर्शी रूपिम या सम्बन्धतत्वों के संयोग से 'लड़का, लड़की, लड़कियाँ, लड़कियों, लड़के, लड़कों' आदि संयुक्त रूपिम या रूप या पद बन जाते हैं। इस कारण से ही सम्बन्धदर्शी रूपिमों को 'कार्यात्मक रूपिम' (Functional Morpheme) कहना समुचित माना जाता है। इस प्रकार के रूपिमों की संख्या मर्यादित होती है।

'खंडीकरण' को भी आधार बनाकर रूपिम के दो भेद माने जाते हैं। एक भेद को 'खंड रूपिम' (Segmental) माना जाता है, जिन्हें तोड़कर अलग किया जा सकता है। प्रत्येक 'खंड रूपिम' वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई होता है। इसलिए ऊपर जिन रूपिमों को स्पष्ट कर दिया है, वे सब खंड रूपिम हैं।

दूसरे भेद को 'अखंड रूपिम' (Suprasegmental) माना जाता है, जिनमें बलाघात (Stress), सुर (Tone, Pitch) या सुरलहर (Intonation) आदि को स्वीकार किया जाता है। इन्हें खंडित नहीं किया जाता है। स्वनिमविज्ञान में इन्हें स्पष्ट कर दिया गया है।

(3) उपरूप या संरूप (Allomorph)—जब कभी एक से अधिक रूपिमों का अर्थ एक होता है, तब वे एक ही रूपिम के उपरूप या संरूप होते हैं। उपरूप या संरूप 'समानार्थी' होते हैं, जैसे हिन्दी के 'ओं, ओ, ए, एँ, आँ' ये सब बद्ध रूपिम

समानार्थी अर्थात् संज्ञाओं के बहुवचन का अर्थबोध कराने वाले हैं। ये बद्ध रूपिम 'एक प्रकार की रचना' में आते हैं अर्थात ये सब बहुवचनसूचक रचना में आते हैं, जैसे 'ओं' (लड़कों) सभी प्रकार की संज्ञाओं के 'विभक्तिसहित' बहुवचनसूचक रचना में प्रयुक्त होता है, 'ओ' (लड़को) सम्बोधन के लिए सभी प्रकार की संज्ञाओं के 'विभक्तिरहित' बहुवचनसूचक रचना में प्रयुक्त होता है, 'ए' (लड़के) पुल्लिंग आकारान्त संज्ञाओं के विभक्तिरहित बहुवचनसूचक रचना में प्रयुक्त होता है, 'एँ' (माताएँ, बातें, वस्तुएँ) बहुतसी स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विभक्तिरहित बहुवचनसूचक रचना में आता है। 'आँ' (रीतियाँ, नदियाँ) इकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विभक्तिरहित बहुवचनसूचक रचना में आता है। ये अलग-अलग अविरोधी स्थिति में आकर परिपूरक वितरण में आते हैं। इसलिए सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाला 'ओं' रूपिम है और उसके उपरूप या संरूप हैं—ओ, ए, एँ, आँ।

4
वाक्यविज्ञान

भाषा-विज्ञान भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करते समय वाक्यविज्ञान के माध्यम से भाषा की सहज इकाई के रूप में वाक्य का विश्लेषण करता है। इसलिए भाषा-विज्ञान के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार भाषा की परिभाषा को वस्तुनिष्ठ तथा औचित्यपूर्ण होना आवश्यक है।

1. वाक्य की परिभाषा

भाषा-विज्ञान के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार भाषा की वस्तुनिष्ठ परिभाषा इस प्रकार दी जाती है—

"वाक्य भाषा की ऐसी सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते हैं तथा वह इकाई अर्थ की दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण होती है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट सन्दर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है।"

वाक्य की इस परिभाषा से वाक्य की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ व्यक्त होती हैं—

(1) वाक्य भाषा की सहज इकाई है—मनुष्य के द्वारा भाषा का स्वाभाविक प्रयोग वाक्य के रूप में किया जाता है। जो ध्वनि भाषा का मूल आधार होती है, वह भाषा की सबसे छोटी इकाई होती है। इस प्रकार की ध्वनि एक-दूसरी के साथ जुड़कर अर्थपूर्ण शब्दों को उत्पन्न करती है। शब्द अपने मूल रूप में तथा आवश्यकतानुसार लिंग, वचन, कालादि प्रत्ययों के सहयोग से वाक्य में प्रयोग करने योग्य विविध रूप धारण करते हैं, जिन रूपों को वाक्य में प्रयुक्त किये जाने पर 'पद' कहा जाता है। इसलिए जिन्हें पद कहा जाता है, ऐसे 'शब्द-रूप' विशिष्ट अर्थाभिव्यक्ति के लिए एक-दूसरे के साथ विशिष्ट क्रम से जुड़कर वाक्य का निर्माण करते हैं। इस प्रकार का वाक्य ही भाषा की सहज इकाई बनकर रहता है। इस कारण ही भाषा का प्रयोग वाक्य के रूप में ही किया जाता है।

ध्वनि-संयोग=शब्द	शब्द-रूप= पद	पद-संयोग=वाक्य
(क) ल्+अ+ड्+अ+क्+आ=लड़का न्+आ+ट्+अ+क+अ=नाटक द्+ए+ख्=देख्	लड़का (लड़क्)+ए+ने (एक वचन सप्रत्ययकर्ताकारक)=लड़के ने नाटक +०+० (एकवचन अप्रत्यय कर्मकारक)=नाटक देख् +आ+०(पुलिंग, एकवचन सामान्य भूतकाल सूचक)=देखा	लड़के ने नाटक देखा। (तीन पदों पर आधारित वाक्य)
(ख) ज्+आ=जा	जा +०+०(पुलिंग/स्त्रीलिंग एकवचन, प्रत्यक्ष विधिकाल सूचक)=जा	जा।=(तू जा।) (एक पद पर आधारित वाक्य)

(2) वाक्य में एक शब्द (पद) या अधिक शब्द (पद) होते हैं—प्रायः वाक्य एक से अधिक शब्द-रूप पदों वाला होता है। अकर्मक वाक्य कम से कम दो पदों वाला होता है। उन दो पदों में से एक पद कर्ता सम्बन्धी होता है तो दूसरा पद क्रिया सम्बन्धी होता है। जैसे—'हवा चली'। इस द्विपदीय वाक्य में 'हवा' पद कर्ता सम्बन्धी है, तो 'चली' क्रियापद है। सकर्मक वाक्य कम से कम तीन पदों वाला होता है—जैसे, 'लड़के ने नाटक देखा।' लेकिन कभी-कभी किसी शब्द-रूप पद के लोप से एक पदीय वाक्य बना रहता है—जैसे, जा। यहाँ 'जा' यह आज्ञार्थक वाक्य एक पदीय है। वास्तव में यहाँ 'तू' कर्तासम्बन्धी पद का लोप होने के कारण 'जा' यह एक पदीय वाक्य बन गया है। 'आ/(=तू आ/), चलो/(=तुम चलो/), जाइए। (=आप जाइए) ये तीनों वाक्य एक पदीय हैं, क्योंकि इन वाक्यों में कर्ता सम्बन्धी पद का लोप हुआ है। इस प्रकार वाक्य एक पदीय या अनेक पदीय होता है।

(3) वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण होता है—व्यवहार में वाक्य का उपयोग करते समय कभी वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूर्ण होता है, तो कभी अपूर्ण होता है। जैसे—

(अ) अर्थ की दृष्टि से पूर्ण वाक्य—

1. लड़की बहुत सुन्दर है। 2. लड़के ने अपना काम किया। 3. राम ने रोटी खायी। 4. मैं मित्र को पत्र लिखता हूँ। 5. तुम मुझे मन्त्री बना सकते हो।

इन पाँचों वाक्यों में अर्थ की दृष्टि से कम से कम आवश्यक पदों का प्रयोग हुआ है। अतः ये पाँचों वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हैं।

(आ) अर्थ की दृष्टि से कुछ अपूर्ण वाक्य—

1. लड़की बहुत है। 2. लड़के ने किया। 3. राम ने खायी। 4. मैं लिखता हूँ। 5. मैं मित्र को लिखता हूँ। 6. मैं पत्र लिखता हूँ। 7. तुम मन्त्री बना सकते हो।

इन सातों वाक्यों में अर्थ की पूर्णता की दृष्टि से कम से कम आवश्यक पदों का प्रयोग नहीं हुआ है। अतः ये सातों वाक्य अर्थ की दृष्टि से अपूर्ण हैं। यहाँ पहले वाक्य

में कर्तृपूरक विशेषणात्मक (सुन्दर) पद का प्रयोग नहीं हुआ है। दूसरे वाक्य में कर्म पद (काम) का प्रयोग नहीं हुआ है। तीसरे वाक्य में भी कर्म पद (रोटी) का प्रयोग नहीं हुआ है। चौथे वाक्य में भी कर्म पद (पत्र) का प्रयोग नहीं हुआ है। पाँचवें वाक्य में मुख्य कर्म पद (पत्र) का प्रयोग नहीं हुआ है। छठे वाक्य में गौण कर्म पद (मित्र को) का प्रयोग नहीं हुआ है और सातवें वाक्य में भी गौण कर्म (मुझे) का प्रयोग नहीं हुआ है।

(4) वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है—व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य को पूर्ण होना आवश्यक होता है। इसलिए वाक्य में आवश्यक पदों का प्रयोग महत्वपूर्ण होता है। वाक्य में सबसे पहले क्रिया पद और कर्ता पद ये दोनों महत्वपूर्ण और आवश्यक पद होते हैं। यदि वाक्य में अकर्मक क्रिया पद होता है, तो उसके साथ अप्रत्यय कर्ता पद आता है और आवश्यकतानुसार कर्तृपूरक पद भी आता है, जैसे—'लड़की बहुत सुन्दर है'। यदि वाक्य में सकर्मक क्रिया पद होता है, तो उसके साथ कर्ता पद और कर्म पद आता है, जैसे 'लड़के ने अपना काम किया'। 'राम ने रोटी खायी'। यदि वाक्य में द्विकर्मक क्रिया पद होता है, तो उसके साथ सप्रत्यय गौण कर्म पद और अप्रत्यय मुख्य कर्म पद आता है, जैसे—'मैं मित्र को पत्र लिखता हूँ'। यदि वाक्य में कर्मपूरक क्रिया पद होता है, तो उसके साथ सप्रत्यय कर्म पद और कर्मपूरक पद आता है, जैसे—'तुम मुझे मन्त्री बना सकते हो'। इस प्रकार वाक्य का व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होना आवश्यक होता है।

(5) वाक्य कभी-कभी विशिष्ट सन्दर्भ में व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है—जब व्यवहार में वाक्य के सभी आवश्यक शब्दरूप पदों का प्रयोग करने के बदले कुछ ही पदों का प्रयोग होता है और कुछ पदों का लोप किया जाता है, तब संदर्भ विशेष के आधार पर लुप्त पदों को समझ लिया जाता है और वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार की स्थिति में वाक्य विशिष्ट सन्दर्भ में ही व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है। जैसे—

उज्ज्वल—सुनीत ने गाना गाया ?
राहुल—हाँ।
उज्ज्वल—और तुमने ?
राहुल—नहीं। अब जाऊँ ?
उज्ज्वल—जा।

यहाँ 'हाँ।', 'और तुमने ?', 'नहीं।', 'अब जाऊँ ?' और 'जा।' ये सभी वाक्य विशिष्ट संदर्भ में ही पूर्ण हैं, क्योंकि यहाँ सन्दर्भ विशेष को समझ में ले जाने पर ज्ञात होता है कि 'सुनीत ने गाना गाया।' इस पूर्ण वाक्य का संक्षेप है—'हाँ।' 'तुमने गाना गाया ?' इस पूर्ण वाक्य का संक्षेप है—'और तुमने ?', 'मैंने गाना नहीं गाया।' इस पूर्ण वाक्य का संक्षेप है—'नहीं।' 'अब मैं जाऊँ ?' इस पूर्ण वाक्य का

संक्षेप है—'अब जाऊँ ?' और 'तू जा।' इस पूर्ण वाक्य का संक्षेप है—'जा।' इस प्रकार यहाँ पाँचों वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से विशिष्ट सन्दर्भ में ही पूर्ण हैं।

(6) वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है—वाक्य में कम से कम एक समापिका क्रिया होती है, जिससे किसी कार्य का होना सूचित होता है। कभी-कभी वाक्य में एक से अधिक भी समापिका क्रियाएँ होती हैं। जैसे—

(अ) सुनीत ने गाना गाया। (एक समापिका क्रिया)

(ब) राहुल ने कहा कि उज्ज्वल आ जायेगा। (दो समापिका क्रियाएँ)

(क) सुनीत गाना गाता है, उज्ज्वल पुस्तक पढ़ता है और राहुल खेल खेलता है। (तीन समापिका क्रियाएँ)

यहाँ (अ) वाक्य 'सरल वाक्य' है, (ब) वाक्य मिश्र वाक्य है और (क) वाक्य संयुक्त वाक्य है। इन तीनों वाक्यों में प्रत्यक्ष रूप से समापिका क्रिया का अस्तित्व है, लेकिन कभी वाक्य में परोक्ष रूप से समापिका क्रिया का अस्तित्व बना रहता है। जैसे,

सुनीत—उज्ज्वल ने 'गोदान' उपन्यास पढ़ा है।

राहुल—और तुमने ?

यहाँ 'और तुमने ?' इस प्रश्नार्थक सरल वाक्य में 'पढ़ा है' इस समापिका क्रिया का अस्तित्व परोक्ष (अप्रत्यक्ष) रूप से है—"और तुमने 'गोदान' उपन्यास पढ़ा है ?"

इस प्रकार वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समापिका क्रिया होती ही है। स्पष्ट है कि भाषा विज्ञान के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार वाक्य उपर्युक्त छः विशेषताओं से युक्त होता है, जिससे उसका विशिष्ट स्वरूप बना रहता है। अर्थ की दृष्टि से वाक्य का अर्थपूर्ण होना आवश्यक होता है, तो व्याकरण की दृष्टि से वाक्य का व्याकरणिक अनुरूपता पर आधारित होना आवश्यक होता है।

2. वाक्य में पद-विन्यास की विशेषताएँ

पद-विन्यास अर्थात् पद-स्थापन के आधार पर ही वाक्य की रचना हो जाती है। इसके लिए पद-विन्यास की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ बहुत उपयोगी होती हैं। वाक्य की रचना के लिए पद-विन्यास की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक बहुत उपयोगी विशेषता है 'चयन' अर्थात् 'पद चयन' और दूसरी बहुत उपयोगी विशेषता है 'क्रम' अर्थात् 'पद-क्रम'।

(1) चयन अर्थात् पद-चयन—वाक्य-रचना के लिए सर्वप्रथम 'अर्थ' तथा 'रूप' दोनों दृष्टियों से योग्य पद का चयन करना आवश्यक होता है, जो वाक्य में पद-विन्यास की पहली महत्वपूर्ण विशेषता है।

(अ) अर्थ की दृष्टि से योग्य पद का चयन

वाक्य-रचना के लिए जिस पद का उपयोग करना होता है, उसमें 'सार्थकता' का होना बहुत आवश्यक है। भाषा का प्रयोगकर्ता वाक्य से जिस अर्थ की अभिव्यक्ति करना चाहता है, उसकी दृष्टि से ही 'सार्थक पद' का चयन करना आवश्यक होता

है। अर्थ के मूल में जो प्रसंगानुकूल भाव होता है, उसका बोध कराने की **'योग्यता'** (क्षमता) भी जिस 'सार्थक पद' में होती है, उसी का चयन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार का 'सार्थक पद' अपेक्षित अर्थ-बोध तथा भाव-बोध कराने और करा लेने की **'आकांक्षा'** अर्थात् 'इच्छा' को पूरा करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार **'सार्थकता'**, **'योग्यता'** और **'आकांक्षा'** को ध्यान में रखकर वाक्य-रचना के लिए **'सार्थक पद का चयन'** करना आवश्यक होता है। जैसे—

"अबला की रक्षा करना पुरुष का धर्म है।"

यहाँ 'अबला' पद (शब्द) का अर्थ है—स्वयं का रक्षण करने में असमर्थ बलहीन स्त्री। और 'पुरुष' पद (शब्द) का अर्थ है—अपने साथ औरों का भी रक्षण करने में समर्थ पौरुष सम्पन्न मर्द। वैसे 'स्त्री' अर्थ-वाचक अनेक पद हैं—नार, रमणी, कामिनी, अबला आदि। लेकिन इन पदों में अर्थ की दृष्टि से सूक्ष्म अन्तर है। 'नार' पद में 'नर' (पुरुष) की संगिनी होने का भाव अधिक है; 'रमणी' पद में पुरुष को रमाने का भाव अधिक है, 'कामिनी' पद में पुरुष को काम-प्रवृत्त कराने का भाव अधिक है तो 'अबला' पद में असमर्थता का भाव अधिक है। इसलिए यहाँ **'रक्ष्य-रक्षक'** भाव-सम्बन्ध को ध्यान में रखकर **'अबला'** और **'पुरुष'** इन सार्थक पदों का चयन अपेक्षित वाक्य-रचना के लिए हुआ है।

(आ) रूप की दृष्टि से योग्य पद का चयन

वाक्य-रचना के लिए 'सार्थक पद' का चयन करने के बाद उसे व्याकरणिक अनुरूपता प्रदान की जाती है, जिससे वाक्य में प्रयुक्त पदों का वाक्यार्थ-सूचक **'अन्वय'** बना रहता है। वाक्य में पदों के इस प्रकार के अन्वय को ही पदों की **'अन्विति'** या पदों की व्याकरणिक अनुरूपता या पदों की व्याकरणिक एकरूपता कहा जाता है।

वाक्य के मुख्य दो अंग होते हैं—उद्देश्य और विधेय। वाक्य में जिसके विषय में विधान किया जाता है, उसे सूचित करने वाले पद को **'उद्देश्य'** कहा जाता है और उद्देश्य के विषय में किये गये विधान को सूचित करने वाले पद को **'विधेय'** कहा जाता है। 'उद्देश्य' एक पद के रूप में भी हो सकता है और विस्तारित रूप में अर्थात् एक से अधिक 'पद-समूह' के रूप में भी होता है। प्रायः 'उद्देश्य' वाक्य का कर्ता होता है। 'विधेय' भी एक पद के रूप में या 'पद-समूह' के रूप में होता है, जिसमें 'कर्म-पद' का भी समावेश होता है। प्रायः 'विधेय' वाक्य की क्रिया होता है। जैसे—

	उद्देश्य-विस्तार	उद्देश्य	विधेय-विस्तार/विधेय
(क)		लड़का	चलता है।
(ख)	गायक	सुनीत	मधुर गीत गाता है।
(ग)	अपने प्रिय	उज्ज्वल ने	उपन्यास की पुस्तक पढ़ी।
(घ)	खिलाड़ी	राहुल ने	अपने दोस्तों को मैदान में बुलाया

वाक्य में उद्देश्य और विधेय से सम्बन्धित पदों में लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल आदि के आधार पर अन्विति बनी रहती है। अतः जिस 'सार्थक पद' का वाक्य रचना के लिए चयन किया जाता है, उसका अन्विति के अनुकूल होना भी आवश्यक है। तभी उस पद में अर्थ तथा अन्विति की भी योग्यता मिलेगी। जैसे—

(अ) 'लड़का' यह पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, अविकृत रूप है, जो अप्रत्यय कर्ताकारक या अप्रत्यय कर्मकारक के लिए उपयोगी है।

(आ) 'लड़के' यह पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, विकृत रूप है जो अप्रत्यय कर्ताकारक या अप्रत्यय कर्मकारक के लिए उपयोगी है।

(इ) 'लड़के ने' यह पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, विकृत, विभक्ति रहित रूप है, जो सप्रत्यय कर्ताकारक के लिए उपयोगी है।

(ई) 'पुस्तक' यह स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, अविकृत रूप है, जो अप्रत्यय कर्मकारक के लिए उपयोगी है या अप्रत्यय कर्ताकारक के लिए उपयोगी है।

(उ) 'चलता है' यह पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, वर्तमान काल सूचक रूप है, जो पुल्लिग, एकवचन, मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष अप्रत्यय कर्ताकारक के लिए उपयोगी है।

(ऊ) 'चलते हैं' यह पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, वर्तमान काल सूचक रूप है, जो पुल्लिग, बहुवचन, उत्तम पुरुष या अन्य पुरुष अप्रत्यय कर्ताकारक के लिए उपयोगी है।

(ए) 'देखा' यह पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, भूतकाल सूचक रूप है, जो पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, अप्रत्यय कर्मकारक के लिए उपयोगी है।

(ऐ) 'देखे' यह पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, भूतकाल-सूचक रूप है, जो पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष अप्रत्यय कर्मकारक के लिए उपयोगी है।

(ओ) 'पढ़ी' यह स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, भूतकाल सूचक रूप है, जो स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, अप्रत्यय कर्मकारक के लिए उपयोगी है।

(औ) 'मैंने' यह पुल्लिग या स्त्रीलिंग, एकवचन, उत्तम पुरुष, विभक्ति सहित रूप है, जो पुल्लिग या स्त्रीलिंग, एकवचन, उत्तम पुरुष, सप्रत्यय कर्ताकारक के लिए उपयोगी है।

उपर्युक्त व्याकरणिक योग्यताधारक पदों में से वाक्य में पदान्विति के अनुकूल सार्थक पदों के चयन के आधार पर वाक्य इस प्रकार बनाये जा सकते हैं—

(1) लड़का चलता है। (2) लड़के चलते हैं। (3) मैंने लड़का देखा। (4) मैंने लड़के देखे। (5) लड़के ने पुस्तक पढ़ी। (6) मैंने पुस्तक पढ़ी।

इस प्रकार वाक्य में प्रयुक्त करने के लिए पद की सार्थकता जितनी महत्व की होती है, उतनी ही उसकी लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल आदि के अनुकूल अन्विति अर्थात् व्याकरणिक अनुरूपता भी महत्व होती है। अतः वाक्य-रचना के लिए अर्थ तथा रूप की दृष्टि से योग्य पद का चयन आवश्यक होता है।

(इ) क्रम अर्थात् पद-क्रम

वाक्य में एक-एक पद क्रम से रखा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वाक्यार्थ का बोध कराने में वाक्य समर्थ हो जाता है। वाक्य में एक-एक पद को क्रम से रखा जाने को ही 'पद-क्रम' कहा जाता है, जो वाक्य में पद-विन्यास की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है।

जिन भाषाओं को 'अयोगात्मक भाषाएँ' कहा जाता है, उनके वाक्य में निश्चित वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए पद का क्रम बहुत महत्व का होता है। यदि अयोगात्मक भाषाओं के वाक्य में पद के क्रम में परिवर्तन कर दिया गया तो वाक्यार्थ में भी परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि अयोगात्मक वाक्य में विशिष्ट अर्थ सूचक सम्बन्ध तत्व का कार्य पद का विशिष्ट स्थान क्रम ही करता है। जैसे—अयोगात्मक चीनी भाषा के वाक्य में पद का विशिष्ट स्थान-क्रम ही विशिष्ट अर्थ सूचक सम्बन्ध तत्व का कार्य करता है—

चीनी भाषा का अयोगात्मक वाक्य	हिन्दी भाषा में अनुवाद
(क) पा ताङ् शेन	= पा मारता है शेन को=पा शेन को मारता है।
(ख) शेन ताङ् पा	= शेन मारता है पा को=शेन पा को मारता है।

यहाँ (क) वाक्य में पहले स्थान-क्रम का 'पा' पद कर्ता का कार्य कर रहा है, तो (ख) वाक्य में अन्तिम स्थान-क्रम का 'पा' पद सप्रत्यय कर्म का कार्य कर रहा है।

(क) वाक्य में अन्तिम स्थान-क्रम का 'शेन' पद सप्रत्यय कर्म का कार्य कर रहा है, तो (ख) वाक्य में पहले स्थान-क्रम का 'शेन' पद कर्ता का कार्य कर रहा है। इस प्रकार अयोगात्मक भाषा के वाक्य में निश्चित वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक पद का स्थान-क्रम बहुत महत्व का होता है।

योगात्मक भाषाओं में से अंग्रेजी भाषा के वाक्य में भी पद पद का निश्चित स्थान-क्रम होता है। इसलिए अंग्रेजी भाषा के वाक्य में पद के स्थान-क्रम-परिवर्तन से वाक्यार्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे—

	कर्ता	क्रिया	कर्म
	↓	↓	↓
(च) Rama killed Ravana	=राम ने	मारा	रावण को=राम ने रावण को मारा।
(छ) Ravana killed Rama	=रावण ने	मारा	राम को=रावण ने राम को मारा।

यहाँ (च) वाक्य में पहले स्थान-क्रम का 'Rama' यह पद कर्ता का कार्य कर रहा है, तो (छ) वाक्य में अन्तिम स्थान-क्रम का 'Rama' यह पद सप्रत्यय कर्म का कार्य कर रहा है।

(च) वाक्य में अन्तिम स्थान-क्रम का 'Ravana' यह पद सप्रत्यय कर्म का कार्य कर रहा है, तो

(छ) वाक्य में पहले स्थान-क्रम का 'Ravana' यह पद कर्ता का कार्य कर रहा है। इस प्रकार योगात्मक भाषा के वाक्य में भी निश्चित वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक पद का स्थान-क्रम महत्व का होता है। अंग्रेजी भाषा के वाक्य में पहले कर्ता, बाद में क्रिया और अन्त में कर्म पद आता है।

हिन्दी भाषा योगात्मक भाषा है, जिसके वाक्य में भिन्न-भिन्न प्रत्यय अलग-अलग अर्थसूचक सम्बन्ध तत्व का कार्य करते हैं। फिर भी हिन्दी भाषा के वाक्य में पदों के स्थान-क्रम में परिवर्तन करने से अर्थ परिवर्तन नहीं हो जाता। जैसे—'राम ने रावण को मारा/'या 'रावण को मारा राम ने/'या 'मारा राम ने रावण को।'

लेकिन हिन्दी भाषा के वाक्य में पदों के स्थान-क्रम में परिवर्तन होने से वाक्यार्थ सहज समझ में नहीं आ पाता। वाक्यार्थ सहज समझ में आ जाय, इसलिए हिन्दी भाषा के वाक्य में पहला स्थान कर्ता पद का होता है, दूसरा स्थान कर्म (सकर्मक क्रिया के साथ) पद का होता है और अन्तिम स्थान क्रिया पद का होता है। साथ ही साथ विशेषण पद का स्थान विशेष्य पद के पहले होता है और क्रिया-विशेषण पद का स्थान क्रिया पद के पहले वाक्य में कहीं भी होता है। जैसे—"राम ने दुष्ट रावण को युद्ध में बाण से मारा।" इस योगात्मक वाक्य में 'राम ने' कर्ता पद है, जिसे वाक्य के आरम्भ में स्थान-क्रम दिया गया है, 'रावण को' कर्म पद है जिसे कर्ता पद के बाद स्थान-क्रम दिया गया है और 'मारा' क्रिया पद है, जिसे वाक्य के अन्त में स्थान दिया गया है। 'दुष्ट' विशेषण पद है, जिसे विशेष्य पद 'रावण' के पहले स्थान क्रम दिया गया है। 'युद्ध में' स्थानसूचक क्रिया-विशेषण पद को और 'बाण से' साधन सूचक क्रिया-विशेषण पद को क्रिया पद के पहले स्थान-क्रम दिया गया है। इस प्रकार हिन्दी भाषा के वाक्य में सहज अर्थ-बोध होने के लिए निश्चित पद-क्रम महत्व का है।

स्पष्ट है कि 'चयन' तथा 'क्रम' वाक्य में पद-विन्यास की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

3. वाक्य के प्रकार

क्रिया, भाव या अर्थ, रचना और आकृति इन चार आधारों को लेकर वाक्य के प्रकार अर्थात् भेद किए जाते हैं।

(1) क्रिया के आधार पर वाक्य के प्रकार—वाक्य में क्रिया का अस्तित्व कभी प्रत्यक्ष रूप से बना रहता है, तो कभी परोक्ष रूप से बना रहता है। इसलिए जिस वाक्य में प्रत्यक्ष रूप से क्रिया का अस्तित्व बना रहता है, उसे 'क्रियायुक्त वाक्य' कहा जाता है और जिस वाक्य में परोक्ष रूप से क्रिया का अस्तित्व बना रहता है,

उसे 'क्रियारहित वाक्य' कहा जाता है। इस प्रकार क्रिया के आधार पर वाक्य के दो प्रकार किये जाते हैं—(क) क्रियायुक्त वाक्य, (ख) क्रियारहित वाक्य।

(क) **क्रियायुक्त वाक्य**—प्रायः ऐसे ही वाक्य का प्रयोग किया जाता है, जिसमें प्रत्यक्ष रूप से क्रिया का अस्तित्व बना रहता है। जैसे—लड़का **चलता है**। लड़की पुस्तक पढ़ती है। सुनीत ने गाया **गाया**। उज्ज्वल शक्कर **लाया**। राहुल खेल **खेलेगा**।

(ख) **क्रियारहित वाक्य**—कभी ऐसे भी वाक्य का प्रयोग होता है, जिसमें परोक्ष रूप से क्रिया का अस्तित्व बना रहता है। जैसे—प्रश्नोत्तरात्मक वाक्यों में प्रायः परोक्ष रूप से ही क्रिया का अस्तित्व बना रहता है—

उज्ज्वल—सुनीत ने गाना गाया, **पर तुमने ?**

राहुल—**मैंने भी**।

उज्ज्वल—कल तुम कहाँ थे ?

राहुल—**घर पर**।

इस प्रकार यहाँ 'पर तुमने ?', 'मैंने भी।', 'घर पर।' ये तीनों भी **'क्रिया-रहित वाक्य'** हैं। क्योंकि 'पर तुमने ?' इस क्रियारहित वाक्य में **'गाया'** इस क्रिया का अस्तित्व परोक्ष रूप से है। 'मैंने भी।' इस क्रियारहित वाक्य में भी **'गाया'** इस क्रिया का अस्तित्व परोक्ष रूप से है। 'घर पर।' इस क्रियारहित वाक्य में **'था'** इस क्रिया का अस्तित्व परोक्ष रूप से ही है।

विशिष्ट भावावेग में उच्चारित एक शब्द भी प्रायः क्रियारहित वाक्य होते हैं। जैसे—भय के भावावेग में उच्चारित 'भूकम्प !', 'आग !', 'साँप !', 'शेर !' शब्द भी क्रियारहित वाक्य ही हैं। क्योंकि यहाँ 'भूकम्प !' इस एक शब्दीय (एक पदीय) वाक्य में 'हुआ' या 'हो रहा है' इस क्रिया का अस्तित्व परोक्ष रूप से है। 'आग !' इस एक शब्दीय वाक्य में 'लगी' इस क्रिया का अस्तित्व परोक्ष रूप से है। 'साँप' या 'शेर' एक शब्दीय वाक्य में 'आ गया' इस क्रिया का अस्तित्व परोक्ष रूप से है।

बहुत से शीर्षक भी क्रियारहित वाक्य ही होते हैं। जैसे—**'गोदान'** यह शीर्षक एक शब्दीय वाक्य 'क्रियारहित वाक्य' ही है। क्योंकि यहाँ **'करना है।'** (गोदान करना है।) यह क्रिया परोक्ष रूप से है। **'बड़े घर की बहू'** यह शीर्षक भी क्रियारहित वाक्य है। क्योंकि यहाँ **'होती है'** (बड़े घर की बहू ऐसी ही **होती है**।) क्रिया परोक्ष रूप से है।

प्रायः लोकोक्तियाँ (मुहावरे और कहावतें) क्रियारहित वाक्य होती हैं। जैसे—जिसकी लाठी उसकी भैंस, जैसी करनी वैसी भरनी, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और।

काव्य-भाषा में 'क्रियारहित वाक्य' का बहुत प्रयोग होता है। जैसे—कवि 'निराला' ने निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों में क्रियारहित वाक्यों का प्रयोग किया है—

'तुम तुंग हिमालय शृंग (यहाँ 'हो' क्रिया परोक्ष रूप से है।)
और मैं चंचल गति सुर-सरिता' (यहाँ 'हूँ' क्रिया परोक्ष रूप से है।)

इस प्रकार व्यवहार में क्रियारहित वाक्य भी प्रयुक्त होता रहता है। क्रिया-रहित वाक्य को 'लुप्तपद वाक्य' भी कहा जाता है।

(2) **भाव या अर्थ के आधार पर वाक्य के प्रकार**—भाव या अर्थ के आधार को लेकर वाक्य के आठ प्रकार किये जाते हैं—

(अ) विधानार्थक वाक्य—राहुल दौड़ता है। उज्ज्वल पुस्तक पढ़ता है। सुनीत बैठा है।

(आ) निषेधार्थक वाक्य—राहुल नहीं दौड़ता। उज्ज्वल पुस्तक नहीं पढ़ता। सुनीत नहीं बैठा।

(इ) आज्ञार्थक वाक्य—राहुल दौड़। उज्ज्वल पुस्तक पढ़ो। सुनीत बैठो।

(ई) प्रश्नार्थक वाक्य—राहुल दौड़ता है? उज्ज्वल पुस्तक पढ़ता है? सुनीत बैठा है?

(उ) विस्मयार्थक वाक्य—राहुल दौड़ता है! उज्ज्वल पुस्तक पढ़ता है! सुनीत बैठा है!

(ऊ) सदेहार्थक वाक्य—शायद राहुल दौड़ता है। उज्ज्वल पुस्तक पढ़ता होगा। कचाचित् सुनीत बैठा है।

(ए) इच्छार्थक वाक्य—राहुल, उज्ज्जल, सुनीत, तुम्हारा कल्याण हो।

(ऐ) संकेतार्थक वाक्य—यदि राहुल दौड़ता, तो उज्ज्वल और सुनीत भी दौड़ते। यदि तुम अच्छी तरह पढ़ोगे, तो अवश्य उत्तीर्ण हो जाओगे।

(3) **रचना के आधार पर वाक्य के प्रकार**—रचना के आधार पर वाक्य के मुख्य तीन प्रकार किये जाते हैं—(च) सरल वाक्य या साधारण वाक्य, (छ) मिश्र वाक्य, और (ज) संयुक्त वाक्य।

(च) **सरल वाक्य या साधारण वाक्य**—जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय अर्थात् एक कर्ता व एक समापिका क्रिया होती है उसे 'सरल वाक्य' या 'साधारण वाक्य' कहते हैं। जैसे—लड़का चला। यहाँ 'लड़का' वाक्य का उद्देश्य और कर्ता भी है। 'चला' वाक्य का विधेय अर्थात् वाक्य की क्रिया है। 'चला' यह अकर्मक क्रिया होने के कारण 'लड़का चला।' यह 'अकर्मकीय सरल वाक्य' है।

जब वाक्य में 'अकर्मक अपूर्ण क्रिया' होती है, तब 'कर्तृपूरक अकर्मकीय सरल वाक्य' की रचना होती है। जैसे—लड़की सुन्दर है। यहाँ 'सुन्दर' कर्तृपूरक पद है।

जब वाक्य में 'एक कर्मक क्रिया' होती है, तब 'एक कर्मकीय सरल वाक्य' की रचना होती है। जैसे—लड़की ने पुस्तक पढ़ी। यहाँ 'पुस्तक' एक कर्मपद है।

जब वाक्य में 'एक कर्मक अपूर्ण क्रिया' होती है, तब 'कर्मपूरक एक कर्मकीय सरल वाक्य' की रचना होती है। जैसे—लड़की ने पुस्तक को उपयोगी माना। यहाँ 'उपयोगी' कर्मपूरक पद है।

जब वाक्य में 'द्विकर्मक क्रिया' होती है, तब 'द्विकर्मकीय सरल वाक्य' की

रचना होती है। जैसे—लड़की ने लड़के को फूल दिया। यहाँ 'लड़के को' गौण कर्म पद है और 'फूल' मुख्य कर्म पद है।

(छ) मिश्र वाक्य—जिस वाक्य में एक मुख्य वाक्य या प्रधान वाक्य होता है और उसके साथ एक या अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं, 'मिश्र वाक्य' कहते हैं। जैसे—"मैं चाहता हूँ कि मेरा बेटा डॉक्टर बन जाय।" इस मिश्र वाक्य में 'मैं चाहता हूँ।' यह प्रधान उपवाक्य है और 'कि मेरा बेटा डॉक्टर बन जाय।' यह आश्रित उपवाक्य है, जो प्रधान वाक्य का कर्म है। "यह वही लड़की है, जो बहुत सुन्दर है।" इस मिश्र वाक्य में 'यह वही लड़की है।' यह प्रधान वाक्य है और 'जो बहुत सुन्दर है।' यह आश्रित उपवाक्य है, जो 'लड़की' की विशेषता बताने वाला विशेषण उपवाक्य है।

(ज) संयुक्त वाक्य—जिस वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं, उसे 'संयुक्त वाक्य' कहते हैं। जैसे—'राहुल आ गया, उज्ज्वल आ गया और सुनीत भी आ गया।' यहाँ तीनों वाक्य प्रधान उपवाक्य हैं, इसलिए यह 'संयुक्त वाक्य' है।

(4) आकृति के आधार पर वाक्य के प्रकार—आकृति को आधार बनाकर वाक्य के मुख्य दो प्रकार किये जाते हैं—(ट) अयोगात्मक वाक्य और (ठ) योगात्मक वाक्य। यहाँ 'आकृति' का सम्बन्ध 'सम्बन्ध तत्व' के साथ है।

(ट) अयोगात्मक वाक्य—जिस वाक्य में केवल अर्थतत्व की प्रधानता के कारण निश्चित वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अपने मूल रूप में ही प्रत्येक शब्द का (पद का) स्थान-क्रम ही सम्बन्ध तत्व कार्य करता है, उसे 'अयोगात्मक वाक्य' कहते हैं। अयोगात्मक वाक्य में जो मूल अर्थात् प्रकृत शब्दों का जो स्थान-क्रम होता है, उसमें परिवर्तन कर दिया गया तो वाक्यार्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार की वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए अयोगात्मक चीनी भाषा के वाक्य का उदाहरण दिया जा सकता है।

(अ) 'पा ताङ् शेन'=पा मारता है शेन को=पा शेन को मारता है।

(आ) 'शेन ताङ् पा'=शेन मारता है पा को=शेन पा को मारता है।

यहाँ अयोगात्मक वाक्य (अ) में जो शब्दों (पदों) का विशिष्ट स्थान-क्रम जिस वाक्यार्थ के साथ सम्बन्ध रखता है, उसी वाक्यार्थ में अयोगात्मक वाक्य (आ) में परिवर्तन हुआ है, क्योंकि अयोगात्मक वाक्य (आ) में शब्दों (पदों) के स्थान-क्रम में परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार अयोगात्मक वाक्य में अन्य किसी भी प्रकार के प्रत्यय के बिना केवल शब्द (पद) का स्थान-क्रम ही सम्बन्ध तत्व का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

उपर्युक्त अयोगात्मक वाक्य (अ) में 'पा' (शब्द या पद) पहले स्थान-क्रम पर कर्ता का अर्थसूचक है, तो अयोगात्मक वाक्य (अ) में अन्तिम स्थान-क्रम पर सप्रत्यय कर्म का अर्थसूचक है। इसके विरुद्ध अयोगात्मक वाक्य (अ) में 'शेन' (शब्द या पद) अन्तिम स्थान-क्रम पर सप्रत्यय कर्म का अर्थ सूचक है, तो अयोगात्मक वाक्य (आ) में

पहले स्थान-क्रम पर कर्ता का अर्थ सूचक है। स्पष्ट है कि शब्द (पद) के स्थान-क्रम में परिवर्तन होने से अर्थ-परिवर्तन भी हो जाता है, जो अयोगात्मक वाक्य की प्रधान विशेषता है।

(ठ) योगात्मक वाक्य—जिस वाक्य में निश्चित वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अर्थ तत्व और सम्बन्ध के समन्वय (योग) पर आधारित पद-क्रम महत्व का कार्य करता है, उसे योगात्मक वाक्य कहते हैं।

योगात्मक वाक्य में लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल आदि से सम्बन्धित अर्थ-सूचक भिन्न-भिन्न प्रत्यय सम्बन्ध तत्व के रूप में मूल शब्द (पद) के साथ जुड़े रहते हैं, जिससे मूल शब्द के रूप में कुछ परिवर्तन होकर उसका परिवर्तित अर्थात् विकृत रूप भी बन जाता है। योगात्मक वाक्य में कभी-कभी शब्द (पद) के साथ शून्य सम्बन्ध तत्व भी होता है।

योगात्मक वाक्य की तीन प्रकार की विशिष्ट स्थितियों को ध्यान में रखकर उसके तीन प्रकार माने जाते हैं—(ठ-1) अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य, (ठ-2) श्लिष्ट योगात्मक वाक्य, और (ठ-3) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य।

(1) **अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य**—जिस योगात्मक वाक्य में अर्थ तत्व के साथ सम्बन्ध तत्व के रूप में विभक्ति प्रत्ययों के अलावा अन्य प्रत्ययों की प्रधानता होती है, उसे **'अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य'** कहते हैं। जैसे, 'गायें, घोड़ी तथा बैल, दौड़े।' यह हिन्दी भाषा का 'अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य' है, क्योंकि इसमें अर्थ तत्व के साथ सम्बन्ध तत्व के रूप में विभक्ति प्रत्ययों के अलावा अन्य प्रत्ययों की प्रधानता इस प्रकार है—

गाय (अर्थ तत्व=मूल शब्द)+एँ (बहुवचन प्रत्यय)=गायें (पद)
घोड् (अर्थ तत्व= ,,)+ई (स्त्रीलिंग प्रत्यय)=घोड़ी (पद)
बैल (,, = ,,)+० (बहुवचन प्रत्यय)=बैल (पद)
दौड् (,, = धातु)+ए (पुल्लिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, सामान्य भूतकाल प्रत्यय)=दौड़े (पद)

इस प्रकार यहाँ अर्थतत्व के साथ सम्बन्ध तत्व के रूप में लिंग, वचन, पुरुष तथा काल से सम्बन्धित प्रत्ययों की प्रधानता है। इसलिए यह 'अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य' है।

(2) **श्लिष्ट योगात्मक वाक्य**—जिस योगात्मक वाक्य में अर्थतत्व के साथ सम्बन्ध तत्व के रूप में विभक्ति प्रत्ययों की प्रधानता होती है, उसे **'श्लिष्ट योगात्मक वाक्य'** कहते हैं। जैसे, "राम ने रावण को बाण से युद्ध में मारा।" यह हिन्दी भाषा का 'श्लिष्ट योगात्मक वाक्य' है, क्योंकि इसमें अर्थतत्व के साथ सम्बन्ध तत्व के रूप में विभक्ति प्रत्ययों की प्रधानता इस प्रकार है—

राम (अर्थतत्व=मूल शब्द)+ने [सप्रत्यय कर्ता सूचक कारक (विभक्ति) प्रत्यय]=राम ने (पद)

रावण (,, = ,,)+को [सप्रत्यय कर्म सूचक कारक (विभक्ति) प्रत्यय]=रावण को (पद)

बाण (,, = ,,)+से [साधन-सूचक करण कारक (विभक्ति) प्रत्यय]=बाण से (पद)

युद्ध (,, = ,,)+में [स्थल सूचक अधिकरण कारक (विभक्ति) प्रत्यय]=युद्ध में (पद)

'से' तथा 'में' के योग से 'बाण से' और 'युद्ध में' ये पद क्रिया-विशेषण-सूचक बन गये हैं।

(3) **प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य**—उस एक पदीय (एक शब्दीय) योगात्मक वाक्य को 'प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य' कहते हैं, जो सभी शब्दों के थोड़े-थोड़े अंश को ग्रहण करके (अर्थात् सभी शब्दों के थोड़े-थोड़े अंश को छोड़ के) बन जाता है। जैसे, मेक्सिकन भाषा का एक पदीय वाक्य 'नीनकक' (मैं माँस खाता हूँ) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य है, जिसमें 'नेचत्ल' (मैं), 'नकत्ल' (माँस), 'क' (खाना) इन शब्दों के थोड़े-थोड़े अंश का पूर्ण योग है। इस प्रकार के वाक्य को **'पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य'** भी कहते हैं।

हिन्दी, अँग्रेजी आदि भारोपीय भाषाएँ योगात्मक भाषाएँ हैं, क्योंकि उनके वाक्य 'योगात्मक वाक्य' हैं। योगात्मक वाक्य में अर्थ तत्व के साथ सम्बन्ध तत्व के रूप में जिन विभिन्न प्रत्ययों का योग होता है, वह पूर्व प्रत्यय, मध्य प्रत्यय तथा पर प्रत्यय के रूप में होता है। जैसे, अ(पूर्व प्रत्यय)+दृश्य=अदृश्य, (मुण्डा भाषा में) मंझि (मुखिया)+प (बहुवचन मध्य प्रत्यय)=मंपझि (मुखिए), सुन्दर+ता (पर प्रत्यय)=सुन्दरता।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त चार आधारों को लेकर वाक्य के प्रकार किये जाते हैं।

4. वाक्य-परिवर्तन के कारण

वाक्य में अर्थात् वाक्य-रचना में भी कुछ कारणों से परिवर्तन होता है, जिसका विचार ऐतिहासिक वाक्य-विज्ञान करता है।

(1) **संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ने के कारण**—भाषा की संयोगावस्था सहज समझ में आने की दृष्टि से जटिल रहती है। इसके विरुद्ध भाषा की वियोगावस्था सहज समझ में आने की दृष्टि से सरल होती है। इसलिए किसी भाषा की संयोगावस्थावाली जटिल वाक्य-रचना धीरे-धीरे वियोगावस्थावाली सरल वाक्य-रचना बन जाती है। संयोगावस्था के कारण संस्कृत भाषा की जटिल वाक्य-रचना अधिक से अधिक वियोगावस्था की ओर बढ़कर सरल वाक्य-रचना बनने के प्रयत्न में ही प्रथम पाली भाषा का रूप धारण कर गयी, पाली भाषा प्राकृत भाषाओं

का रूप धारण कर गयी, प्राकृत भाषाएँ अपभ्रंश भाषाओं का रूप धारण कर गयीं और अपभ्रंश भाषाएँ हिन्दी, मराठी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का रूप धारण कर गयीं, जिनकी वाक्य-रचना अधिक से अधिक वियोगावस्था वाली होकर सरल बन गयी है।

(2) **विभक्तियों या प्रत्ययों के घिस जाने के कारण**—काल की गति के साथ भाषा में जो विकास होता है, उसमें विभक्तियों या प्रत्ययों का घिसना चलता रहता है, जिससे वाक्य-रचना में परिवर्तन होता रहता है। संस्कृत भाषा की वाक्य-रचना में अनेक विभिक्तियों या प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता था। इसलिए संस्कृत भाषा के वाक्य में प्रयुक्त लगभग सभी पद विभक्ति या प्रत्यय से युक्त रहते थे और वाक्य में किसी भी क्रम पर प्रत्येक पद अपना विशिष्ट अर्थ सुरक्षित रखता था। इस कारण से संस्कृत वाक्य-रचना में पद-क्रम मुक्त रहता था। जैसे, संस्कृत में 'रामः' यह विभक्ति युक्त पद कर्ता का बोधक है, तो 'रामं' यह विभक्ति युक्त पद कर्म का बोधक है। इसलिए संस्कृत वाक्य-रचना में इन पदों का प्रयोग किसी भी क्रम पर करने से इनके अर्थ में परिवर्तन नहीं होता था। इसलिए संस्कृत वाक्य-रचना में मुक्त पद-क्रम रहता था, लेकिन आगे चलकर विभक्तियों का प्रत्ययों के घिस जाने के कारण हिन्दी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं की वाक्य-रचना में निश्चित व्यवस्था के आधार पर बद्ध पद-क्रम का प्रयोग होने लगा है। इससे हिन्दी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं की वाक्य-रचना में 'कर्ता-बोधक पद' का प्रथम स्थान होता है, कर्मकीय वाक्य में 'कर्म-बोधक पद' का स्थान होता है और क्रिया-पद का स्थान अन्त में होता। इस पद-क्रम में परिवर्तन करने से अर्थ-परिवर्तन भी हो जाता है। ऐसा न हो, इसलिए वाक्य-रचना में निश्चित व्यवस्था पर आधारित पद-क्रम का पालन करना आवश्यक है—

समुचित अर्थ			पद-क्रम-परिवर्तन के कारण अर्थ-परिवर्तन/अनुचित अर्थ		
कर्ता	कर्म	क्रिया	कर्ता के स्थान पर कर्म कर्ता बनना / कर्म के स्थान पर कर्ता का बनना		
बाघ	हरिण	खाता है।	हरिण	बाघ	खाता है।
बाघ	हरिण	खातो. (मराठी में)	हरिण	बाघ	खाते.
कर्ता	क्रिया	कर्म	कर्ता	क्रिया	कर्म
Tiger	eats	Deer (अंग्रेजी में)	Deer	eats	Tiger

विभक्तियों के घिसने के कारण हिन्दी, मराठी या किसी भी आधुनिक आर्य भाषा की वाक्य-रचना में अर्थ की स्पष्टता के लिए सहायक शब्दों के रूप में परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग करना आवश्यक होता है। जैसे,

रामः गच्छति/(संस्कृत में) राम जाता है (हिन्दी में 'है' सहायक क्रिया है।)

(3) **स्पष्टता और बल के लिए अतिरिक्त शब्द या शब्दों के प्रयोग के कारण**—वाक्य में अर्थ तथा व्याकरण की दृष्टि से अधिक स्पष्टता लाने तथा बल

देने के उद्देश्य से अतिरिक्त शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिससे वाक्य-परिवर्तन के रूप में अतिरिक्त शब्द (पद) वाला वाक्य बन जाता है। जैसे,

कृपया, पत्रोत्तर दीजिएगा। ('कृपया' अतिरिक्त शब्द/पद है।)

इस वाक्य में 'दीजिएगा' यह परोक्ष विधिकालसूचक पद ही आदर का अर्थ-बोध कराने वाला पद है, इसलिए इस वाक्य में वही अर्थ व्यक्त करने के लिए 'कृपया' इस अतिरिक्त पद के प्रयोग की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी अर्थ की स्पष्टता तथा बल के लिए 'कृपया' अतिरिक्त पद का प्रयोग हुआ है।

अंग्रेजी भाषा के वाक्य 'He is returning back' में भी 'returning' इस पद से 'लौट आने' का अर्थ व्यक्त होता है, अतः इस वाक्य में 'back' पद का अतिरिक्त प्रयोग है, जो स्पष्टता तथा बल के लिए हुआ है।

(4) नवीनता के आग्रह के कारण—कभी-कभी नवीनता के आग्रह के कारण भी वाक्य-रचना व्यवस्था में परिवर्तन होता है। जैसे, हिन्दी वाक्य-रचना में संज्ञा के बाद 'मात्र' का प्रयोग किया जाता था, अब नवीनता के आग्रह के कारण 'मात्र' का प्रयोग संज्ञा के पहले किया जाने लगा है—

पहली वाक्य-रचना— उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र मात्र है।

नवीन वाक्य-रचना—उपान्यास मानव-चरित्र का मात्र चित्र है।

जो विशेषण पदबन्ध संज्ञा शब्द से पहले आते थे वे अब नवीनता के आग्रह के कारण संज्ञा शब्द के बाद में आकर वाक्य-रचना में परिवर्तन करते हैं—

यह तो जीवन भर का काम है। (प्रचलित प्रयोग)

यह काम तो जीवन भर का है। (नवीन प्रयोग)

यह दो दिन की जिन्दगी है। (प्रचलित प्रयोग)

यह जिन्दगी दो दिन की है। (नवीन प्रयोग)

(5) बोलने वाले की विशिष्ट मनोदशा के कारण—बोलने वाले की विशिष्ट मनोदशा वाक्य-रचना पर ऐसा प्रभाव डालती है, जिससे वाक्य-रचना में परिवर्तन होता रहता है। जैसे, हर्षमय मनोदशा में 'आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।' कहने के बदले 'बहुत प्रसन्न हूँ आज मैं!' ऐसा कहने से वाक्य-रचना में परिवर्तन हो जाता है। 'हाय! मेरा सब कुछ लुट गया!' ऐसा कहने के बदले दुःखातिरेक की मनोदशा में 'हाय! लुट गया सब कुछ मेरा!' ऐसा कहा जाता है, जिससे वाक्य-रचना में परिवर्तन हो जाता है। वास्तव में मन की विभिन्न दशाओं के रूप में विभिन्न भावदशाएँ कविता के माध्यम से व्यक्त होती है, जिससे वाक्य-परिवर्तन बहुत-अधिक होता है। जैसे—

होता हूँ प्रसन्न मैं काम भला देखकर
पर उनको प्रिय लगता जलते ही रहना!

—डॉ० ज्ञानराज गायकवाड़

(6) **अन्य भाषा के प्रभाव के कारण**—किसी कारण जब दो भाषाएँ एक-दूसरी के सम्पर्क में आ जाती हैं, तब उनमें से किसी भाषा के प्रभाव के कारण दूसरी भाषा की वाक्य-रचना में कुछ परिवर्तन हो जाता है। फारसी भाषा के प्रभाव से हिन्दी वाक्य-रचना में एकवचन आदरार्थी अप्रत्यय कर्ता के साथ बहुवचन क्रिया का प्रयोग होने लगा और वाक्य-रचना में जहाँ पर 'कि' का प्रयोग अनावश्यक है, वहाँ पर भी उसका प्रयोग होने लगा। जैसे—मेरे गुरुजी आये हैं। ('गुरुजी आदरार्थी एकवचन अप्रत्यय कर्ता के साथ 'आये हैं' बहुवचन क्रिया का प्रयोग।)। वह मेरा मित्र है कि जो अच्छा गायक है (इस मिश्र वाक्य में 'कि' का प्रयोग अनावश्यक है।)।

अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से भी हिन्दी वाक्य-रचना में कुछ परिवर्तन होता है। अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से हिन्दी मिश्र वाक्य में भी विशेषण उपवाक्य (Adjective clause) बीच में आने लगा है। जैसे—

'वह मनुष्य जो चोर था, कल आया था।'

इस मिश्र वाक्य में अंग्रेजी भाषा के मिश्र वाक्य के समान 'जो चोर था' यह यह विशेषण उपवाक्य बीच में आ गया, जो प्रधान उपवाक्य 'वह मनुष्य कल आया था' के बाद आना चाहिए—'वह मनुष्य कल आया था, जो चोर था।' लेकिन हिन्दी की इस प्रकार की स्वाभाविक वाक्य-रचना में अंग्रेजी भाषा के प्रभाव के कारण बाधा पड़ती है; क्योंकि अंग्रेजी में इस मिश्र वाक्य का प्रयोग इस तरह होता है—'The man who was a thief, had come yesterday'. इस प्रकार की अंग्रेजी वाक्य-रचना के प्रभाव के कारण ही हिन्दी वाक्य-रचना में परिवर्तन होता है—'राहुल जो अभियन्ता है, कल आया है।' इस प्रकार मिश्र वाक्य के बीच में ही आश्रित उपवाक्य का आना अंग्रेजी भाषा का प्रभाव है।

हिन्दी वाक्य-रचना में भविष्यकाल के अर्थ में अपूर्ण वर्तमान काल का प्रयोग भी अंग्रेजी भाषा का ही प्रभाव है—

'उषा कल आ रही है। आशा अगले सप्ताह अजन्ता जा रही है।'

हिन्दी वाक्य-रचना पर अंग्रेजी की डाइरेक्ट वाक्य-रचना से इन-डाइरेक्ट वाक्य-रचना करने की पद्धति का भी कुछ प्रभाव पड़ता है। जैसे—हिन्दी की स्वाभाविक वाक्य-रचना के रूप में 'राम ने श्याम से कहा कि मैं कॉलेज जाऊँगा।' इस प्रकार कहा जायेगा। लेकिन अंग्रेजी में इसी वाक्य की रचना इस प्रकार होती है—'Ram told Shyam that he would go to collage.' इस प्रकार की वाक्य-रचना के प्रभावस्वरूप हिन्दी में भी 'राम ने श्याम से कहा कि वह कॉलेज जाएगा।' ऐसा वाक्य प्रयोग होता है। यहाँ 'मैं' उत्तम पुरुष सर्वनाम के स्थान पर 'वह' अन्य पुरुष सर्वनाम का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार अन्य भाषा के प्रभाव से भाषा की वाक्य-रचना में परिवर्तन होता रहता है। अन्य भाषा के प्रभाव के साथ-साथ उपर्युक्त अन्य कारणों से भी भाषा की वाक्य-रचना में परिवर्तन होता है।

5. वाक्य परिवर्तन की दिशाएँ

ऐतिहासिक वाक्य-विज्ञान वाक्य-परिवर्तन की दिशाओं का भी विचार करता है और वाक्य-परिवर्तन की कुछ दिशाओं को भी स्पष्ट करता है।

(1) **वचन सम्बन्धी परिवर्तन की दिशा**—हिन्दी वाक्य-रचना में आदरार्थी अप्रत्यय कर्ता के साथ क्रिया बहुवचन में आने लगी है और आकारान्त विशेषण भी बहुवचन में आने लगा है। जैसे—

मेरे अच्छे गुरु आये हैं। मास्टरजी आ रहे हैं।

हिन्दी का मध्यम पुरुष 'तुम' सर्वनाम और अंग्रेजी का 'You' सर्वनाम अधिकतर एकवचन में ही वाक्य-रचना में प्रयुक्त होते हैं।

(2) **लिंग सम्बन्धी परिवर्तन की दिशा**—संस्कृत वाक्य-रचना में कर्ता या कर्म के लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तित नहीं होती थी, परन्तु हिन्दी वाक्य-रचना में कर्ता या कर्म के लिंग के अनुसार क्रिया में परिवर्तन होता है—

रामः गच्छति (संस्कृत से हिन्दी में) राम जाता है।
सीता गच्छति (,, ,, ,, ,,) सीता जाती है।

राम ने ग्रन्थ पढ़ा।
सीता ने ग्रन्थ पढ़ा।
राम ने पुस्तक पढ़ी।

(3) **पुरुष सम्बन्धी परिवर्तन की दिशा**—पहले हिन्दी का मिश्र वाक्य इस प्रकार हुआ करता था—

राम ने कहा कि मैं कॉलेज जाऊँगा।

लेकिन अंग्रेजी भाषा के प्रभावस्वरूप अब प्रस्तुत मिश्र वाक्य में उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम 'मैं' के स्थान पर 'वह' का प्रयोग होता है और उसी के अनुरूप ही क्रिया-रूप आने लगा है—

राम ने कहा कि वह कॉलेज जाएगा।

(4) **लोप के रूप में परिवर्तन की दिशा**—पूर्ववर्ती वाक्य-प्रयोग में कुछ लुप्त हो जाने से वाक्य कुछ छोटा होने लगा—

पूर्ववर्ती वाक्य-प्रयोग	परवर्ती नवीन वाक्य-प्रयोग
लड़का नहीं आता है।	लड़का नहीं आता। ('है' का लोप)
लड़की नहीं आ रही है।	लड़की नहीं आ रही। ('है' का लोप)
आँखों से देखा दृश्य।	आँखों-देखा दृश्य। ('से' का लोप)
वह पढ़ा और लिखा है।	वह पढ़ा-लिखा है। ('और' का लोप)

(5) **आगम के रूप में परिवर्तन की दिशा**—अतिरिक्त शब्द के प्रयोग से वाक्य कुछ बड़ा होता है—

कृपया आप पत्रोत्तर दीजिएगा। कृपा करके आप पत्र लिखिएगा।

(6) **पद-क्रम-परिवर्तन की दिशा**—विभिन्न मनोदशाओं के परिणामस्वरूप पद-क्रम में परिवर्तन होने से वाक्य-परिवर्तन होता है—बहुत खुश हूँ मैं आज। आश्चर्य ! कैसे लिखी कविता तूने ? आह ! लूट गया उसका सब कुछ !

इस प्रकार कुछ दिशाओं में वाक्य-परिवर्तन हो जाता है।

6. वाक्य सम्बन्धी रचना के प्रकार

वाक्य सम्बन्धी रचना या (1) पूर्ण वाक्यात्मक, या (2) अपूर्ण वाक्यात्मक, या (3) अन्तः केन्द्रिक (Endocentric), या (4) बहिष्केन्द्रिक (Exocentric) प्रकार की होती है, जो रचना (Construction) पूर्ण वाक्य के रूप में होती है, उसे **'पूर्ण वाक्यात्मक रचना'** कहा जाता है। इसके विरुद्ध जो रचना अपूर्ण वाक्य के रूप में होती है, उसे **'अपूर्ण वाक्यात्मक रचना'** कहा जाता है।

(1) **'पूर्ण वाक्यात्मक रचना'** में आवश्यक सभी पदात्मक घटकों का प्रयोग होता है, तो इसके विरुद्ध (2) **'अपूर्ण वाक्यात्मक रचना'** में आवश्यक पदात्मक घटकों में से कुछ का ही प्रयोग होता है और कुछ का लोप रहता है। जैसे–(क) मैं आज सवेरे सवेरे रेलगाड़ी से अपने घर जा रहा हूँ। (ख) दोपहर तक पहुँच जाऊँगा।

इन दो वाक्यों में से वाक्य (क) पूर्ण वाक्यात्मक रचना है, क्योंकि उसमें आवश्यक सभी पदात्मक घटकों का प्रयोग हुआ है, लेकिन वाक्य (ख) अपूर्ण वाक्यात्मक रचना है, क्योंकि इसमें आवश्यक पदात्मक घटकों में से कुछ ही का प्रयोग हुआ है और 'मैं', 'घर' इन पदात्मक घटकों का लोप हुआ है।

प्रश्नोत्तरात्मक वाक्य-रचना में 'अपूर्ण वाक्यात्मक रचना' अधिक प्रयोग होता है। जैसे—सुनीत—क्या आज हम सब सिनेमा देखने जायेंगे ?

उज्ज्वल—कल जायेंगे। आज ही क्यों ?

राहुल—मैं आज ही साथ में आ सकूँगा। कल नहीं।

सुनीत—फिर ?

उपर्युक्त काले छपे वाक्य **'अपूर्ण वाक्यात्मक रचना'** ही है, क्योंकि इन वाक्यों में आवश्यक पदात्मक घटकों में से कुछ लोप हुआ है।

विशेष यह है कि अपूर्ण वाक्यात्मक रचना का अर्थ समझने के लिए सन्दर्भ-विशेष के आधार पर उसे 'पूर्ण वाक्यात्मक रचना' का रूप देने का काम श्रोता या पाठक को करना पड़ता है।

(3) **'अन्त:केन्द्रिक वाक्यात्मक रचना'** उसे कहा जाता है, जिसका केन्द्र उसी के भीतर ही होता है, जो पूरी रचना के स्थान पर आ सकता है। 'सुन्दर लड़की आयी।' इस वाक्य में 'लड़की' केन्द्र है, जो 'सुन्दर लड़की' इस पूरी रचना के स्थान पर आ सकता है—'लड़की आयी।' इसलिए यह वाक्य 'अन्तःकेन्द्रिक रचना' है। अन्तःकेन्द्रिक के विभिन्न रूप हो सकते हैं—विशेषण+संज्ञा (सुन्दर लड़की), प्रविशेषण+विशेषण (बहुत सुन्दर), क्रिया विशेषण+क्रिया (तेज दौड़ा), प्रक्रिया-

विशेषण+क्रियाविशेषण (बहुत तेज)। यहाँ काले छपे पद 'केन्द्र' ही हैं, जिनके कारण रचनाएँ 'अन्तःकेन्द्रिक' बन जाती हैं।

अन्तःकेन्द्रिक रचना दो प्रकार की होती हैं—(अ) आश्रित (Subordinate) और (आ) समानाधिकरण (Coordinative)। 'आश्रित अन्तःकेन्द्रिक रचना' में एक केन्द्र होता है और दूसरा उसकी किसी प्रकार की विशेषता सूचित करता है, जैसे—सुन्दर लड़की, भला आदमी, तेज दौड़ा। केन्द्र और विशेषक इस प्रकार आते रहते हैं—(1) विशेषक+केन्द्र (चतुर लड़का, बड़ा घर, नहीं जा सका, तेज चला); (2) केन्द्र +विशेषक (बैल कहीं का); (3) केन्द्र+विशेषक+केन्द्र (जा नहीं सका); विशेषक +केन्द्र+विशेषक (अच्छी पुस्तक जो मेरे हाथ में है)। यहाँ काले छपे पद ही केन्द्र हैं और उनके आश्रित विशेषक पद हैं। इसलिए इस प्रकार की रचना को 'आश्रित वर्गी रचना भी कहते हैं।

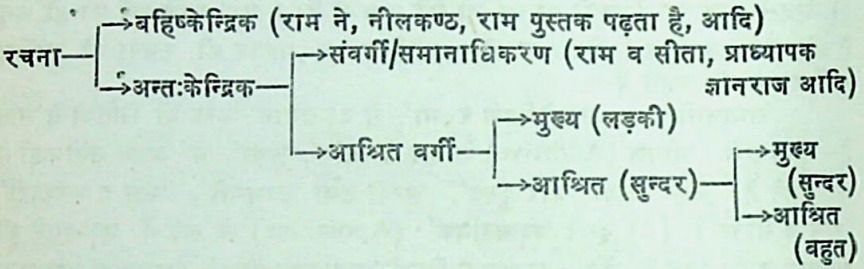
'समानाधिकरण अन्तःकेन्द्रिक रचना' में दो समान केन्द्र दो रीतियों से आते हैं—(1) एक 'योगज (Additive) के रूप में 'और', 'तथा', 'व' आदि संयोजकों से जुड़े रहते हैं, जैसे—'स्त्री और पुरुष', 'मन्त्री तथा उपमन्त्री', 'फल व तरकारी', 'राम व सीता'। (2) दूसरे 'व्याख्यायक' (Apossitive) के रूप में एक-दूसरे की व्याख्या करते रहते हैं, जैसे—राजधानी दिल्ली, महानगर मुम्बई, प्राध्यापक ज्ञानराज, पत्नी लता, बेटा राहुल। इस प्रकार की रचना को 'संवर्गी' रचना भी कहा जाता है।

(4) 'बहिष्केन्द्रिक (अकेन्द्रिक) वाक्यात्मक रचना' उसे कहा जाता है, जिसका केन्द्र उसी के भीतर नहीं होता। यह इस प्रकार हो सकती है—(1) संज्ञा/सर्वनाम+ परसर्ग=राम ने, गोपाल को, दूध में, उससे, उसकी, उनकी ओर। (2) (दोनों मिल कर विशेष अर्थ दें तब) विशेषण+संज्ञा=नीलकण्ठ, दशानन, लाल पगड़ी, बारह-सिंगा, इकतारा। (3) (विधेयात्मक रूप में) कर्ता+कर्म+सकर्मक क्रिया=राम पुस्तक पढ़ता है। कर्ता+कर्म (गौण कर्म)+कर्म (मुख्य कर्म)+सकर्मक क्रिया=राम सीता को पुस्तक देता है। (4) कर्ता+अकर्मक क्रिया=गायक चला, हवा चली, लड़की आती है। कर्ता+पूरक+योगी क्रिया=फूल कोमल है, लड़की सुन्दर है, मैं प्राध्यापक हूँ।

बहिष्केन्द्रिक रचना की महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि उसमें अन्तः-केन्द्रिक रचना के समान केवल एक या कुछ शब्द पूरी रचना के स्थान पर नहीं आ सकते। उपर्युक्त क्रम (4) के संदर्भ में जिन रचनाओं का उल्लेख हुआ है, वे सब बहिष्केन्द्रिक रचनाएँ ही हैं, क्योंकि उनमें कोई ऐसे केन्द्र नहीं हैं जो पूरी रचना के स्थान पर आ सकें। जैसे—'राम ने' इस रचना में न केवल 'राम' या न केवल 'ने' 'राम ने' का कार्य कर सकता है। यहाँ तो 'राम ने' का कार्य करने के लिए 'राम' और 'ने' इन दोनों के संयोग की ही आवश्यकता है। ठीक इसी तरह 'नीलकण्ठ' इस रचना में 'नीलकण्ठ' का कार्य करने के लिए 'नील' या 'कण्ठ' का अकेले-अकेले आना उपयोगी नहीं है, उन दोनों का मिलकर आना ही उपयोगी है। इस प्रकार 'राम पुस्तक पढ़ता है।' या 'गायक चला' रचना में किसी भी एक के प्रयोग (न 'राम'

के, न 'पुस्तक' के, न 'पढ़ता है' के अथवा न 'गायक' के न 'चला' के प्रयोग) से 'राम पुस्तक पढ़ता है' का कार्य अथवा 'गायक चला' का कार्य नहीं हो सकता, उसके लिए तो सभी के एक साथ प्रयोग की आवश्यकता होती है।

अन्तःकेन्द्रिक रचना की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें केन्द्र मुख्य होता है और विशेषक आश्रित होता है और यही क्रम चलता रहता है। जैसे—'बहुत सुन्दर लड़की' इस अन्तःकेन्द्रिक रचना में 'लड़की' मुख्य (केन्द्र) है और उसका आश्रित 'सुन्दर' है, फिर 'सुन्दर' मुख्य (केन्द्र) है और उसका आश्रित 'बहुत' है। अतः सम्पूर्ण रचना का स्वरूप इस प्रकार होता है—

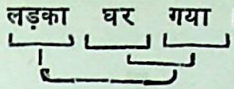


7. वाक्य के निकटस्थ अवयव

प्रत्येक भाषा का वाक्य जिन शब्दों या पदों के संयोग पर बना रहता है, उन शब्दों या पदों को वाक्य के निकटस्थ अवयव (Immediate constituent) कहते हैं। वाक्य में प्रयुक्त अवयव अर्थात् घटक वाक्यार्थ के आधार पर एक-दूसरे के निकट प्रयुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार की वास्तविकता का योग्य ज्ञान होने पर एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने में सरलता और सफलता मिलती है।

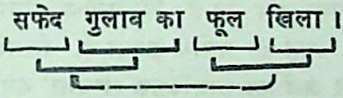
'लड़का घर गया।' इस वाक्य में 'लड़का' और 'गया' ये तीन अवयव हैं। लेकिन अर्थ के आधार पर 'लड़का' और 'गया' ये दो अवयव एक-दूसरे के निकट हैं और 'घर' तथा 'गया' ये दोनों अवयव एक-दूसरे के निकट हैं। इस प्रकार की अवयवों की पारस्परिक निकटता पहचानने के लिए व्याकरणिक ज्ञान और वाक्य-सुर के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

हिन्दी व्याकरणिक ज्ञान के आधार पर ज्ञात होता है कि 'लड़का' यह पद वाक्य का अप्रत्यय कर्ता कारक उद्देश्य है, इसलिए इस (अकर्मक कर्तरि) वाक्य में 'गया' इस पद के साथ 'लड़का' इस पद का निकट का सम्बन्ध है। 'गया' इस पद से जो 'जाने' की क्रिया सूचित होती है, उसका सम्बन्ध 'घर' इस पद से स्थान के साथ सूचित होता है। इसलिए 'घर' यह पद 'गया' इस पद का स्थानसूचक क्रियाविशेषण होने के कारण इन दो पदों में निकटता है। इस प्रकार 'लड़का' और 'गया' इन दो पदों में तथा 'घर' और 'गया' इन दो पदों में जो निकटता है, वह अर्थ की ही निकटता है। इस अर्थ की निकटता को रेखा की सहायता से अग्रांकित प्रकार से दिखाया जा सकता है—

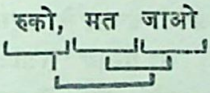


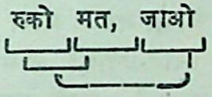
वाक्य-सुर के ज्ञान के आधार पर 'लड़का घर गया ।' इस वाक्य से तीन प्रकार के अर्थों का बोध हो जाता है । इस वाक्य के तीनों पदों का उच्चारण एक ही सुर में करने से विधानार्थ या सूचनार्थ का बोध हो जाता है, लेकिन इस वाक्य के पहले पद का उच्चारण निम्न सुर में, दूसरे पद का उच्चारण उच्च सुर में और तीसरे पद का उच्चारण उच्चतर सुर में किया तो प्रश्नार्थ का बोध हो जाता है, परन्तु इस वाक्य के पहले पद का उच्चारण उच्च सुर में, दूसरे पद का भी उच्चारण उच्च सुर में और तीसरे पद का उच्चारण निम्न सुर में किया तो विस्मयार्थ का बोध हो जाता है ।

इस प्रकार निकटस्थ अवयव के आधार पर ही किसी वाक्य अथवा वाक्यांश का अर्थ स्पष्ट होता है । 'सफेद गुलाब का फूल खिला ।' इस वाक्य में 'सफेद', 'गुलाब का', 'फूल' और 'खिला' ये चार पद हैं । इन चार पदों में से 'फूल' और 'खिला' ये दोनों निकटस्थ अवयव हैं । 'सफेद' और 'गुलाब का' ये दोनों निकटस्थ अवयव हैं, जो दोनों मिलकर सम्बन्ध वाचक विशेषण वाक्यांश के रूप में 'फूल' के निकटस्थ अवयव हैं । जैसे—



विशिष्ट अन्वय के आधार पर निकटस्थ अवयवों से भिन्न-भिन्न अर्थ का बोध हो जाता है । जैसे—





5
अर्थविज्ञान

भाषा-विज्ञान में उसे 'अर्थविज्ञान' माना जाता है, जो भाषा के अर्थ-पक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण करता है। भाषा के रूप में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, वे शब्द अर्थयुक्त होते हैं। इस कारण से ही शब्द को अर्थतत्व माना जाता है।

1. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

यह वास्तविकता है कि समाज अपने भाषा-प्रयोग में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्वाभाविक तथा सहज सम्बन्ध मानता है, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध यादृच्छिक है।

एक समाज आपस में विचारों और भावों का आदान-प्रदान करने के लिए विशिष्ट व्यवस्था के आधार पर भाषा का प्रयोग 'यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों के समूह' के रूप में करता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक समाज अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार ध्वनि-प्रतीकों के समूह का प्रयोग करता है, जिससे प्रत्येक समाज की अलग-अलग भाषा में 'शब्द और अर्थ का यादृच्छिक सम्बन्ध' बना रहता है। इस कारण ही हिन्दी भाषा का समाज 'जल' अर्थ का बोध कराने के लिए अपनी इच्छा के अनुसार 'प्', 'आ', 'न्', 'ई' इन ध्वनि-प्रतीकों के समूह (संयोग) का प्रयोग 'पानी' इस शब्द के रूप में करता है, तो अंग्रेजी भाषा का समाज अपनी इच्छा के अनुसार, 'W', 'a', 't', 'e', 'r' इन ध्वनि-प्रतीकों के समूह (संयोग) का प्रयोग 'Water' (वाटर) इस शब्द के रूप में करता है। इससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक भाषा में शब्द और अर्थ का यादृच्छिक सम्बन्ध होता है।

वास्तव में अपने मूल रूप में प्रत्येक भाषा की ध्वनियाँ 'ध्वनि-प्रतीक' ही होती हैं। अर्थात् भाषा की प्रत्येक ध्वनि स्वतन्त्र 'ध्वनि-प्रतीक' ही होती है। इस स्थिति का लाभ अपनी इच्छा के अनुसार उठाने के लिए ही समाज कोई अर्थ-बोध कराने के उद्देश्य से कुछ ध्वनि-प्रतीकों को विशिष्ट क्रम से एक-दूसरे के साथ जोड़कर उनका ऐसा समूह (संयोग) बनाता है, जिसका प्रयोग विशिष्ट अर्थ-बोधक शब्द के रूप में समाज-द्वारा किया जाता है। इसलिए ही हिन्दी भाषा का समाज 'जल' का अर्थ-बोध कराने के लिए 'प्, आ, न्, ई' इन ध्वनि-प्रतीकों को विशिष्ट क्रम से जोड़कर ध्वनि-प्रतीकों के समूह के रूप में 'पानी' शब्द का प्रयोग अपनी इच्छा के अनुसार करता

है। इस कारण ही अंग्रेजी भाषा का समाज भी 'जल' का अर्थ-बोध कराने के लिए अपनी इच्छा के अनुसार 'Water' इन ध्वनि-प्रतीकों के समूह का प्रयोग शब्द के रूप में करता है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध एक ओर से यादृच्छिक होता है, तो दूसरी ओर से प्रतीकात्मक होता है। 'पानी' शब्द इस रूप में ही अर्थात् 'प्+आ+न्+ई' इस प्रकार के ध्वनि-प्रतीक प्रयोग के रूप में प्रयोग में लाया गया, तो उससे 'जल' का अर्थ-बोध हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसका अर्थ यह है कि 'पानी' शब्द ही विशिष्ट ध्वनि-प्रतीक-संयोग के रूप में तरल द्रव-विशेष (अर्थात् जल) का अर्थ-बोध कराने वाला एक सुसंघटित 'प्रतीक' है। इस कारण से ही 'पानी' शब्द में किसी भी ध्वनि-परिवर्तन हो गया तो वह 'जल' का अर्थ-बोध कराने वाला एक सुसंघटित 'प्रतीक' नहीं रह सकता। इससे स्पष्ट होता है कि विशिष्ट ध्वनि-प्रतीक-संयोग के रूप में 'पानी' शब्द 'जल' के अर्थ का प्रतीक बना रहता है। इसलिए ही 'पानी' शब्द के उच्चारण से, सुनने से या पढ़ने से 'जल' की ही प्रतीकात्मक (संकेतात्मक) अर्थ-प्रतीति हो जाती है। यही स्थिति लगभग सभी शब्दों की होती है। परिणामस्वरूप शब्द और अर्थ का पहला सम्बन्ध यादृच्छिक होता है और तत्पश्चात् दूसरा सम्बन्ध प्रतीकात्मक होता है।

शब्द और अर्थ का तीसरा सम्बन्ध परम्परागत होता है, क्योंकि जब समाज शब्द और अर्थ में यादृच्छिक सम्बन्ध तथा प्रतीकात्मक (संकेतात्मक) सम्बन्ध की स्थापना कर देता है, तब वह शब्द 'विशिष्ट अर्थ-प्रतीक' के रूप में समाज के भाषिक व्यवहार में प्रचलित रह जाता है और परम्परा के रूप में उसी अर्थ की प्रतीति देता रहता है। परिणामस्वरूप शब्द और अर्थ का परम्परागत सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है। इस कारण से ही समाज के भीतर शब्द के अर्थ की प्रतीति व्यवहार से, शब्द-कोश से, व्याकरण से, प्रकरण से, व्याख्या से (विवृति से), उपमान से, आप्त-वाक्य से तथा प्रसिद्ध पद के सान्निध्य से होती रहती है।

विभिन्न प्रकार के व्यवहार से ही परम्परागत शब्द रूपी 'अर्थ-प्रतीक' अर्थात् 'अर्थ-संकेत' का बोध होता रहता है। औरों के सम्पर्क में जो-जो व्यवहार होता रहता है, उससे अपने आप तथा सोच-समझकर परम्परागत शब्द रूपी 'अर्थ-प्रतीक' का बोध हो जाता है। इस कारण ही अनेक शब्द अनेक अर्थ-प्रतीकों के ज्ञान के रूप में स्मृति में सुरक्षित रह जाते हैं।

पढ़े-लिखों के लिए परम्परागत शब्द रूपी 'अर्थ-प्रतीक' का बोध करा लेने के लिए 'शब्द-कोश' और 'व्याकरण' बहुत उपयोगी साधन हैं। 'शब्द-कोश' में विभिन्न परम्परागत शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक विविध जानकारी के साथ विशिष्ट क्रम-व्यवस्था से संकलित किये रहते हैं। इसलिए 'शब्द-कोश से' किसी भी शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक को जाना या समझा जा सकता है। 'व्याकरण से' पढ़े-लिखे जान या समझ सकते हैं कि संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक ये शब्द-प्रकार क्या हैं और इनमें से कुछ शब्दों के लिंग, वचन, पुरुष,

कारक, काल, वाक्य, अर्थ, प्रयोग आदि के प्रत्ययों के आधारों पर कैसे प्रयोग-योग्य विभिन्न रूप बनते हैं और वाक्य में कैसे किस विशिष्ट अर्थ-बोध के लिए किस विशिष्ट रूप का ही प्रयोग करना है।

'प्रकरण से' (अर्थात् वाक्य शेष से) ज्ञात होता है कि अनेक अर्थ-प्रतीकों के रूप में उपयोग में आने वाले परम्परागत एक ही शब्द का प्रयोग किस सन्दर्भ-विशेष में करने पर उसके किसी एक ही अर्थ-प्रतीक का बोध हो सकता है। इसलिए ही पीने के सन्दर्भ-विशेष में 'रस' का अर्थ गन्ने या फल आदि का रस होता है तो काव्यात्मा के सन्दर्भ-विशेष में 'रस' का अर्थ विशेष आनन्द होता है। 'प्रसिद्ध पद के सान्निध्य से' भी विशिष्ट शब्द (पद) का अर्थ-बोध हो जाता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द (पद) के बारे में ऐसा ही होता है। 'व्याख्या से' (विवृत्ति से) किसी परम्परागत शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक का स्पष्टीकरण समझ में आ जाता है। 'आप्तवाक्य से' अर्थात् आदरणीय तथा विश्वसनीय व्यक्तियों से कहे गये वाक्यों से भी परम्परागत शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक का बोध हो जाता है। 'उपमान से' अर्थात् 'सादृश्य-सम्बन्ध' के आधार से भी 'गाय' के समान 'नीलगाय' का अर्थ-बोध हो जाता है। इस तरह कई शब्दों का अर्थ-बोध होता रहता है।

स्पष्ट है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध यादृच्छिक, प्रतीकात्मक तथा परम्परागत होता है। परम्परा के आधार पर ही शब्द और अर्थ का सम्बन्ध स्वाभाविक या सहज बना रहता है।

2. अर्थ-परिवर्तन के कारण

शब्दों के अर्थों में विभिन्न कारणों से परिवर्तन होता है। व्यवहार में भाषा का प्रयोग करते समय कुछ विशिष्ट कारणों से शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होता रहता है।

(1) **बल का अपसरण**—कभी कोई शब्द व्यवहार में दो अर्थों का बोधक बना रहता है। उन दो अर्थों में से एक प्रधान अर्थ होता है और दूसरा गौण अर्थ होता है, लेकिन आगे चलकर उस शब्द के प्रधान अर्थ से बल हटने लगता है और बदले में गौण अर्थ पर बल आने लगता है। परिणामस्वरूप जिस गौण अर्थ पर बल आने लगता है, वही प्रधान अर्थ हो जाता है और पहला प्रधान अर्थ बिल्कुल लुप्त हो जाता है। 'गँवार' शब्द के अर्थ में जो इस प्रकार का अर्थ-परिवर्तन हुआ है, उसका कारण बल का अपसरण ही है। 'गँवार' शब्द 'गाँव में रहने वाला' इस प्रधान अर्थ मे और 'असभ्य' या 'असंस्कृत' इस गौण अर्थ में प्रचलित था। लेकिन आगे चलकर 'गँवार' शब्द के 'गाँव में रहने वाला' इस प्रधान अर्थ से बल हटता रहा और 'असभ्य' या 'असंस्कृत' इस गौण अर्थ पर बल आता रहा। इससे 'असभ्य' या 'असंस्कृत' या 'मूर्ख' इस प्रधान अर्थ में ही 'गँवार' शब्द प्रचलित रह गया और 'गाँव में रहने वाला यह पहला प्रधान अर्थ लुप्त हो गया। इस प्रकार यहाँ 'अर्थादेश का कारण' बल का अपसरण है।

(2) **पीढ़ी-परिवर्तन**—पीढ़ी-परिवर्तन के रूप में हर पुरानी पीढ़ी के बाद नई पीढ़ी आती रहती है। इसलिए हर नई पीढ़ी अपनी सुविधा के अनुसार शब्द के अर्थ में परिवर्तन करती है। 'तेल' शब्द के अर्थ में जो विस्तार हुआ है, उसका कारण 'पीढ़ी-परिवर्तन' ही है। आरम्भ में 'तेल' शब्द का अर्थ 'तिल का रस' था, जिसका प्रयोग भोजन बनाने में किया जाता था। आगे चलकर नई-नई पीढ़ी ने 'तेल' का अर्थ केवल वह 'रस' लिया जिसका प्रयोग भोजन बनाने में किया जाता है। इस कारण ही नई-नई पीढ़ी ने केवल 'रस' के अर्थ में 'तेल' शब्द का प्रयोग करते हुए नारियल, मूँगफली, सरसों आदि के 'रस' को 'तेल' कहते हुए कहना आरम्भ किया—'नारियल का तेल, मूँगफली का तेल, सरसों का तेल'। इस प्रकार यहाँ अर्थ-विस्तार का कारण 'पीढ़ी-परिवर्तन है।'

(3) **शब्द का एक भाषा से दूसरी भाषा में जाना**—किसी एक भाषा के शब्द का दूसरी भाषा में जाना अर्थात् दूसरी भाषा में प्रचलित होना, उस शब्द के अर्थ-परिवर्तन का कारण बन जाता है। जैसे, संस्कृत भाषा का 'मृग' शब्द सभी प्रकार के पशुओं का अर्थ-बोधक था, लेकिन हिन्दी, मराठी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में वही 'मृग' शब्द केवल 'हिरन' इस प्राणि-विशेष के अर्थ में प्रचलित हुआ है, जिससे वह अर्थ-संकोच का उदाहरण बन गया। इसके विरुद्ध फारसी भाषा का शब्द 'दरिया' केवल नदी का अर्थ-बोधक था, परन्तु मराठी, गुजराती में (और हिन्दी में भी) वही 'दरिया' शब्द 'सागर' (समुद्र) का भी अर्थ-बोधक बन गया, जिससे वह अर्थ-विस्तार का उदाहरण बन गया।

(4) **एक ही भाषा के लोगों का भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जाकर रहना**—कभी किसी कारण से एक ही भाषा बोलने वाले लोग इधर-उधर बिखर कर भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जाकर रहने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी एक ही भाषा का कोई शब्द भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अलग-अलग अर्थ-बोधक बन जाता है। संस्कृत भाषा के उद्यान अर्थ-बोधक 'वाटिका' शब्द के साथ इस प्रकार के कारण से अर्थ-परिवर्तन हुआ है। संस्कृत भाषा बोलने वाले लोग भारत के भिन्न-भिन्न भागों में बिखर गये और वहीं रहने लगे। इससे संस्कृत भाषा का 'वाटिका' शब्द विभिन्न अर्थ-बोधक बन गया। हिन्दी की बोली 'भोजपुरी' में 'वाटिका' शब्द से 'बारी' शब्द बन गया, जो उद्यान का अर्थ-बोधक है। लेकिन 'बंगाली' भाषा में 'वाटिका' शब्द से बना 'बारी' शब्द 'घर' अर्थात् 'मकान' का अर्थ-बोधक है। 'मराठी' भाषा में 'वाटिका' शब्द से बना 'वाडी' शब्द जिसमें कुछ ही घरों का समावेश है, ऐसी छोटी-सी बस्ती का अर्थ-बोधक है। इस प्रकार अर्थादेश की दिशा में 'वाटिका' शब्द के अर्थ में परिवर्तन हुआ है।

(5) **भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन**—जब लोग एक प्रकार के भौगोलिक वातावरण को छोड़कर दूसरे प्रकार के वातावरण में जाकर रहने लगते हैं, तब उनकी भाषा का कोई शब्द नये अर्थ का बोधक बन जाता है। संस्कृत भाषा के 'उष्ट्र' शब्द

के अर्थ में इस कारण से परिवर्तन हुआ है। संस्कृत भाषा बोलने वाले कभी ऐसे भौगोलिक वातावरण में रहते थे, जिसमें एक पशु उनके जीवन के लिए बहुत उपयोगी था, जिसे 'उष्ट्र' कहा जाता था। वहाँ जिसे 'उष्ट्र' कहा जाता था, वास्तव में वह 'बैल' पशु-विशेष था। लेकिन जब संस्कृत भाषा बोलने वाले रेगिस्तान में अर्थात् दूसरे प्रकार के भौगोलिक वातावरण में रहने लगे तब उन्होंने वहाँ भी एक पशु को अपने जीवन के लिए बहुत उपयोगी अनुभव किया, इसलिए उन्होंने उस पशु को भी 'राष्ट्र' कहना आरम्भ किया, जिससे 'उष्ट्र' शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो गया, क्योंकि रेगिस्तान के वातावरण में जिसे 'उष्ट्र' कहा गया, वह 'बैल' पशु-विशेष नहीं था, वह तो 'ऊँट' पशु-विशेष था। इस प्रकार यहाँ अर्थादेश की दिशा में 'उष्ट्र' शब्द के अर्थ में परिवर्तन हुआ है।

(6) **सामाजिक वातावरण में परिवर्तन**—अलग-अलग सामाजिक वातावरण में एक ही शब्द अलग-अलग अर्थ का बोधक बन जाता है। जैसे, घर के वातावरण में भाई या बहन शब्द विशिष्ट सम्बन्ध अर्थात् रिश्ते का अर्थ-बोधक होता है, वही शब्द सभा के वातावरण में दूसरे अर्थ का बोधक बन जाता है। इस कारण ही सभा में बोलने का आरम्भ करते समय वक्ता जब 'भाइयो' और 'बहनों' कहता है, तब 'भाइयो' का अर्थ 'सज्जनो' और 'बहनो' का अर्थ 'देवियो' होता है। इस प्रकार यहाँ अर्थादेश की दिशा में 'भाई' या 'बहन' शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। ठीक इसी तरह 'घर' में जो 'सिस्टर' (Sister) अंग्रेजी शब्द 'बहन' अर्थ का बोधक है, वही शब्द अस्पताल में 'परिचारिका' (नर्स) अर्थ का बोधक है।

(7) **परम्परा से सम्बन्धित वातावरण में परिवर्तन**—जो शब्द जिस परम्परा का अर्थ-बोधक होता है, वही शब्द उस परम्परा से सम्बन्धित वातावरण में नये अर्थ का बोधक बन जाता है। 'स्वयंवर' शब्द एक प्रधान अर्थ में और एक गौण अर्थ में प्रचलित था। 'स्वयंवर' शब्द अपने प्रधान अर्थ के रूप में उस परम्परा का बोधक था, जिसके अनुसार विवाह की इच्छा करने वाली लड़की अपनी इच्छा के अनुसार किसी लड़के को अपने 'वर' (दूल्हा) के रूप में चुनती थी। वही 'स्वयंवर' शब्द अपने गौण अर्थ के रूप में उस विवाह का बोधक था, जो लड़की द्वारा चुने गये 'वर' रूपी लड़के के साथ किया जाता था। लेकिन आगे चलकर इस प्रकार की विवाह-परम्परा में परिवर्तन हो जाने के कारण 'स्वयंवर' शब्द केवल 'विवाह' इस अर्थ का ही बोधक बन गया, इसलिए यहाँ 'विवाह' यह गौण अर्थ प्रधान अर्थ बन गया और 'लड़की द्वारा वर के रूप में किसी लड़के को चुनना' यह प्रधान अर्थ लुप्त हो गया। इस प्रकार यहाँ भी अर्थादेश की दिशा में अर्थ-परिवर्तन हुआ है।

(8) **आधार सामग्री के आधार पर वस्तु का नामकरण**—वस्तु का निर्माण जिस सामग्री के आधार पर किया जाता है, कभी उसी सामग्री के बोधक शब्द का ही प्रयोग उससे निर्मित वस्तु के नामकरण के लिए किया जाता है, जिससे अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। जैसे, अंग्रेजी में जिस सामग्री का बोध कराने के लिए 'ग्लास'

(Glass कांच) शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसी सामग्री से निर्मित विशिष्ट आकार की वस्तु का भी नाम 'ग्लास' ही रखा गया। इस प्रकार यहाँ 'ग्लास' शब्द कांच से निर्मित विशिष्ट आकार की वस्तु का अर्थ-बोधक बन गया, जो अर्थादेश की दिशा के अनुसार अर्थ-परिवर्तन है। लेकिन आगे चलकर इस अर्थ में भी विस्तार हो गया, क्योंकि किसी भी धातु से निर्मित उस विशिष्ट आकार की वस्तु के नाम के अर्थ में 'ग्लास' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। मराठी भाषा के 'तांब्या' शब्द के साथ ऐसा ही हुआ है। आरम्भ में 'ताँबा' धातु से निर्मित विशिष्ट आकार की वस्तु का नाम 'तांब्या' (मराठी भाषा में) रखा गया। लेकिन आगे चलकर किसी भी धातु से निर्मित उसी आकार की वस्तु को 'तांब्या' कहा जाने लगा, जिससे अर्थ-विस्तार के रूप में अर्थ-परिवर्तन हो गया।

(9) नम्रता प्रदर्शन—मनुष्य के शिष्टाचार में नम्रता-प्रदर्शन के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। 'अच्छा हुआ, आपके दर्शन हुए।' इस वाक्य में 'दिखायी दिये' इस शब्द-प्रयोग के स्थान पर नम्रता-प्रदर्शन के लिए 'दर्शन हुए' ऐसा शब्द-प्रयोग करने के कारण 'दिखायी दिये' के अर्थ में आदरसूचक अर्थ-परिवर्तन हो गया है। किसी व्यक्ति को 'देवता' कहने से 'देवता' शब्द में उस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा-सूचक अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। किसी बड़े व्यक्ति से अपनी बात कहते समय 'कहना' शब्द (मेरा कहना) के बदले 'निवेदन' शब्द (मेरा निवेदन) का प्रयोग करने से 'कहना' शब्द में नम्रता सूचक अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। उर्दू भाषा बोलने वाला नम्रता-प्रदर्शन के कारण अपने 'महल' के अर्थ में 'गरीबखाना' शब्द का प्रयोग करता है और दूसरे के 'मामूली घर' के अर्थ में 'दौलतखाना' शब्द का प्रयोग करता है। इस प्रकार नम्रता-प्रदर्शन के कारण अर्थादेश की दिशा में 'गरीबखाना' और 'दौलतखाना' में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

(10) अशोभन के लिए शोभन भाषा का प्रयोग (सुश्राव्यता)—व्यवहार में अशोभन अर्थ का बोध कराने के लिए शोभन शब्द का प्रयोग करने के कारण शोभन शब्द अपने शोभन का अर्थ बोध कराने के बदले अशोभन अर्थ का बोध कराने लगता है। इससे शोभन शब्द के शोभन अर्थ में (अर्थापकर्ष के रूप में) परिवर्तन हो जाता है। जैसे—अशोभन में किसी के मर जाने के समाचार का समावेश अशुभ या बुरे समाचार के रूप में होता है। इसलिए किसी के मर जाने का समाचार देने के लिए 'स्वर्गवासी हो गये' इस प्रकार का शोभन शब्द-प्रयोग करने से 'स्वर्गवासी होना' इस शोभन शब्द-प्रयोग में अर्थापकर्ष के रूप में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। किसी स्त्री के पति के मर जाने पर 'वह स्त्री विधवा हो गयी', ऐसा अशुभ शब्द प्रयोग करने के बदले 'उस स्त्री की चूड़ियाँ फूट गयीं' या 'उस स्त्री का सिन्दूर धूल गया' ऐसा शोभन शब्द प्रयोग करने से शोभन शब्द प्रयोग में बुरा अर्थ-बोधक परिवर्तन हो जाता है। ठीक इसी तरह 'चिराग बुझाने' को 'चिराग बढ़ाना' कहने से शोभन शब्द प्रयोग 'चिराग बढ़ाना' बुरे अर्थ का बोधक बन जाता है।

लज्जावश अशोभन के लिए शोभन शब्द-प्रयोग करने से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। जैसे—स्त्री के गर्भिणी होने को स्पष्ट रूप से 'गर्भिणी होना' कहने के बदले 'पाँव भारी होना' कहते हैं, जिससे 'पाँव भारी होना' शब्द प्रयोग के अर्थ में परिवर्तन होकर उससे किसी स्त्री के गर्भिणी होने का अर्थ-बोध हो जाता है। ठीक इसी तरह मलत्याग के लिए 'मैदान जाना' या 'नदी जाना' या 'दिशा जाना' या 'टट्टी जाना' शब्द-प्रयोग करने से उसमें अर्थापकर्ष हो जाता है।

कटुता को छिपाने के लिए भी अशोभन के लिए शोभन शब्द-प्रयोग करने से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। इस कारण ही 'साँप' को 'कीड़ा' और उसके काटने को 'छूना' या 'सूँघना' कहा जाता है। इसलिए साँप के काटने की कटुता या भयंकरता को छिपाने के लिए 'कीड़े ने छुवा' या 'कीड़े ने सूँघा' ऐसा कहने से भयंकरतासूचक अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। शरीर में बहुत पीड़ादायक गर्मी पैदा करने वाली 'चेचक' की बीमारी को 'शीतला देवी' या 'माता' कहने से इन शब्दों के अर्थों में भयंकरता सूचक अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन के मूल में अन्धविश्वास भी कार्य करता है।

(11) अज्ञान—अज्ञान भी अर्थपरिवर्तन का कारण बन जाता है। जैसे—पहले देवता के अर्थ में 'असुर' शब्द का प्रयोग किया जाता था, लेकिन 'असुर' शब्द के आरम्भ में 'अ' को लेकर अपने अज्ञान के कारण लोगों को लगा कि 'असुर' शब्द का अर्थ देवता हो ही नहीं सकता, उसका अर्थ तो 'दानव' (राक्षस) ही हो सकता है। इससे अर्थात् अज्ञान के कारण 'दानव' के अर्थ में 'असुर' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा और 'देवता' के अर्थ में 'सुर' शब्द का। इस प्रकार अज्ञान के कारण 'असुर' शब्द में अर्थ-परिवर्तन (अर्थोत्कर्ष) हो गया।

(12) पुनरावृत्ति—कभी व्यवहार में एक अर्थ वाले शब्दों की आवृत्ति करने से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। 'विंध्याचल' शब्द में 'विंध्य' और 'अचल' इन दो शब्दों का समन्वय है। 'अचल' शब्द 'पर्वत' या 'पहाड़' का अर्थ-बोधक है। इस कारण ही 'विंध्य पर्वत' या 'विंध्य पहाड़' कहने के बदले 'विंध्याचल' कहा जाता है। लेकिन किसी-किसी को लगता है कि 'विंध्याचल' यह पूरा शब्द पर्वत का नाम है, इसलिए वह उस पर्वत का उल्लेख 'विंध्याचल पर्वत' इस प्रकार करता है। यहाँ 'अचल' और 'पर्वत' दोनों शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं, लेकिन 'विंध्याचल' शब्द के साथ एक ही अर्थ वाले 'पर्वत' शब्द की आवृत्ति करने से 'अचल' शब्द अपना 'पर्वत' यह अर्थ खो बैठता है और वह 'विंध्य' के साथ मिलकर एक पर्वत का नाम बोधक बन जाता है। यही स्थिति 'हिमाचल पर्वत' कहने पर 'हिमाचल' शब्द की भी हो जाती है।

(13) सादृश्य—कभी सादृश्य के कारण भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे—संस्कृत भाषा में 'प्रश्रय' शब्द 'शिष्टता, नम्रता, विनय' का अर्थ-बोधक था। लेकिन आधार या सहारा के अर्थ में प्रचलित 'आश्रय' शब्द के साथ

'प्रश्रय' शब्द के उच्चारण-सादृश्य को ध्यान में रखकर 'आश्रय' (अर्थात् आधार या सहारा) के अर्थ में हो 'प्रश्रय' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा, जिससे अर्थादेश की दिशा में अर्थ- परिवर्तन हो गया।

(14) साहचर्य—साहचर्य के कारण भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। 'सिंधु' शब्द से बना 'सैंधव' शब्द भोजन के पदार्थों के साथ 'नमक' अर्थ का बोधक बन जाता है, तो पशुओं के साथ 'घोड़ा' इस पशु-विशेष के अर्थ का बोधक बन जाता है।

(15) भावावेश—भावावेश भी अर्थ-परिवर्तन का कारण बनता है। जैसे—पुत्र-प्रेम के आवेश में पिता अपने पुत्र को 'बदमाश' या 'पाजी' या 'शैतान' या 'गधा' कहता है, तो इन शब्दों में प्रियतासूचक अच्छा अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

(16) व्यंग्य—व्यंग्य के कारण अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। जैसे—किसी को सीधा 'मूर्ख' कहने के बदले व्यंग्य के साथ उसको 'पंडित' (तू तो पंडित है रे !) कहने से भी काम बन जाता है। तब 'पंडित' शब्द 'मूर्ख' का अर्थ-बोधक बन जाता है, जिसमें अर्थापकर्ष के रूप में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। यदि व्यंग्य के साथ किसी को 'लक्ष्मीपति' कहा तो उसका अर्थ 'धनवान' नहीं, बल्कि 'कंगाल' होता है। यहाँ भी अर्थापकर्ष के रूप में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

(17) किसी शब्द, वर्ग या वस्तु में एक विशेषता की प्रधानता—जो एक विशेषता की प्रधानता होती है, उसे ही उस शब्द या उस वर्ग या उस वस्तु का प्रतीक समझा जाने लगता है। जैसे—'फूल' शब्द से कोमलता विशेषता की प्रधानता का अर्थ-बोध होता है, साथ ही साथ उसके सुगन्धित होने का भी अर्थ-बोध होता है। इस कारण ही किसी भी पुष्प-विशेष के साथ 'फूल' शब्द को जोड़ने से उस पुष्प-विशेष की कोमलता तथा सुगन्धितता का अर्थ-बोध होता है। इस प्रकार अर्थ-विस्तार के रूप में 'फूल' शब्द प्रतीक बन गया, जैसे—गुलाब का फूल, कमल का फूल आदि।

पुलिस-वर्ग की 'लाल पगड़ी' पहनने की विशेषता 'पुलिस-वर्ग' का परिचायक प्रतीक बन गयी। इसलिए 'लाल पगड़ी' (लाल पगड़ी आ गयी, भागो !) का उच्चारण करते ही पुलिस-वर्ग का अर्थ-बोध हो जाता है, जिससे 'लाल पगड़ी' शब्द में अर्थादेश के रूप में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

'लाल झण्डा' इस वस्तु में लाल रंग की विशेषता की प्रधानता है, जो साम्यवादियों (कम्युनिस्टों) की पहचान का प्रतीक बन गयी है। इस कारण ही 'लाल झण्डा की सभा' का अर्थ-बोध 'साम्यवादियों की सभा' ऐसा हो जाता है। इस प्रकार 'लाल झण्डा' शब्द में अर्थादेश के रूप में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

(18) एक वस्तु का नाम पूरे वर्ग को देना या सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग—कभी पूरे वर्ग को पहचानने के लिए उसी वर्ग की वस्तु का नाम ही पूरे वर्ग का नाम रखने के कारण उस नाम रूपी शब्द में अर्थ-विस्तार हो जाता है। जैसे—'स्याह' शब्द काले रंग का अर्थ-बोधक है, इसलिए इससे बना 'स्याही' शब्द उस द्रव-विशेष का अर्थ-बोधक है, जो रंग से काला है और लिखने के लिए उपयोग में लाया

जाता है, लेकिन आगे चलकर लिखने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला वह द्रव-विशेष विविध रंगों में बनने लगा। ऐसा होने पर भी प्रत्येक रंग वाले उस द्रव-विशेष का अलग-अलग नाम रखने के बदले सभी प्रकार के उस द्रव-विशेष का नाम 'स्याही' रखा गया, जिससे उस शब्द में अर्थ-विस्तार हो गया। इस कारण ही व्यवहार में सुविधा के लिए कहा जाता है—काली स्याही, नीली स्याही, लाल स्याही, हरी स्याही आदि। हिन्दी में एक ही नाम (संज्ञा) का प्रयोग नर तथा मादा के (सामान्य के) अर्थ में किया जाता है, जिससे लिंग की दृष्टि से उस नामवाचक शब्द में अर्थ-विस्तार हो जाता है। जैसे—'कोयल' इस एक ही (विशेष) नाम से नर कोयल और मादा कोयल का भी अर्थ-बोध हो जाता है। ठीक इसी तरह 'लोमड़ी' इस एक ही (विशेष) नाम से नर लोमड़ी और मादा लोमड़ी का भी अर्थ बोध हो जाता है। कौआ, तोता, मैना, तेंदुवा, चीता आदि कई नामवाचक शब्द इसी प्रकार के ही हैं।

(19) **लाक्षणिक प्रयोग या आलंकारिक प्रयोग**—भाषा-प्रयोग में वक्ता या लेखक का यही प्रयत्न रहता है कि वह कम से कम शब्दों में अपनी बात अधिक से अधिक अर्थपूर्ण तथा रमणीय (सुन्दर) रूप में व्यक्त कर सके। इसके लिए लाक्षणिक या आलंकारिक (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि से युक्त) भाषा-प्रयोग किया जाता है, जिससे शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे—'तुम शेरनी हो' कहने में शेरनी के 'साहसी होने' के लक्षण को महत्व दिया गया है, जो लक्षण किसी स्त्री में भी मिलता है। इस कारण ही यहाँ ऐसा गुण-सादृश्य सूचक लाक्षणिक प्रयोग किया गया है, जिसमें 'रूपक' अलंकार को महत्व का स्थान मिला है। अलंकार अधिकतर किसी न किसी प्रकार के लक्षण-सादृश्य पर आधारित होता है, जिससे अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। इस कारण ही अर्थोत्कर्ष तथा अर्थादेश के रूप में शेरनी शब्द में 'साहसी स्त्री' इस अर्थ की स्थापना हो गयी है।

(20) **अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग**—अपेक्षित अर्थाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक शब्दों का प्रयोग करने के बदले उनमें से कुछ शब्दों को छोड़कर एक शब्द का प्रयोग करने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, जैसे, रेल (ट्रेन की पटरी) पर चलने के कारण 'ट्रेन' को 'रेलगाड़ी' कहा जाता है। लेकिन अब केवल 'रेल' कहकर ही 'रेलगाड़ी' अर्थ का बोध कराया जाता है। वास्तव में यहाँ 'रेल' (पटरी) के अर्थ में परिवर्तन हुआ है। केवल 'मोटर' या 'कार' के प्रयोग से 'मोटरकार' का अर्थ-बोध कराया जाता है। इस कारण 'मोटर' या 'कार' शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। 'मैं प्रेमचन्द पढ़ रहा हूँ।' कहने से 'प्रेमचन्द' शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि यहाँ 'प्रेमचन्द' का अर्थ उनकी 'साहित्य-कृतियाँ' हैं।

(21) **व्यक्तिगत योग्यता**—व्यक्तिगत योग्यता के कारण भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। व्यक्ति के मन पर जिस प्रकार के संस्कार होते हैं और

वह जिस प्रकार के वातावरण में जीता रहता, है, उसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि व्यक्ति की अपनी विशिष्ट योग्यता बनी रहती है। इसलिए व्यक्ति अपनी विशिष्ट योग्यता के अनुसार किसी शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए करता है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता अलग-अलग होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार एक ही शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थ में करता है, जिससे उस शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। इस कारण से दार्शनिक के लिए 'जीव, जगत्, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म' जैसे शब्दों के जो अर्थ होंगे, ठीक वे ही अर्थ साधारण व्यक्ति के लिए नहीं होंगे।

शिक्षित व्यक्ति के लिए 'लेखनी, कागज, पुस्तक, पाठशाला, महाविद्यालय प्राध्यापक, विद्यावाचस्पति' आदि शब्दों के जो अर्थ होंगे, ठीक वे ही अर्थ अनपढ़ व्यक्ति के लिए नहीं होंगे।

व्यक्तिगत योग्यता के कारण ही कोई व्यक्ति किसी नये अर्थ में पुराने शब्द का प्रयोग करता है, जिससे शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी विशिष्ट योग्यता के कारण ही 'देववाणी' के अर्थ में प्रचलित 'आकाशवाणी' इस पुराने शब्द का प्रयोग 'रेडियो' इस नये अर्थ में किया, जिससे 'रेडियो' के अर्थ में 'आकाशवाणी' शब्द बहुत प्रचलित हो गया। इससे 'आकाशवाणी' शब्द के पुराने अर्थ में परिवर्तन हो गया।

कवि तथा लेखकों की व्यक्तिगत योग्यता उनकी व्यापक अनुभव-क्षमता, उनकी कल्पना-शक्ति तथा यथायोग्य व्याख्या करने वाली उनकी बुद्धि पर आधारित होती है। इसलिए वे उन पुराने शब्दों से ऊब जाते हैं, जिनका अधिक प्रयोग होने के कारण अपेक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ होना स्वाभाविक हो जाता है। इस कारण से कवि तथा लेखक पुराने शब्दों का प्रयोग नये अर्थ में करने लगते हैं, जिससे शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। इसलिए ही कवि अज्ञेय ने 'प्रेमिका' के अर्थ में 'दोलती कलगी बाजरे की' या 'दूर तक बिछली हरी घास' शब्द-प्रयोग कर अर्थ-परिवर्तन कर दिया हैं।

स्पष्ट है कि कई कारणों से शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। वैसे व्याकरणिक कारणों से भी अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। जैसे 'नी' स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय के योग से 'शेर' पुलिंग अर्थवाचक शब्द स्त्रीलिंग अर्थवाचक शब्द 'शेरनी' बन जाता है। समास के कारण 'गृहपति' का अर्थ है 'घर का मालिक,' परन्तु 'पतिगृह' का अर्थ है—'पति का घर'।

3. अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ

परम्परागत शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक में विस्तार या संकोच या आदेश के रूप में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-विकास' भी कहते हैं। अर्थ-परिवर्तन या अर्थ-विकास जिन तीन रूपों में होता है उन्हें अर्थ-परिवर्तन या अर्थ-विकास की दिशाएँ माना जाता है।

'विस्तार' के रूप में होने वाले अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-विस्तार की दिशा' माना जाता है। इसके विरुद्ध 'संकोच' के रूप में होने वाले अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-संकोच की दिशा' माना जाता है। 'आदेश' के रूप में होने वाले अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थादेश की दिशा' माना जाता है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन की तीन दिशाएँ हैं।

1. **अर्थ-विस्तार की दिशा**—परम्परागत शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक के प्रयोग में एकहरे के स्थान पर विविधता आने से अर्थ-विस्तार हो जाता है। आरम्भ में शब्द किसी एक निश्चित अर्थ का प्रतीक रहता है, लेकिन आगे चलकर वही शब्द विविध अर्थों का प्रतीक बनकर विभिन्न अर्थों का बोध कराने लगता है। इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-विस्तार की दिशा' माना जाता है।

'तेल' शब्द आरम्भ में तिल के रस का अर्थ-बोधक था। इस प्रकार का तेल तिल को कोल्हू में रगड़कर निकाला जाता था और उसका उपयोग भोजन बनाने में किया जाता था। परिणामस्वरूप नारियल, मूँगफली, सरसों के रस का भी उपयोग भोजन बनाने में करने पर उनके 'रस' को भी 'तेल' कहा जाने लगा। इस प्रकार यहाँ 'तेल' शब्द का विस्तारित अर्थ हुआ, वह 'रस' जिसका उपयोग भोजन बनाने में किया जाता है। इस प्रकार 'तेल' शब्द का अर्थ 'तिल का रस' परिवर्तित या विकसित होकर भोजन बनाने में उपयोग में लाया जाने वाला 'रस' हो गया। इस कारण ही 'नारियल का तेल,' मूँगफली का रस,' सरसों का तेल आदि शब्द-प्रयोग प्रचलित हो गये। यहाँ तक कि केरोसिन को भी 'मिट्टी का तेल' कहा जाने लगा, क्योंकि भोजन बनाते समय आग जलाने के लिए केरोसिन उपयोग में लाया जाता है।

तिल को कोल्हू में रगड़कर उसका रस अर्थात् तेल निकाला जाता था। व्यवहार में इसका अर्थ यह लिया गया कि तेल निकालने के लिए कोल्हू में रगड़ने के रूप में तिल को पीड़ा पहुँचायी जाती थी। इस प्रकार की समझ से भी 'तेल' शब्द के अर्थ में विविधता आ गयी, जिससे उसका अर्थ-विस्तार हो गया। इस कारण ही किसी को पीड़ा पहुँचाने के उद्देश्य से धमकाकर कहा जाता है, 'तेरा तेल निकालूँगा !' किसी से पीड़ा पहुँच जाने पर भी पीड़ित कहता रहता है, 'मेरा तो तेल निकाल लिया गया !'

इस प्रकार 'तेल' शब्द के अर्थ के एकहरे के स्थान पर विविधता आ जाने से तेल शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया।

वीणा बजाने के कार्य में पटु व्यक्ति के अर्थ में जिस 'प्रवीण' शब्द का प्रयोग किया जाता था, अब वही अर्थ-विस्तार के रूप में किसी भी कार्य में पटु (चतुर) व्यक्ति के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार कौनसा भी कार्य करने में पटु व्यक्ति के अर्थ में 'प्रवीण' शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया है।

पहले केवल नीचे के ओठ के अर्थ में 'अधर' शब्द का प्रयोग किया जाता था, लेकिन अब नीचे के और ऊपर के दोनों ओठों के अर्थों में 'अधर' शब्द का प्रयोग होता है।

पहले वह व्यक्ति 'विभीषण' था, जो रावण का भाई था और जिसने भाई रावण के विरुद्ध राम का साथ दिया था, लेकिन अब घर का भेद घर के शत्रु को बताने वाले और घर के नुकसान का कारण बनने वाले हर व्यक्ति के अर्थ में 'विभीषण' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

झगड़ा कराने वाले एक मुनि-विशेष के अर्थ में जिस 'नारद' शब्द का प्रयोग किया जाता था, अब उसी 'नारद' शब्द का प्रयोग झगड़ा कराने वाले हर व्यक्ति के अर्थ में किया जाता है।

पहले उलझी हुई जटाओं को धारण करने वाले (जटाधारी) के अर्थ में जिस 'जटिल' शब्द का प्रयोग किया जाता था, अब उसी 'जटिल' शब्द का प्रयोग किसी भी उलझे हुए तथा कठिन कार्य या समस्या के अर्थ में किया जाता है।

स्पष्ट है कि व्यवहार में शब्दरूपी अर्थ-प्रतीक के प्रयोग में एकहरे के बदले विविधता आने से अपने आप अर्थ-विस्तार की दिशा में अर्थ परिवर्तन हो जाता है, जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

2. **अर्थ-संकोच की दिशा**—शब्द की अर्थ-बोधकता में व्यापकता, विविधता तथा कुछ अनिश्चितता के स्थान पर सीमितता, विशिष्टता तथा निश्चितता के आने से शब्द के अर्थ में संकोच हो जाता है और स्थूल अर्थ के बदले सूक्ष्म अर्थ का बोध होने लगता है। इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-संकोच की दिशा' माना जाता है।

सभी प्रकार के पशुओं के अर्थ में जिस 'मृग' शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी 'मृग' शब्द का प्रयोग खेवल 'हिरन' इस पशु-विशेष के अर्थ में ही किया जाने लगा, जिससे 'मृग' शब्द के अर्थ में सीमितता, विशिष्टता और निश्चितता आ गयी।

सुखद तथा दुःखद दोनों प्रकार की अनुभूतियों के अर्थ में जिस 'वेदना' शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी 'वेदना' शब्द का प्रयोग केवल दुःखद अनुभूति के अर्थ में किया जाने लगा।

जल में या पंक (कीचड़) में जन्म लेने वालों के अर्थ में जिस 'जलज' या 'पंकज' शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी 'जलज' या 'पंकज' शब्द का प्रयोग केवल 'कमल' (एक पौधा-विशेष या फूल-विशेष) के अर्थ में किया जाने लगा।

जिसका भरण-पोषण किया जाय ऐसी किसी भी स्त्री के अर्थ में जिस 'भार्या' शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी 'भार्या' शब्द का प्रयोग केवल 'पत्नी' के अर्थ में किया जाने लगा।

किसी भी प्रकार की गन्ध के अर्थ में जिस 'वास' (बास) शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी 'बास' (वास) शब्द का प्रयोग दुर्गन्ध (बुरी गन्ध) के अर्थ में किया जाने लगा।

पूर्वप्रत्यय (उपसर्ग) के योग से शब्द के अर्थ में संकोच हो जाता है। जैसे, 'विचार' शब्द से किसी भी प्रकार के विचार, 'आचार' शब्द से किसी भी प्रकार के 'आचार' और 'गति' शब्द से किसी भी प्रकार की 'गति' का अर्थ-बोध होता है, परन्तु 'सत्' (सद) और 'दुर' (दुः) पूर्व प्रत्ययों के योग से इन शब्दों के अर्थ में अपने-आप संकोच हो जाता है—सद्विचार, दुर्विचार, सदाचार, दुराचार, सद्गति, दुर्गति/यहाँ 'सत् (सद) पूर्वप्रत्यय का अर्थ 'भला' है तो 'दुर्' (दुः) पूर्वप्रत्यय का अर्थ 'बुरा' है।

पर प्रत्यय (पर सर्ग) के योग से भी शब्द के अर्थ में संकोच होता है। जैसे 'लिख्' धातु से लिखने की क्रिया का ही अर्थबोध होता है। लेकिन 'आवट' पर प्रत्यय के योग से 'लिखावट' शब्द लिखने की विशिष्ट पद्धति का अर्थ-बोध कराता है।

समास से भी शब्द के अर्थ में संकोच होता है। जैसे, 'अनुज शब्द' किसी के भी छोटे भाई का अर्थ-बोधक है, लेकिन कुसुम या गोपाल के साथ समास होने पर 'कुसुमानुज' शब्द से कुसुम के छोटे भाई का अर्थबोध होता है, तो 'गोपालानुज' शब्द से गोपाल के छोटे भाई का अर्थबोध होता है, जिससे 'अनुज' शब्द के अर्थ में संकोच हो जाता है।

विशेषण से भी शब्द के अर्थ में संकोच होता है। जैसे, 'घोड़ा' शब्द किसी भी प्रकार के घोड़े का अर्थ-बोधक है। लेकिन 'घोड़ा' (विशेष) शब्द के पहले रंग सम्बन्धी विशेषण जोड़ने से 'घोड़ा' शब्द का अर्थ संकुचित हो जाता है—जैसे, श्वेत घोड़ा, काला घोड़ा, लाल घोड़ा।

नामकरण से भी शब्द के अर्थ में संकोच होता है। जैसे, 'ज्ञानराज' शब्द का अर्थ है, वह कोई भी जिसे ज्ञान का राज कहा जा सकता है, लेकिन जब किसी का नाम 'ज्ञानराज' रखा जाता है, तो 'ज्ञानराज' शब्द केवल उसी विशिष्ट व्यक्ति का ही अर्थ-बोधक बन जाता है, जिससे 'ज्ञानराज' शब्द के अर्थ में संकुचितता आ जाती है।

पारिभाषिकीकरण से भी शब्द के अर्थ में संकोच होता है। जैसे—किसी के भी सामान्यीकरण को 'साधारणीकरण' कहा जाता है। इसी प्रकार पदार्थों से निकाले गये द्रव को 'रस' कहा जाता है। लेकिन 'काव्यशास्त्र' में काव्य के आस्वादन से मिलने वाले 'विशेष आनन्द' के अर्थ में ही 'रस' इस पारिभाषिक शब्द को प्रयोग में लाया जाता है और इसी रस की निष्पत्ति की प्रक्रिया में जो विशिष्ट क्रिया होती है, उसी विशिष्ट क्रिया के अर्थ में 'साधारणीकरण' इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग

किया जाता है। इससे 'रस' और 'साधारणीकरण' के अर्थ में संकुचितता आ जाती है।

स्पष्ट है कि व्यवहार में अर्थ की स्पष्टता, विशिष्टता, निश्चितता तथा सूक्ष्मता के लिए शब्द के अर्थ में अर्थ-संकोच की दिशा में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

3. अर्थादेश की दिशा—अर्थादेश की दिशा में जो अर्थ-परिवर्तन होता है, वह दो पद्धतियों के अनुसार होता है। एक पद्धति दो अर्थों के साथ सम्बन्ध रखती है, तो दूसरी पद्धति एकदम नये अर्थ साथ सम्बन्ध रखती है।

(1) अर्थादेश की एक पद्धति के अनुसार शब्द के दो अर्थों में से उसका मुख्य (प्रधान) अर्थ लुप्त होने लगता है और उसके स्थान पर उसी शब्द का गौण अर्थ 'मुख्य अर्थ' बनने लगता है। फिर वह शब्द नये मुख्य अर्थ का ही बोधक बन जाता है। 'गँवार' शब्द के साथ इसी प्रकार का अर्थ-परिवर्तन हुआ है। एक समय 'गँवार' शब्द 'गाँव में रहने वाला' इस गौण अर्थ में और 'असभ्य' इस गौण अर्थ में प्रचलित था। लेकिन आगे चलकर 'गाँव में रहने वाला' यह मुख्य अर्थ लगभग लुप्तसा हो गया और उसके स्थान पर गौण अर्थ 'असभ्य' मुख्य अर्थ बन गया। फलस्वरूप 'असभ्य' इस अर्थ में ही 'गँवार' शब्द प्रचलित हो गया। इस प्रकार यहाँ पहली पद्धति के अनुसार अर्थादेश की दिशा में अर्थ-परिवर्तन हुआ है।

(2) अर्थादेश की दूसरी पद्धति के अनुसार शब्द अपने प्रचलित अर्थ को छोड़कर एकदम नये अर्थ में प्रचलित हो जाता। जैसे, ऋग्वेद की आरम्भ की ऋचाओं में 'असुर' शब्द देवता का अर्थ-बोधक था, लेकिन आगे चलकर 'असुर' शब्द ने 'देवता' अर्थ छोड़कर 'दानव' अर्थ धारण कर लिया और आज भी 'दानव' (राक्षस) के अर्थ में ही 'असुर' शब्द प्रचलित है। इस प्रकार दूसरी पद्धति के अनुसार अर्थादेश की दिशा में 'असुर' शब्द में अर्थ-परिवर्तन हो गया। इसी पद्धति के अनुसार 'डाका डालना या हत्या करना जैसा दुष्ट काम करने वाला' यह अर्थ छोड़कर 'साहसी' शब्द 'उत्साहपूर्वक शौर्य का का काम करने वाला' इस नये अर्थ में प्रचलित हुआ है। पहले 'देववाणी' के अर्थ में 'आकाशवाणी' शब्द का प्रयोग किया जाता था, लेकिन स्वतन्त्र भारत में 'आल इण्डिया रेडियो के अर्थ में 'आकाशवाणी' शब्द का प्रयोग होने लगा है। 'दूध दोहने वाली' के अर्थ में जिस 'दुहिता' (दुहितृ) शब्द का प्रयोग किया जाता था, वही शब्द बाद में केवल 'पुत्री' के अर्थ में प्रचलित हो गया। 'तट पर स्थिति' के अर्थ में जिस 'तटस्थ' शब्द का प्रयोग किया जाता था, बाद में वही शब्द किसी का भी पक्ष न लेकर 'अलिप्त रहने वाले' के अर्थ में प्रयोग में लाया जाने लगा। 'बार-बार बाण फेंकना' के अर्थ में जिस 'अभ्यास' (अभि+आस) शब्द का प्रयोग किया जाता था, बाद में उसी शब्द का प्रयोग 'किसी काम को बार-बार करना' के अर्थ में किया जाता है।

व्याकरण में भी कारकों की विभक्तियों के योग से शब्द नये अर्थ का बोधक बन जाता है। जैसे, 'गायक' शब्द स्वतन्त्र रूप में कर्तृवाचक संज्ञा का अर्थबोध है।

लेकिन करणकारक की विभक्ति 'से' के योग से (गायक से मैंने गाना गवाया) 'गायक' शब्द साधनसूचक क्रिया विशेषण का अर्थ-बोधक बन जाता है। अधिकरणकारक की विभक्ति 'में' के योग से (गायक में अनेक गुण हैं) 'गायक' शब्द आधारसूचक क्रिया विशेषण का अर्थ-बोधक बन जाता है। सर्वनाम, विशेषण, क्रिया इन शब्दों के साथ भी ऐसा ही होता है। इनका हर व्याकरणिक रूप नये अर्थ का बोधक बन जाता है, जो एक प्रकार का अर्थादेश ही है।

स्पष्ट है कि अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच तथा अर्थादेश इन तीन दिशाओं में ही मुख्य रूप से अर्थ-परिवर्तन होता है।

सामाजिक सन्दर्भ में अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ—'अच्छा' या 'बुरा' होना सामाजिक सन्दर्भ में विचारणीय होता है। शब्द के अच्छे अर्थ-परिवर्तन को लेकर तथा बुरे अर्थ-परिवर्तन को लेकर दो दिशाओं को स्वीकार किया जाता है—अर्थोत्कर्ष और अर्थापकर्ष।

(4) अर्थोत्कर्ष की दिशा—शब्द के बुरे अर्थ को छोड़कर नये अच्छे अर्थ में प्रचलित होने को 'अर्थोत्कर्ष' की दिशा माना जाता है। जैसे, आरम्भ में 'साहस' शब्द चोरी, हत्या, व्यभिचार आदि बुरे अर्थों में प्रचलित था, लेकिन अब हिम्मत, शौर्य, उत्साह से युक्त कार्य के अर्थ में अर्थात् सामाजिक दृष्टि से अच्छे अर्थ में प्रचलित है, जिससे 'साहस' शब्द के अर्थ का उत्कर्ष हुआ है। इस कारण ही आजकल किसी को 'साहसी' कहा गया तो उसे बहुत खुशी होती है। उसे लगता है कि 'साहसी' कहने से उसकी प्रशंसा हो रही है। इस प्रकार का अर्थोत्कर्ष सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है।

'मुग्ध' शब्द ने भी अपना 'मूढ़' या 'मूर्ख' यह बुरा अर्थ छोड़कर 'मोहित' या 'प्रसन्न' यह अच्छा अर्थ धारण कर लिया है। 'सभा के योग्य' या 'सभा में बैठने योग्य' इस अर्थ के बदले अब 'शिष्ट' या 'संस्कृत' इस उत्तम अर्थ में प्रचलित होने के कारण 'सभ्य' शब्द के अर्थ का उत्कर्ष हुआ है। इस प्रकार अर्थ का उत्कर्ष सामाजिक सन्दर्भ में अच्छे अर्थात् भले के साथ महत्व का सम्बन्ध रखता है।

(5) अर्थापकर्ष की दिशा—अच्छे अर्थ को छोड़कर बुरे अर्थ में शब्द के प्रचलित होने को अर्थापकर्ष माना जाता है। जैसे, 'देवता' यह अच्छा अर्थ छोड़कर 'दानव' इस बुरे अर्थ में 'असुर' शब्द का प्रचलित होना अर्थापकर्ष ही है। एक आदरणीय संन्यासी-सम्प्रदाय के अच्छे अर्थ में जिस 'पाखण्ड' शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी शब्द का प्रयोग 'ढोंग' इस बुरे अर्थ में होने लगा। इस कारण ही 'पाखण्डी' का अर्थ 'ढोंगी' हो गया। देवता अर्थ-बोधक 'नारद' शब्द 'कलहप्रिय व्यक्ति' का अर्थबोधक बन गया, जिससे अर्थापकर्ष हो गया।

स्पष्ट है कि सामाजिक सन्दर्भ में शब्द के अर्थ का उत्कर्ष जितना महत्वपूर्ण होता है, उतना शब्द के अर्थ का अपकर्ष महत्व का नहीं होता, लेकिन वास्तविकता यह है कि अर्थ-परिवर्तन में उत्कर्ष की अपेक्षा अपकर्ष की प्रवृत्ति अधिक है।

वास्तव में शब्द और अर्थ का यादृच्छिक, प्रतीकात्मक तथा परम्परागत सम्बन्ध होने के कारण भाषा का प्रयोग कर्ता शब्द के अर्थ का विस्तार कर सकता है या संकोच कर सकता है या प्रचलित अर्थ में एकदम परिवर्तन कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य अपनी मनोदशा और व्यावहारिक आवश्यकता के अनुसार ही शब्द के अर्थ में परिवर्तन करता है। अपनी नवीन आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्य पहले से उपलब्ध शब्दार्थ का विस्तार कर लेता है, तो कभी पहले से उपलब्ध शब्दार्थ के स्थान पर एकदम नये अर्थ का प्रयोग करता है, तो कभी शब्दार्थ में अधिक स्पष्टता, निश्चितता तथा विशिष्टता लाने के लिए अर्थ-संकोच से काम लेता है। परिणामस्वरूप समाज की नैतिक मान्यता के अनुसार अर्थ-परिवर्तन में उत्कर्ष को भी स्थान मिलता है और अपकर्ष को भी, परन्तु अर्थ-परिवर्तन उत्कर्ष की दिशा में कम और अपकर्ष की दिशा में अधिक होता है।

4. बौद्धिक नियम

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कुछ कारणों से अर्थ-परिवर्तन विस्तार, संकोच, आदेश इन मुख्य तीन दिशाओं में होता है। अर्थ-परिवर्तन के इन कारणों में कुछ बुद्धिगत कारणों को स्वीकार करते हुए ब्रील, वुंट, स्पर्बर, ल्यूमन, कैरोनी, स्टर्न आदि विद्वानों ने बौद्धिक नियमों की चर्चा की है। इनमें सबसे पहले 'ब्रील' इस विद्वान ने ही बौद्धिक नियमों की चर्चा आरम्भ की है। लेकिन बीसजर्बर, टकर तथा ग्लासगो विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध भाषाविज्ञानवेत्ता डॉ० उल्मन ने ब्रील के अर्थ-परिवर्तन से सम्बन्धित बौद्धिक नियमों को स्वीकार करने योग्य नहीं माना।

ब्रील के बौद्धिक नियमों में से कुछ बौद्धिक नियम इस प्रकार हैं—

(1) विशेषीकरण या विशेष भाव का नियम (Law of specialization)—जहाँ पर किसी एक भाव या किसी एक रूप या किसी एक सम्बन्ध आदि को सूचित करने के लिए अनेक शब्द या प्रत्यय आदि प्रयुक्त किये जाते थे वहाँ पर वही भाव या वही रूप या वही सम्बन्ध सूचित करने के लिए केवल एक या दो शब्दों या रूपों के विशेष रूप से प्रचलित रहने को 'विशेष भाव का नियम' माना गया है।

(2) अर्थोद्योतन या उद्योतन का नियम (Law of Irradiation)—उद्योतन (अर्थात् Irradiation) का अर्थ है 'चमकना'। जब किसी प्रत्यय-विशेष से शब्द में अच्छा, बुरा, केवल नया, विशिष्ट या भिन्न अर्थ चमक जाता है अर्थात् विकसित हो जाता है, तब उसे 'अर्थ उद्योतन का नियम' माना जाता है।

(3) विभक्तियों के अवशेष का नियम (Law of survival of Inflections) संयोगात्मक भाषा के वियोगात्मक बनने के विकास-क्रम में ध्वनि-लोप कारण विभक्तियों के रूप कुछ घिस जाते हैं और शेष रूप प्रचलित रह जाते हैं, उसे 'विभक्तियों के अवशेष का नियम' कहा जाता है।

(4) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception)—जब कभी शब्द के रूप के कारण उसे और का और समझा जाता है और परिणाम-

स्वरूप उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, तब उसे **'भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम'** माना जाता है। जैसे—देवतावाचक 'असुर' शब्द में 'अ' को नकारात्मक उपसर्ग मानने से उसे 'राक्षसवाचक' और 'सुर' शब्द को देवतावाचक बनाया गया।

(5) **भेदीकरण का नियम** (Law of Differentiation)—जब समानार्थी शब्दों की एकार्थता का स्थान भिन्नार्थता लेती है, तब उसे **'भेदीकरण का नियम'** माना जाता है। जैसे, 'गर्भिणी' और 'गाभिन' इन समानार्थी शब्दों में कभी एकार्थता थी, लेकिन अब उनमें भिन्नार्थता आ गयी है। इसलिए अब स्त्री के सन्दर्भ में 'गर्भिणी' शब्द का प्रयोग होता है, तो गाय, भैंस आदि के सन्दर्भ में 'गाभिन' शब्द का प्रयोग होता है।

(6) **सादृश्य का नियम** (Law of Analogy)—प्रचलित शब्दों या रूपों के सादृश्य को आधार बनाकर नये शब्दों या नये रूपों के गढ़ लेने को **'सादृश्य का नियम'** माना जाता है। जैसे, 'लिखा,' 'पढ़ा' इन रूपों के सादृश्य के आधार पर 'किया' के बदले **'करा'** रूप का प्रचलित होना।

(7) **नवप्राप्ति का नियम** (Law of New Acquisition)—भाषा के विकास-क्रम में पहले से प्रचलित अर्थ, रूप, शब्द, प्रयोग आदि समाप्त होते रहते हैं और उनके स्थान पर नये अर्थ, रूप, शब्द, प्रयोग आदि के प्रचलित हो जाने को **'नवप्राप्ति का नियम'** माना जाता है। जैसे, हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कारक-विभक्तियों के घिस जाने से उनके स्थान पर परसर्ग के रूप में स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग होने लगा है। हिन्दी में 'ने को, से, में, पर, के लिए' आदि इसी प्रकार के परसर्ग हैं।

(8) **अनुपयोगी रूपों के विलोप का नियम** (Law of Extinction of useless Forms)—भाषा में पहले से प्रचलित रूपों के एकदम विलुप्त हो जाने को **'अनुपयोगी रूपों के विलोप का नियम'** माना जाता है। जैसे, 'गम्' धातु से बनने वाले सभी रूप हिन्दी भाषा में विलुप्त हो गये हैं, केवल 'गया' यह एक ही रूप हिन्दी में प्रचलित रह गया है।

इन बौद्धिक नियमों की स्वीकृति में कठिनाइयाँ

इन बौद्धिक नियमों की स्वीकृति में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ये आठों ही बौद्धिक नियम स्पष्ट रूप से अर्थ-परिवर्तन के साथ सम्बन्ध नहीं रखते हैं। इन नियमों में से कुछ नियमों की बौद्धिक कारण के रूप में स्वीकार करने में भी कठिनाई है। कुछ थोड़े ही ऐसे नियम हैं, जिनमें अप्रत्यक्ष रूप से बौद्धिक कारण से अर्थ-परिवर्तन होता है, लेकिन उनको अर्थ-परिवर्तन के अलग-अलग कारण के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई है।

पहले बौद्धिक नियम के अनुसार जिस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन को स्वीकार किया गया है, वह वास्तव में किसी भी रूप में अर्थ-परिवर्तन नहीं है। अर्थ के साथ तो इसका इतना ही सम्बन्ध है कि इसमें एक ही अर्थ के लिए अनेक के प्रचलन के

स्थान पर कम या एक शब्द या एक प्रत्यय का प्रचलित हो जाना। ऐसा होने में बुद्धि की अपेक्षा मनुष्य की सहजता की प्रवृत्ति काम करती है। इसलिए इसे अर्थ-परिवर्तन का बौद्धिक नियम मानना ठीक नहीं लगता।

दूसरे नियम में भी बुद्धि की अपेक्षा मनुष्य की सहजता की ही प्रवृत्ति काम करती है। इसलिए ही हिन्दी में शहर निवासी का अर्थ-बोध कराने के लिए 'ई' प्रत्यय के स्थान पर 'शहर' शब्द के साथ 'आती' इस नये प्रत्यय के योग से 'शहराती' रूप बन जाता है। इसलिए इसे भी अर्थ-परिवर्तन का बौद्धिक नियम मानना ठीक नहीं लगता।

तीसरा नियम तो सीधा रूप-परिवर्तन से ही सम्बन्ध रखता है, न कि अर्थ-परिवर्तन से। चौथा नियम पूर्णरूप से अर्थ-परिवर्तन के साथ सम्बन्ध रखता है और भ्रम के रूप में कुछ न कुछ बुद्धि के साथ भी सम्बन्ध रखता है। पाँचवाँ नियम भी अर्थ-परिवर्तन तथा बुद्धि के साथ कुछ सम्बन्ध रखता है।

छठा नियम अर्थ-परिवर्तन की अपेक्षा उस रूप-परिवर्तन के साथ सम्बन्ध रखता है, जो बौद्धिक कारण की अपेक्षा सहजता से होता रहता है।

सातवाँ नियम कुछ मात्रा में ही अर्थ-परिवर्तन तथा बुद्धि के साथ सम्बन्ध रखता है। आठवाँ नियम केवल उस रूप-परिवर्तन के साथ ही सम्बन्ध रखता है, जो रूपों के लोप के रूप में सहज ही होता रहता है।

इस प्रकार पहले, दूसरे, तीसरे, छठे और आठवें बौद्धिक नियम को अर्थ-परिवर्तन का कारण मानना ठीक नहीं लगता। साथ ही साथ इन नियमों को बौद्धिक नियम मानना भी ठीक नहीं लगता। केवल चौथे, पाँचवें और सातवें बौद्धिक नियमों को अर्थ-परिवर्तन के 'बौद्धिक कारण' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

6
शब्द विज्ञान

जो विज्ञान 'शब्द' और उससे सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन विश्लेषण करता है, उसे 'शब्द विज्ञान' कहा जाता है।

1. शब्द की परिभाषा

शब्द और अर्थ के अभिन्न सम्बन्ध को ध्यान में रखकर 'शब्द की परिभाषा' इस प्रकार दी जा सकती है—"शब्द भाषा की वह लघुतम स्वतन्त्र इकाई है जो अर्थ के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखती है।"

इस परिभाषा से शब्द की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ व्यक्त होती हैं, जो इस प्रकार हैं—

(1) भाषा की एक प्रकार की इकाई के रूप में शब्द भाषा का अभिन्न अंग है। इसका अर्थ यह है कि शब्द को छोड़कर भाषा के अस्तित्व को स्वीकार करना असम्भव है और भाषा को छोड़कर शब्द के अस्तित्व को स्वीकार करना भी असम्भव है।

(2) स्पष्ट अर्थ की दृष्टि से शब्द भाषा की लघुतम इकाई है। यह शब्दरूपी इकाई अर्थ के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखती है। इसलिए ही शब्द है, तो अर्थ है और अर्थ है तो शब्द है। अपने में किसी न किसी प्रकार के अर्थ को भरकर रखने से ही शब्द का अस्तित्व बना रहता है।

(3) शब्द, भाषा की स्वतन्त्र इकाई दो विशेषताओं के आधार पर है। पहली विशेषता यह है कि शब्द स्वतन्त्र रहकर भी अपने अर्थ को व्यक्त कर सकता है। इस कारण ही 'घोड़ा' शब्द पढ़ते या सुनते ही अपने आप एक पशु-विशेष का अर्थ व्यक्त होता है। दूसरी विशेषता यह है कि वाक्य में शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र (अर्थात् सम्बन्धतत्वरूपी किसी प्रत्यय के संयोग के बिना) भी हो सकता है। अयोगात्मक वाक्य में शब्द का प्रयोग पूर्णतया स्वतन्त्र होता है। इस प्रकार शब्द भाषा की स्वतन्त्र इकाई है।

(4) योगात्मक भाषा के योगात्मक वाक्य में भी शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से होता है, जैसे—पत्र मिला। राम पत्र लिखता है। पहले वाक्य में 'पत्र' और दूसरे वाक्य में 'राम' और 'पत्र' के प्रयोग के रूप में स्वतन्त्र शब्द प्रयोग हुआ है।

लेकिन योगात्मक वाक्य में सम्बन्धतत्व रूपी किसी प्रत्यय के संयोग के साथ भी शब्द का प्रयोग हो सकता है, जैसे "राम ने पत्र में लिखा कि....।" इस वाक्य में 'राम' शब्द का प्रयोग कर्ताकारक की 'ने' विभक्ति के संयोग के साथ हुआ है, 'पत्र' शब्द का प्रयोग अधिकरणकारक की 'में' विभक्ति के संयोग के साथ हुआ है। 'लिख्' शब्द (धातु=क्रिया) का प्रयोग अन्य पुरुषसूचक, पुल्लिगसूचक, एकवचनसूचक और सामान्य भूतकालसूचक 'आ' प्रत्यय के संयोग के साथ हुआ है।

वास्तव में वाक्य रचना अयोगात्मक हो (जैसे चीनी भाषा की वाक्य रचना अयोगात्मक होती है) या योगात्मक हो (जैसे हिन्दी भाषा की वाक्य रचना योगात्मक होती है) उसका मूल आधार 'सार्थक शब्द' ही होते हैं। उनकी सार्थकता के आधार पर ही वाक्यार्थ का बोध हो जाता है।

(5) सार्थकता के कारण शब्द ही मनुष्य के विचारों या भावों का वहन करते हैं और सम्प्रेषण भी करते हैं।

इस प्रकार सार्थक शब्द भाषा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण लघुतम स्वतन्त्र इकाई है, जिससे अपेक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति के हेतु से वाक्य रचना हो जाती है।

2. शब्दों का वर्गीकरण

शब्द विज्ञान में विभिन्न आधारों को लेकर शब्दों का वर्गीकरण किया जाता है।

1. व्याकरण के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण—व्याकरण के आधार पर शब्दों को मुख्य दो वर्गों में रखा जाता है—(अ) विकारी शब्द और (आ) अविकारी शब्द।

(अ) विकारी शब्द—जिन शब्दों में लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल आदि सूचक प्रभाव पड़ने से कुछ विकार या परिवर्तन हो जाता है, उन्हें 'विकारी शब्द' कहा जाता है। इस प्रकार के विकारी शब्दों के चार उपवर्ग स्वीकार किये जाते हैं—(1) संज्ञा, (2) सर्वनाम, (3) विशेषण और (4) क्रिया।

लिंगसूचक विकार (पुल्लिग से स्त्रीलिंग)—लड़का (संज्ञा)→लड़की, शेर (संज्ञा)→शेरनी, सुनार (संज्ञा)→सुनारिन, अच्छा (विशेषण)→अच्छी, चला (क्रिया)→चली।

वचनसूचक विकार (एकवचन से बहुवचन)—लड़का→लड़के, लड़की→लड़कियाँ, बात→बातें, अच्छा→अच्छे, चला→चले।

कारकसूचक विकार—लड़का→लड़के ने, लड़कों ने, गाय→गाय ने, गायों ने, मैं→मैंने, मुझको, (सर्वनाम) तू→तूने, तुझको, वह→उसने, उसको, अच्छा→अच्छे ने, अच्छों ने, चल→चला, चली, चले।

पुरुषसूचक विकार—चल→चलूँगा (उत्तम पुरुष), चलेगा (मध्यम तथा अन्य पुरुष)।

कालसूचक विकार—चल→चलता (वर्तमान काल), चला (भूतकाल), चलेगा (भविष्य काल)।

(आ) अविकारी शब्द—किसी भी कारण से जिन शब्दों में विकार या परिवर्तन नहीं होता, उन्हें 'अविकारी शब्द' कहते हैं। इनके भी चार उपवर्ग स्वीकार किये जाते हैं—

(1) क्रियाविशेषण—आगे, पीछे, धीरे, जल्दी आदि।

(2) सम्बन्धबोधक—ऊपर, नीचे, पहले, बाद, पास, निकट आदि।

(3) समुच्चयबोधक—और, तथा, अथवा, लेकिन आदि।

(4) विस्मयादिबोधक—आह ! ओह ! अरे ! आदि।

2. रचना के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण—रचना के आधार पर शब्दों के तीन वर्गों को स्वीकार किया जाता है—(1) रूढ़, (2) यौगिक और (3) योगरूढ।

(1) रूढ़ शब्द—उन्हें 'रूढ़ शब्द' कहते हैं, जिनके सार्थक टुकड़े नहीं हो पाते। जैसे, कान, नाक, मुख, हाथ, पैर, घर आदि 'रूढ़ शब्द' हैं, क्योंकि इनके सार्थक टुकड़े नहीं हो सकते।

(2) यौगिक शब्द—उन्हें 'यौगिक शब्द' कहते हैं, जो दो रूढ़ शब्दों के योग से बने रहते हैं या रूढ़ शब्द के साथ किसी प्रकार का व्याकरणिक तत्व अर्थात् प्रत्यय के योग से बने रहते हैं। जैसे 'राजगृह' शब्द इसलिए यौगिक शब्द है कि वह 'राजा' और 'गृह' इन दो रूढ़ शब्दों के सयोग से बना है। 'सुन्दरता' शब्द इसलिए यौगिक शब्द है कि वह 'सुन्दर' इस रूढ़ शब्द के साथ 'ता' इस व्याकरणिक तत्व अर्थात् भाववाचक संज्ञा बनाने वाले प्रत्यय के योग से बना है।

(3) योगरूढ़ शब्द—उन्हें 'योगरूढ़ शब्द' कहते हैं, जो दो के योग से बने तो रहते हैं, लेकिन विशेष अर्थ में संकुचित होकर प्रचलित रहता है, जैसे 'पंकज' शब्द। 'पंक+ज' अर्थात् 'कीचड़ में उत्पन्न सभी प्रकार की चीजें या वनस्पतियाँ' यह व्यापक अर्थ संकुचित होकर केवल 'कमल' के अर्थ में 'पंकज' यौगिक शब्द रूढ़ हुआ है, इसलिए 'पंकज' योगरूढ़ शब्द है।

लेकिन 'भाषा की सार्थक लघुतम स्वतन्त्र इकाई' के रूप में शब्द को स्वीकार करने पर केवल 'रूढ़ शब्द' ही सही अर्थ में शब्द होता है। अतएव मूल शब्दों के रूप में रूढ शब्द ही महत्व के होते हैं।

3. इतिहास के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण—इतिहास के आधार पर शब्दों के चार वर्गों को स्वीकार किया जाता है, जिन्हें हिन्दी शब्द समूह के भी चार वर्ग माना जाता है, वे इस प्रकार हैं—

(1) तत्सम शब्द, (2) तद्भव शब्द, (3) देशज शब्द और (4) विदेशी शब्द।

(1) तत्सम शब्द—संस्कृत भाषा के उन शब्दों को 'तत्सम शब्द' कहा जाता है, जो अपने मूल रूप में अर्थात् अविकृत रूप में अर्थात् किसी प्रकार के ध्वनि परिवर्तन के बिना हिन्दी भाषा के शब्दों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे कवि,

गति, रति, मति, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, रात्रि, क्षेत्र, दुग्ध, स्नेह, कृष्ण, हस्त, मन्त्र, तन्त्र, चक्र, मनुष्य आदि तत्सम शब्द हैं।

(2) तद्भव शब्द—संस्कृत भाषा के उन शब्दों को 'तद्भव शब्द' कहा जाता है, जो विकृत अर्थात् विकसित रूप में अर्थात् किसी प्रकार के ध्वनि परिवर्तन के साथ हिन्दी भाषा के शब्दों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे सूरज, चन्दर, आग, रात, खेत, दूध, सनेह, नेह, किशन, किसन, कन्हैया, हाथ, मन्तर, तन्तर, चाक' मनुज, मानूस आदि तद्भव शब्द हैं।

(3) देशज शब्द—उन्हें 'देशज शब्द' कहते हैं जो विशिष्ट क्षेत्र में ही व्यवहृत होते हैं और जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं होता। इस कारण ही डॉ० भोलानाथ तिवारी ने देशज शब्दों को 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम भी दिया है। चावल, बैंगन, भिण्डी, खिड़की, टीला, भूसा आदि हिन्दी भाषा के देशज शब्द हैं।

(4) विदेशी शब्द—उन्हें 'विदेशी शब्द' कहते हैं, जो दूसरे देशों की भाषाओं के शब्द होकर भी अविकृत अर्थात् मूल रूप में अथवा विकृत अर्थात् विकसित रूप में हिन्दी के शब्दों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे—

फारसी भाषा के शब्द—आदमी, औरत, आवाज, आईना, चश्मा, जमीन, शादी, सिपाही हवा आदि।

अरबी भाषा के शब्द—अल्लाह, उम्र, काजी, किताब, तकदीर, दिमाग, नमाज, नशा, पैगम्बर, रोजा, शराब आदि।

तुर्की भाषा के शब्द—उर्दू, अफसर, कुली, कैंची, चाकू, चमचा, तोप, दारोगा, बीबी, बेगम, बहादुर आदि।

पुर्तगाली भाषा के शब्द—अचार, अनानास, कमरा, कमीज, काजू, चाबी, तम्बाकू, पिस्तौल, बटन, बाल्टी आदि।

फ्रेंच भाषा के शब्द—चिड़िया, ताश, तुरुप, स्क्रू आदि।

अंग्रेजी भाषा के शब्द—शर्ट, पैंट, कोट, बूट, स्टूडेन्ट, कॉलेज, लेक्चरर, फोटो, रेल, मोटर, गवर्नर, मिनिस्टर आदि।

उपर्युक्त चार प्रकार के शब्दों के साथ 'देशी शब्द' के रूप में उन शब्दों को भी स्वीकार किया जाता है, जो बंगला, मराठी, तमिल आदि भारतीय भाषाओं के ऐसे शब्द हैं, जो हिन्दी भाषा के शब्दों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे बंगला भाषा का 'गल्प' शब्द, मराठी भाषा का 'चालू' शब्द हिन्दी भाषा के शब्द के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

4. अर्थ के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण—अर्थ के आधार को लेकर शब्द के निम्नांकित वर्गों को स्वीकार किया जाता है :

(1) एकार्थवाची शब्द—जो अपने में एक ही अर्थ रखता है, वह एकार्थवाची शब्द कहलाता है। जैसे अश्व=घोड़ा, हस्त=हाथ, वर्षा=बारिश, भोजन=

खाना, गपोड़ी=गप्पी, व्यक्तिगत=निजी, सहिष्णु=सहनशील, मूर्ख=बेवकूफ, सुन्दर=खूबसूरत आदि। इन शब्दों को एकार्थी शब्द भी कहते हैं।

(2) अनेकार्थवाची शब्द अर्थात् अनेकार्थी शब्द—जो अपने में एक से अधिक अर्थात् अनेक अर्थ रखता है, उसे 'अनेकार्थवाची' या 'अनेकार्थी' शब्द कहा जाता है। जैसे पानी=जल, इज्जत (प्रतिष्ठा), चमक (कान्ति), घोड़ा=एक पशु विशेष, बन्दूक का एक खटका, शतरंज का एक मोहरा, चरण=पैर, छन्द का चरण आदि अनेक शब्द।

(3) पर्यायवाची शब्द—एक ही अर्थ को सूचित करने वाले शब्दों को 'पर्यायवाची शब्द' या 'समानार्थी शब्द' कहा जाता है। जैसे 'नेत्र' के अर्थ में नेत्र, नयन, लोचन, दृग, अक्षि, चक्षु, आँख आदि पर्यायवाची या समानार्थी शब्दों का प्रयोग होता है। 'मनुष्य' के अर्थ में मनुष्य, मानव, मनुज, मानुस, इन्सान, आदमी आदि पर्यायवाची या समानार्थी शब्दों का प्रयोग होता है।

(4) विलोमार्थी या विपरीतार्थी शब्द—जो शब्द एक-दूसरे के विरुद्ध अर्थ व्यक्त करते हैं, उन्हें 'विलोमार्थी' या 'विपरीतार्थी' या 'विरोधार्थी' शब्द कहा जाता है। जैसे स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी, जल-थल, यश-अपयश, काला-गोरा, अन्धेरा-उजाला, पाप-पुण्य, प्रेम-घृणा, चतुर-मूर्ख, सुख-दुःख, दिन-रात, सुन्दर-असुन्दर, चाहा-अनचाहा, आना-जाना आदि।

इस प्रकार विभिन्न आधारों को लेकर शब्दों के वर्ग किये जाते हैं। शब्दों के वर्गीकरण के 'इतिहास के आधार' में व्युत्पत्ति का आधार भी निहित है।

3. शब्द समूह (Vocabulary)

किसी भी भाषा में प्रयुक्त होने वाले सभी शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्द समूह' कहते हैं। हिन्दी भाषा के 'शब्द-समूह' में लगभग डेढ़ लाख से भी अधिक शब्दों के होने का अनुमान किया जाता है।

भाषा के शब्द समूह में परिवर्तन होता रहता है और वह परिवर्तन दो प्रकार से होता रहता है—(क) प्राचीन शब्दों का लोप, (ख) नवीन शब्दों का आगमन।

(क) प्राचीन शब्दों का लोप

व्यक्तिगत या सामाजिक कारणों से प्राचीन शब्दों का लोप होता रहता है, जैसे—

(1) रीति या कर्मों के लोप के कारण—समाज परिवर्तनशील होता है। इसलिए बदलते हुए काल के साथ प्रचलित रीति या उससे सम्बन्धित कर्मों का लोप के रूप में परिवर्तन हो जाता है। परिणामस्वरूप उस रीति या उससे सम्बन्धित कर्मों के साथ सम्बन्ध रखने वाले शब्दों का भी लोप हो जाता है। जैसे भारत में प्राचीन काल में कई प्रकार के यज्ञ करने की रीति थी। इस कारण उसके कर्मों से सम्बन्धित यज्वा, यायजूक, स्थांडिल, अहीन, अभिप्लव आदि अनेक शब्द प्रचलित थे, परन्तु जैसे-जैसे यज्ञों की रीति का और उसके कर्मों का लोप होता रहा, वैसे-वैसे उनसे सम्बन्धित शब्दों का भी लोप होता रहा।

(2) रहन-सहन तथा खान-पान से सम्बन्धित कुछ बातों के लोप के कारण—रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा या इस प्रकार की अन्य बातों के प्रचलित न रहने पर इन्हें सूचित करने वाले शब्दों का प्रयोग भी रुक जाता है और शब्द-समूह में परिवर्तन हो जाता है।

(3) अश्लीलता तथा अन्धविश्वास के कारण शब्द लोप—अश्लीलता तथा अन्धविश्वास के कारण समाज में कुछ शब्दों का उच्चारण करना बन्द हो जाता है, फलतः शब्द-समूह में परिवर्तन हो जाता है।

(ख) नवीन शब्दों का आगमन

(1) सभ्यता में विकास—जैसे-जैसे सभ्यता में विकास होने लगता है, वैसे-वैसे उस विकास को सूचित करने वाले नये शब्दों का आगमन होकर शब्द-समूह में परिवर्तन हो जाता है। विज्ञान के विकास के साथ कई नये शब्दों का आगमन हुआ है, जैसे छापना, मुद्रण, टंकलेखन, टंकन, दूरभाष, दूरदर्शन, आकाशवाणी, सिनेमा, फिल्म आदि।

(2) चेतना का प्रबल होना—राजनीतिक या सांस्कृतिक चेतना के प्रबल होने से उससे सम्बन्धित नये-नये शब्दों का आगमन होकर शब्द-समूह में परिवर्तन हो जाता है। इस कारण से ही स्वतन्त्र भारत में अनेक शब्द संस्कृत शब्दों के आधार पर बनाये जा रहे हैं, जिन्हें निर्मित तत्सम शब्द माना जाता है, जैसे राज्यपाल, राष्ट्रपति, महामन्त्री, मुख्यमन्त्री, विद्यापीठ, प्राध्यापक, अभियन्ता, स्थानक, डाकघर, कार्यालय, जिलाधीश, अधिकारी आदि।

(3) अन्य भाषा या भाषाओं का सम्पर्क—दूसरी भाषा या भाषाओं के सम्पर्क में आने से अपनी भाषा में अनेक नये शब्द अर्थात् उन भाषाओं के कई शब्द प्रचलित हो जाते हैं। इस कारण से ही अरबी, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी आदि अन्य भाषाओं के कई शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित हो गये हैं, जिससे हिन्दी शब्द-समूह विकसित हुआ है।

(4) दृश्यात्मकता का अनुकरण—कुछ चीजों का दृश्य स्वरूप इस तरह प्रभावित करता है, जिससे उस दृश्यात्मकता की विशिष्टतासूचक अनुकरणात्मक शब्दों का आगमन होकर शब्द-समूह विकसित हो जाता है, जैसे जगमग, चमचम, बगवग, लकदक आदि हिन्दी शब्द इसी प्रकार के ही हैं।

(5) ध्वन्यात्मकता का अनुकरण—विशिष्ट ध्वन्यात्मकता के अनुकरण से नये शब्दों का आगमन हो जाता है, जिससे शब्द समूह विकसित हो जाता है। हिन्दी शब्द समूह में इसी प्रकार के शब्दों के रूप में 'भौं-भौं, म्याऊँ-म्याऊँ, काँव-काँव, छल-छल, कल-कल, खल-खल, भड़-भड़, हड़-हड़, पों-पों' आदि शब्द प्रचलित हुए हैं।

(6) साम्य और नवीनता लाने के लिए—लोग शब्द प्रयोग में साम्य और नवीनता लाने के विचार से कभी-कभी नये शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं, जिससे शब्द समूह विकसित हो जाता है। इस कारण से ही हिन्दी में 'पाश्चात्य' के साम्य पर 'पौर्वात्य' यह नया शब्द प्रचलित हुआ है। नवीनता के लिए उपसर्ग आदि को जोड़कर कई नये शब्द बनाये जाते हैं।

इस प्रकार या तो प्रचलित शब्द के लोप से या नये शब्द के आगमन से भाषा का शब्द समूह परिवर्तित होता रहता है, विकसित होता रहता है।

4. नवीन शब्दों का स्रोत

नवीन शब्दों के मुख्य दो ही स्रोत हैं—(च) निर्माण और (छ) ग्रहण।

(च) नवीन शब्दों का निर्माण

विभिन्न रीतियों से नवीन शब्दों का निर्माण होता रहता है, जैसे—

(1) दो शब्दों के मेल से—आवश्यकता पूर्ति के लिए कभी-कभी दो शब्दों को जोड़कर एक तीसरे नये शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे रसोईघर, डाकघर, राजगृह, हिमालय, दाल-रोटी, माता-पिता, अभी, कभी, जभी आदि हिन्दी शब्दों के मेल से प्रचलित किये गये नये शब्द हैं—'रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी' आदि अंग्रेजी शब्द और हिन्दी शब्द के मेल से बनाये गये नये शब्द हैं। 'अजायबघर' आदि शब्द अरबी शब्द और हिन्दी शब्द के मेल से बनाये गये नये शब्द हैं—'चिड़ियाखाना, दलबन्दी' आदि शब्द हिन्दी शब्द और फारसी शब्द के मेल से बनाये गये नये शब्द हैं। 'अक्लमन्द, अर्जीनवीस, जमाबन्दी' आदि शब्द अरबी शब्द और फारसी शब्द के मेल से बनाये गये नये शब्द हैं।

(2) विशिष्ट संज्ञाओं के आधार पर—व्यक्तिवाचक संज्ञा अर्थात् नाम के आधार पर उस व्यक्ति के विशिष्ट कार्य या गुण के आधार पर नया शब्द प्रचलित किया जाता है। इस कारण से ही हिन्दी में नारद (कलह प्रिय), विभीषण (घर का भेदिया, देशद्रोही), हरिश्चन्द्र (सत्यवादी), सावित्री (पतिव्रता), जयचन्द (देशद्रोही) आदि इसी प्रकार के ही शब्द हैं।

स्थानों के नाम पर कुछ शब्द चल पड़ते हैं। इस कारण से ही हिन्दी में 'बनारसी' (चालाक, ठग), लखनवी (छैला, नाजुक) आदि शब्द चल पड़े हैं।

(3) ध्वनियों के आधार पर—हिन्दी में 'भौं-भौं, म्याऊँ-म्याऊँ, काँव-काँव, झर-झर, कल-कल, तड़-तड़' आदि ध्वनियों के अनुकरणात्मक शब्द प्रचलित हुए हैं।

(4) दृश्य के आधार पर—हिन्दी में 'चमचम, जगमग, बगबग' आदि शब्द दृश्य की विशिष्टता के अनुकरण पर प्रचलित हुए हैं।

(5) दूसरे शब्दों के रूप के आधार पर—हिन्दी में 'देहात' से 'देहाती' विशेषणात्मक शब्द प्रचलित हुआ तो उसके सादृश्य पर 'शहर' से 'शहराती' विशेषणात्मक शब्द प्रचलित हो गया। वास्तव में 'शहर' शब्द के अन्त में 'त' के न होने पर भी

ऐसा केवल सादृश्य पर ही संज्ञा से क्रिया शब्द बनाया जाता है, जैसे फिल्म से फिल्माना, लालच से ललचाना आदि।

(6) संक्षेप के आधार पर—इस कारण से ही हिन्दी में संविद (संयुक्त विधायक दल), जद (जनता दल) आदि शब्द प्रचलित हुए हैं।

(7) व्याकरण के नियमों के आधार पर—उपसर्ग और प्रत्यय अर्थात् पूर्व प्रत्यय तथा पर प्रत्यय के सहयोग से अनेक नये शब्द बनाये जाते हैं। जैसे हिन्दी में 'अ, अति, अन, अनु, अप, उप' आदि उपसर्गों से अज्ञान, अदृश्य, अथाह, अत्यन्त, अतिशय, अनेक, अनगिनत, अनुकरण, अनुसरण, अपमान, उपमन्त्री आदि अनेक शब्द प्रचलित हुए हैं।

'आई, आवट, ति, आऊ, त, ता' आदि परसर्ग या पर प्रत्यय के योग से 'लड़ाई, कमाई, थकावट, मिलावट, स्मृति, प्रीति, टिकाऊ, चलाऊ, रंगत, चाहत, सुन्दरता, मधुरता' आदि अनेक शब्द प्रचलित हुए हैं।

(छ) अन्य शब्दों का ग्रहण

सम्पर्क के कारण अन्य शब्दों का ग्रहण और अपनी भाषा में उनका प्रयोग भी होने लगता है। जैसे—

(1) दूसरी भाषाओं के शब्दों का ग्रहण—विदेशी या देशी भाषाओं के सम्पर्क में आने पर उन भाषाओं के शब्दों का ग्रहण होता है और अपनी भाषा में उनका प्रयोग भी होने लगता है। अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रेंच तथा अंग्रेजी के सम्पर्क में आने से हिन्दी भाषा ने इन भाषाओं के अनेक शब्दों का ग्रहण किया है और हिन्दी भाषा में अपने शब्दों के रूप में उनका प्रयोग भी हो रहा है। अब हिन्दी में मराठी, बंगला, आदि भाषाओं के भी शब्दों का प्रयोग होता है।

(2) अपने प्राचीन साहित्य से शब्दों का ग्रहण—भाषा अपने ही प्राचीन साहित्य से तथा उत्पत्ति की दृष्टि से उसका सम्बन्ध होता है, उस भाषा के भी प्राचीन साहित्य से शब्दों का ग्रहण करती है। इसलिए ही पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से राजभाषा हिन्दी को सम्पन्न बनाने के लिए संस्कृत भाषा के प्राचीन साहित्य से बहुत से शब्दों का ग्रहण हो रहा है। साथ ही आज की हिन्दी भाषा अपने ही आदिकालीन साहित्य से और मध्ययुगीन साहित्य से विशिष्ट शब्दों का ग्रहण करती है।

(3) ग्रामीण बोलियों से शब्दों का ग्रहण—भाषा अपने को अधिकाधिक व्यवहारोपयोगी बनाने के लिए अपनी ही ग्रामीण बोलियों में प्रचलित कुछ विशिष्ट शब्दों का ग्रहण करती है। इस कारण से ही हिन्दी भाषा अपनी ही खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि बोलियों से अनेक शब्दों का ग्रहण करती आ रही है और अब भी कर रही है। आधुनिक युग में हिन्दी के आंचलिक कथा-साहित्य में जिस हिन्दी भाषा का प्रयोग हो रहा है उसमें वहां-वहां की ग्रामीण बोली के अनेक शब्दों

का प्रयोग हो रहा है। इस दृष्टि से नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास और फणिश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' दोनों उपन्यास उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के टट्टू, ठर्रा, ठेट, टंटा, डील, झाम, ढोंका आदि शब्द ग्रामीण बोलियों से ही ग्रहण किये गये हैं।

इस प्रकार भाषा के शब्द-समूह में दो रीतियों से नवीन शब्दों का आगमन हो जाता है और सीमित शब्द समूह अधिक से अधिक विकसित होकर व्यापक शब्द समूह बनता है और बनता रहता भी है।

5. कोश विज्ञान

कोश विज्ञान भाषा विज्ञान के भीतर शब्द विज्ञान की ऐसी एक शाखा है, जिसमें विशेष दृष्टि से शब्दों का ही अध्ययन किया जाता है।

कोश विज्ञान कोश बनाने का विज्ञान होने के कारण उसमें उन सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है, जिनके आधार पर कोश बनाये जाते हैं। इस प्रकार कोश विज्ञान (Lexicology) सिद्धान्तों के साथ महत्व का सम्बन्ध रखता है।

कोश विज्ञान में कोश बनाने की क्रिया से सम्बन्धित जिन सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है, उन सिद्धान्तों के आधार पर प्रत्यक्ष कोश बनाने का कार्य 'कोशकला' (Lexicography) करती है।

कोशों के प्रमुख प्रकार

'व्यक्ति कोश, पुस्तक कोश और भाषा कोश' ये कोश के तीन प्रमुख प्रकार हैं। किसी एक व्यक्ति द्वारा अपने साहित्य में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर बनाये गये कोश को 'व्यक्ति कोश' कहा जाता है। हिन्दी में तुलसीदास, सूरदास, जयशंकर प्रसाद आदि पर इसी प्रकार के कोश हैं।

किसी लेखक के किसी पुस्तक (एक ही पुस्तक) में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर बनाये गये कोश को 'पुस्तक कोश' कहा जाता है। हिन्दी में तुलसीदास के 'रामचरित मानस' महाकाव्य का कोश इसी प्रकार का है।

किसी भाषा में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर बनाये गये कोश को 'भाषा कोश' कहा जाता है। हिन्दी में बनारस के 'ज्ञानमण्डल लिमिटेड' से प्रकाशित 'बृहत् हिन्दी कोश' इसी प्रकार का ही कोश है। इस भाषा कोश में हिन्दी शब्दों के अर्थ हिन्दी भाषा में ही दिये गये हैं। ऐसा भी भाषा कोश होता है जिसमें एक भाषा के शब्दों के अर्थ दूसरी भाषा में दिये रहते हैं, जैसे अंग्रेजी भाषा के शब्द कोश में शब्दों के अर्थ हिन्दी भाषा में दिये रहते हैं। इस प्रकार के कोश एक भाषा के हो सकते हैं या एक से अधिक भाषाओं के भी।

एक भाषा के कोश प्रायः तीन प्रकार के होते हैं—वर्णनात्मक भाषा कोश, ऐतिहासिक भाषा कोश और तुलनात्मक भाषा कोश।

वर्णनात्मक भाषा कोश—इसमें किसी एक भाषा में किसी एक विशिष्ट काल में प्रयुक्त सभी शब्दों और उनके सभी अर्थों को दिया जाता है।

ऐतिहासिक भाषा कोश—किसी भाषा का जो सभी कालों से सम्बन्धित विकासात्मक इतिहास होता है, उसे आधार बनाकर उसमें जितने भी प्रयुक्त किये गये शब्द होते हैं, उन्हीं सभी शब्दों को लेकर ऐतिहासिक भाषा कोश का निर्माण किया जाता है और उसमें कालक्रम के अनुसार शब्दों के प्रचलित अर्थों को दिया जाता है। ऐतिहासिक भाषा कोश की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा की 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' महत्व की है।

पारिभाषिक कोश, पर्याय कोश और मुहावरा और लोकोक्ति कोश इन्हें भी भाषा कोश के अन्तर्गत ही रखा जाता है। किसी भी विषय के पारिभाषिक शब्द और उनके अर्थों को लेकर किसी एक भाषा में 'पारिभाषिक कोश' का निर्माण किया जाता है। इस सन्दर्भ में हिन्दी में डॉ० भोलानाथ तिवारी का 'भाषा विज्ञान कोश' बहुत ही महत्वपूर्ण कोश है। हिन्दी में राजेन्द्र द्विवेदी ने भी 'साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश' इन दो पारिभाषिक शब्द कोशों का निर्माण किया है।

'पर्याय कोश' में मिलते-जुलते अर्थ के शब्द एक साथ रखे जाते हैं। इस प्रकार के शब्दों के साथ कभी-कभी विरोधी (विलोम) शब्दों का भी उल्लेख किया जाता है।

'मुहावरा और लोकोक्ति कोश' का निर्माण किसी भाषा में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों को लेकर किया जाता है और उसमें मुहावरों तथा लोकोक्तियों के अर्थ दिये जाते हैं।

बहुभाषा कोश—एक से अधिक भाषाओं के शब्दों को लेकर बहुभाषा कोश का निर्माण किया जाता है। किसी एक भाषा के शब्दों के अर्थों के रूप में दूसरी भाषा के समानार्थी शब्द इस प्रकार के कोश में दिये जाते हैं।

इस प्रकार किसी भी विषय से सम्बन्धित शब्दों या पारिभाषिक शब्दों और उनके अर्थों को लेकर कोश का निर्माण किया जा सकता है।

कोश निर्माण के लिए सहायक कार्य—कोश निर्माण के लिए पहला महत्वपूर्ण सहायक कार्य है 'शब्द संकलन'। विविध मार्गों की सहायता से उन शब्दों का संकलन करना आवश्यक होता है, जो किसी भाषा के सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त होते हैं। फिर उन शब्दों की 'वर्तनी' ठीक करना आवश्यक होता है। शब्दों की ठीक-ठीक वर्तनी (Spelling) कोश निर्माण में शब्दानुक्रम की दृष्टि से महत्व की होती है। फिर आवश्यकतानुसार मूल शब्द के बारे में तथा एक जैसी ध्वनि वाले शब्दों के बारे में निर्णय करना अर्थात् 'शब्द निर्णय' करना महत्वपूर्ण होता है। कोश निर्माण में 'शब्द क्रम' का पालन 'वर्णानुक्रम' या 'अक्षर संख्या' आदि से किया जाता है। शब्द क्रम के लिए वर्णानुक्रम में प्रथम पहले वर्ण को, फिर दूसरे वर्ण को, फिर तीसरे वर्ण को महत्व दिया जाता है। 'अक्षर संख्या' के अनुसार शब्द क्रम में पहला स्थान एक

अक्षर (Syllable) वाले शब्दों को, दूसरा स्थान दो अक्षर वाले शब्दों को और इसी क्रमानुसार तीन, चार, पाँच अक्षर वाले शब्दों को स्थान दिया जाता है। 'विचारों के आधार पर' भी पर्याय कोशों में शब्दों को भावों या विचारों के आधार पर रखा जाता है, जैसे सभी जीवों के शब्द एक स्थान पर, अंग के शब्द दूसरे स्थान पर, विज्ञान, कला, धर्म, खाद्य पदार्थ आदि के शब्दों को अलग-अलग स्थान पर रख दिये जाते हैं।

कोश निर्माण में शब्द का व्याकरणिक स्वरूप दर्शाने वाली टिप्पणी का उपयोग करने के लिए 'व्याकरण' से भी सहकार्य लेना आवश्यक होता है। फिर कोश में 'अर्थ' देने के लिए शब्द के समानार्थी शब्द (जैसे अश्व-घोड़ा) का प्रयोग किया जा सकता है या परिभाषा या विशेष स्पष्टीकरण (जैसे अश्व एक प्रकार का पशु है) का प्रयोग किया जा सकता है। अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यकतानुसार 'उद्धरण' या 'चित्र' का या दोनों का भी प्रयोग किया जा सकता है। कोश में आवश्यकतानुसार शब्द के 'उच्चारण' और उसकी विशिष्ट 'व्युत्पत्ति' का भी संकेत दिया जा सकता है।

6. व्युत्पत्तिशास्त्र (Etymology)

शब्द विज्ञान के एक प्रमुख अंग के रूप में 'व्युत्पत्तिशास्त्र' (एटिमॉलॉजी) को स्वीकार किया जाता है। व्युत्पत्तिशास्त्र में ध्वनि विज्ञान, शब्द विज्ञान और अर्थ विज्ञान का एकत्रित सहयोग बना रहता है। इसी एकत्रित सहयोग के आधार पर किसी शब्द का ध्वन्यात्मक मूल रूप और उसका मूल अर्थ खोजपूर्वक जानने का प्रयत्न किया जाता है। साथ ही यह भी समझा जाता है कि वह शब्द मूल रूप से किस भाषा का है। फिर यह भी जानने का प्रयास किया जाता है कि आगे चलकर शब्द के मूल रूप में किन परिस्थितियों में और किन कारणों से ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक परिवर्तन हुए हैं? इस प्रकार की शब्द की व्युत्पत्ति को आधुनिक पद्धति के कोशों में दर्शाना आवश्यक माना जा रहा है। इस कारण से ही आधुनिक पद्धति के कोशों में शब्द के अर्थ के साथ-साथ उसकी व्युत्पत्ति भी देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

व्युत्पत्तिशास्त्र के आधार पर किसी एक भाषा के किसी एक काल में प्रयुक्त शब्द समूह का विश्लेषण किया जा सकता है और उसी विश्लेषण के आधार पर यह जाना जा सकता है कि उस भाषा के शब्द समूह में उसके अपने शब्द कितने प्रतिशत हैं और विदेशी या दूसरी भाषाओं के शब्द कितने प्रतिशत हैं।

हिन्दी में 'व्युत्पत्ति' शब्द का अर्थ 'विशेष अथवा विशिष्ट उत्पत्ति' है। इसलिए 'विशेष या विशिष्ट उत्पत्ति' का साधार वर्णन करने वाले शास्त्र को हिन्दी में 'व्युत्पत्तिशास्त्र' कहा जाता है। जब व्युत्पत्तिशास्त्र शब्दों के मूल ध्वन्यात्मक रूपों और मूल अर्थों को स्पष्ट कर देता है, तब उसे 'शब्दों का व्युत्पत्तिशास्त्र' कहा जाता है। प्राचीन काल में भारत में इस प्रकार के व्युत्पत्तिशास्त्र को 'निरुक्त' कहा जाता था और उसे वेद के छः अंगों में से एक माना जाता था। उस समय 'निघण्टु' के

शब्दों की व्याख्या और व्युत्पत्ति को स्पष्ट करने के लिए यास्क ने उसके सुप्रसिद्ध 'निरुक्त' का निर्माण किया था। इसलिए यास्क को विश्व का सबसे प्राचीन व्युत्पत्तिकार माना जाता है। उसने अपने निरुक्त में कुल 1298 व्युत्पत्तियाँ दी हैं।

व्यवहार में कभी-कभी 'भ्रामक व्युत्पत्ति' (Popular Etymology) से काम लिया जाता है जो वास्तविक व्युत्पत्ति मानी नहीं जा सकती। जैसे लाइब्रेरी (ग्रन्थालय) को भ्रामक व्युत्पत्ति के आधार पर 'रायबरेली' कहा जाना। इससे ज्ञात होता है कि शब्दों में केवल ध्वनि साम्य को देखकर भ्रामक व्युत्पत्ति से काम लिया जाता है, जो शास्त्र के अनुसार ठीक नहीं है।

उदाहरण के रूप में एक शब्द की व्युत्पत्ति—(संस्कृत शब्द) घोटकं→(प्राकृत में) घोडअ→(हिन्दी में) घोड़ा। यहाँ 'घो' अपरिवर्तित रह गया। स्वर मध्यम अघोष 'ट्' का परिवर्तन घोष 'ड्' में हुआ। हिन्दी में यही 'ड़' बन गया। अन्तिम 'अक' में प्र स्वर मध्यग अघोष 'क्' का परिवर्तन घोष 'ग्' में हुआ और फिर स्वर मध्यग घोष 'ग्' का लोप होकर केवल 'अ' रह गया। तब 'अअ' के मेल से 'आ' बन गया और वही 'आ' 'ड़' के साथ जुड़कर 'ड़ा' हो गया। इस प्रकार 'घोड़ा' शब्द की व्युत्पत्ति है।

7. नाम विज्ञान

उस नाम विज्ञान को शब्द विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा माना जाता है, जिसमें मानव, स्थान, नगर, देश, नदी, पहाड़ आदि के नामों का व्युत्पत्ति की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।

7

लिपि विकास क्रम

1. लिपियों के माध्यम से लिपि का विकास क्रम

मौखिक भाषा के लिखित रूप के लिए लिपि की आवश्यकता होती है। मौखिक भाषा में, लिपिबद्ध होने से, युगों-युगों तक सुरक्षित रहने और दूर-दूर तक पहुँचने की क्षमता आ जाती है। इस दृष्टि से ही लिपि का महत्व है।

लिपि में ऐसे रेखाचिन्हों का प्रयोग होता है, जो मौखिक भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र-स्वतन्त्र ध्वनि चिन्ह अर्थात् लिपि-चिन्ह बनकर रहते हैं। इसलिए लिपि के रूप में ध्वनि-चिन्ह अर्थात् लिपि चिन्ह अर्थात् विशिष्ट रेखाचिन्ह महत्वपूर्ण होते हैं।

मनुष्य ने अपनी मौखिक भाषा की ध्वनियों को लिपि-चिन्हों का रूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही विशिष्ट रेखाचिन्हों का अन्वेषण किया, जिससे 'लिपि की उत्पत्ति' हो गयी।

मनुष्य ने लिपि चिन्हों को सुव्यवस्थित बनाने के उद्देश्य से रेखाचिन्हों को सुधारने के लिए जो-जो प्रयास किये हैं, उनसे ही विभिन्न लिपियों के माध्यम से लिपि का विकास क्रम बढ़ता आया है।

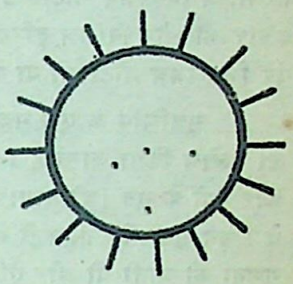
लिपि का विकास क्रम जिन विभिन्न लिपियों के माध्यम से बढ़ता आया है, वे लिपियाँ इस प्रकार हैं—

(1) चित्रलिपि, (2) सूत्रलिपि, (3) प्रतीकात्मक लिपि, (4) भावमूलक लिपि, (5) भाव-ध्वनिमूलक लिपि और (6) ध्वनिमूलक लिपि।

(1) **चित्रलिपि**—लिपि का प्रारम्भिक रूप चित्रलिपि रहा है। प्राचीनकाल में मानव ने गुफाओं की दीवारों पर तथा अन्य वस्तुओं पर जो वनस्पति, मानव-शरीर या उसके अवयवों, देवी-देवताओं आदि के टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से चित्र बनाये, उन चित्रों से ही लिपि का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार के प्राचीन रेखाचित्र आस्ट्रेलिया, कैलिफोर्निया, ब्राजील, ग्रेट ब्रिटेन, दक्षिण फ्रांस, स्पेन, इटली, साइबेरिया,

उजबेकिस्तान, सीरिया, मिस्र, आदि विभिन्न देशों में मिले हैं। वे चित्र पत्थर, लकड़ी, हड्डी, सींग, हाथीदाँत, जानवरों की खाल, पेड़ की छाल, मिट्टी के बर्तन आदि पर बनाये गये हैं।

चित्रलिपि के रूप में किसी विशिष्ट वस्तु के लिए विशिष्ट रेखाओं से चित्र बनाया जाता था। जैसे रेखा की सहायता से पहले एक गोला बनाया जाता था और फिर उस गोले से निकली रेखाएँ चारों ओर बनायी जाती थीं, जिससे सूर्य का चित्र बन जाता था। मनुष्य के लिए मनुष्य का रेखाचित्र बनाया जाता था और उसके अलग-अलग अंगों के लिए भी अलग-अलग रेखाचित्र बनाये जाते थे। अलग-अलग पशु तथा पक्षी के लिए भी अलग-अलग रेखाचित्र बनाये जाते थे। पेड़, पहाड़, नदी आदि के लिए भी अलग-अलग रेखाचित्र बनाये जाते थे।



बोधगम्यता की दृष्टि से चित्रलिपि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि चित्र, जिस पशु, पक्षी, वस्तु या इनके अंग का बनाया जाता था उसका बोध किसी को भी और कहीं भी हो जाता था। इस कारण से आज भी भौगोलिक नक्शों में नदी, पहाड़ तथा विभिन्न यातायात की सुविधाओं का बोध कराने के लिए कहीं भी चित्रलिपि का ही उपयोग किया जाता है।

लेकिन चित्रलिपि में कुछ कठिनाइयाँ बनी रहीं। एक कठिनाई यह रही कि प्रत्येक मनुष्य चित्रकार नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य चित्रलिपि का उपयोग नहीं कर सकता। दूसरी कठिनाई यह रही कि अत्यल्प जगह में चित्रलिपि का काम नहीं बन सकता। तीसरी कठिनाई यह रही कि चित्र बनाने में थोड़ा ज्यादा ही समय लगता है, इसलिए शीघ्र गति से चित्रलिपि का प्रयोग हो नहीं सकता। चौथी कठिनाई यह रही कि मनुष्य के सूक्ष्म भाव और सूक्ष्म विचार चित्रलिपि के माध्यम से व्यक्त नहीं हो सकते थे, इसलिए मनुष्य की विभिन्न भाव-मुद्राओं को भी उस चित्रलिपि से दिखाया नहीं जा सकता था। पाँचवीं कठिनाई यह रही कि राम, कृष्ण, सीता, राधा इस प्रकार के व्यक्तिवाचक नाम धारण करने वाले अलग-अलग व्यक्तियों को अर्थात् मानवों को भी चित्रलिपि से सूचित करना कठिन था। इस प्रकार की कठिनाइयों के कारण मनुष्य चित्रलिपि के अलावा अन्य लिपि की खोज में रहा।

(2) सूत्रलिपि—प्राचीन काल में मनुष्य ने स्मरण करने अर्थात् याद करने की क्रिया के लिए सूत्रलिपि का उपयोग किया। मनुष्य सूत्र, रस्सी या पेड़ों की छाल आदि में एक-एक गाँठ देकर किसी बात को याद करता था। इस प्रकार की सूत्रलिपि

से मनुष्य अपने भाव को भी व्यक्त करता रहा। इसके लिए मनुष्य सूत्रलिपि का उपयोग तरह-तरह से करता रहा। जैसे रस्सी में विभिन्न रंगों के सूत्र बाँधना, रस्सी को विभिन्न रंगों से रँगना, रस्सी, जानवरों की खाल आदि में विभिन्न रंगों के मोती, घोंघे, मूंगे या मनके आदि बाँधना, भिन्न-भिन्न लम्बाइयों की रस्सियों को एकत्रित करना, अलग-अलग मोटाइयों की रस्सियों को इकट्ठा करना, रस्सी में अलग-अलग प्रकार की और विभिन्न दूरियों पर गाँठें बाँधना और डंडे के साथ विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न मोटाइयों या रंगों की रस्सियाँ बाँधना।

सूत्रलिपि के एक महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में पीरू की 'क्वीपू' सूत्रलिपि का उल्लेख किया जाता है। 'क्वीपू' नामक सूत्रलिपि में विभिन्न लम्बाइयों, मोटाइयों और रंगों के सूत (जो प्रायः बँटे ऊन के होते थे) लटकाकर भाव प्रकट किये जाते थे। उन सूतों में कहीं-कहीं गाँठें भी लगाई जाती थीं। इस प्रकार की सूत्रलिपि से गणना की जाती थी और ऐतिहासिक घटनाओं का भी अंकन किया जाता था। पीरू में सेना के अफसर सूत्रलिपि का उपयोग करते थे।

लेकिन सूत्रलिपि को लिपि मानने में कठिनाई यह है कि इसमें उन लिपि चिन्हों का नितान्त अभाव रहा है, जो विशिष्ट रेखाचिन्हों के रूप में स्वीकार किये गये हैं। इस कारण से ही भाषा के लिखित रूप के लिए सूत्रलिपि पूर्ण रूप से अनुपयोगी रही। इसलिए मनुष्य सूत्रलिपि के अलावा अन्य लिपि की खोज में रहा।

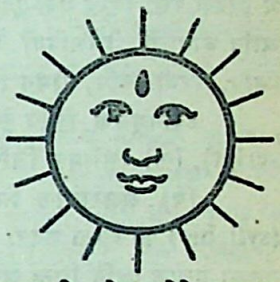
(3) प्रतीकात्मक लिपि—प्रतीकात्मक लिपि को भावाभिव्यक्ति की प्रतीकात्मक पद्धति माना गया। इसकी महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इसमें नेत्रों के माध्यम से किसी के विचार को समझा जाता था, क्योंकि इस लिपि के अनुसार कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के पास विशिष्ट वस्तुएँ भेजकर उन वस्तुओं के माध्यम से अपना विशिष्ट विचार पहुँचाता था। इसलिए दूसरा व्यक्ति अपने नेत्रों से उन वस्तुओं को देखकर पहले व्यक्ति के विशिष्ट विचार को समझ जाता था।

प्राचीन काल से ही अनेक देशों में और भिन्न-भिन्न कबीलों में प्रतीकात्मक लिपि अर्थात् भावाभिव्यक्ति की प्रतीकात्मक पद्धति का प्रयोग मिलता है। एक दृष्टि से यह विचार लिपि रही। जैसे तिब्बत और चीन की सीमा पर "तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ" इस प्रकार का भाव या विचार किसी के पास पहुँचाना पड़ता था, तब उसके पास इस भाव या विचार के प्रतीक के रूप में मुर्गी के बच्चे का कलेजा, उसकी चर्बी के तीन टुकड़े और एक मिर्च लाल कागज में लपेटकर भेज दिया जाता था। हल्दी भेजकर लड़की के विवाह का निमन्त्रण देना, सुपारी भेजकर लड़के के विवाह का निमन्त्रण देना, युद्ध में सफेद झण्डा दिखाकर शान्ति का विचार व्यक्त कर देना, गार्ड से हरी झण्डी दिखाकर रेलगाड़ी चलाने का सन्देश देना या लाल झण्डी दिखाकर रेलगाड़ी को रोकने का सन्देश देना तथा हाथ और उँगलियों के इशारों से

गूँगे और बहरों का आपस में विचारों का आदान-प्रदान करना, यह सब प्रतीकात्मक लिपि के अन्तर्गत आता है।

परन्तु प्रतीकात्मक लिपि को भी लिपि मान लेने में कठिनाई यह है कि इसमें उन लिपि चिन्हों का अभाव रहा है, जो लिखने के लिए विशिष्ट रेखाचिन्हों के रूप में स्वीकार किये गये हैं। इस कारण से ही भाषा के लिखित रूप के लिए अतिरिक्त लिपि की खोज करता रहा।

(4) भावमूलक लिपि—इस प्रकार की लिपि को भावमूलक लिपि या भाव लिपि भी कहा जाता है। इस भावामूलक लिपि को चित्रलिपि का ही एक विकसित रूप माना जाता है। इसका कारण यह है कि चित्रलिपि में केवल वस्तुओं का ही बोध कराने की क्षमता थी, लेकिन भावमूलक लिपि में वस्तुओं का बोध कराने के साथ भावों का भी बोध कराने की क्षमता रही है। जैसे चित्रलिपि में सूर्य का बोध कराने के लिए केवल एक रेखा गोल बनाकर उससे निकलती रेखाएँ दिखायी जाती थीं, लेकिन भावमूलक लिपि में सूर्य के साथ-साथ कुछ विशेष भाव का भी बोध कराने के उद्देश्य से सूर्य के चित्र में कुछ अन्य बातों को भी चित्रित किया जाने लगा, जिससे सूर्य का बोध 'सूर्य देवता' के रूप में होने लगा। भाव लिपि में पैर का चित्र इस तरह बनाया जाने लगा,



जिससे पैरों के बोध के साथ-साथ उनके चलने के भाव का भी बोध होने लगा।



भावलिपि में विशिष्ट भाव को व्यक्त करने के लिए दो चित्रों का मेल भी किया जाने लगा। जैसे दुःख का भाव व्यक्त करने के लिए नेत्र का चित्र और उससे बहते आँसुओं के चित्र का मेल किया जाने लगा। इस प्रकार की भावमूलक लिपि के उदाहरण उत्तरी अमरीका, चीन, पश्चिमी अफ्रीका आदि देशों में मिलते हैं। चीनी आदि अनेक लिपियों के बहुत से चिन्ह आज तक इसी प्रकार के ही हैं।

लेकिन जिस प्रकार लिपि के रूप में स्वीकार करने की दृष्टि से चित्रलिपि में जो-जो कठिनाइयाँ रहीं, वे सब भावलिपि में भी होने के कारण मनुष्य अन्य लिपि की खोज करने के प्रयत्न में रह गया।

(5) भाव ध्वनिमूलक लिपि—इस लिपि की विशेषता यह रही कि वह कुछ बातों में भावमूलक रही है, तो कुछ बातों में ध्वनिमूलक रही है। मेसोपोटैमियन मिस्री, हित्ती आदि कुछ लिपियाँ वास्तव में भावध्वनिमूलक लिपियाँ रही हैं। आधुनिक चीनी लिपि को भी कुछ हद तक इसी लिपि के अन्तर्गत रखा जाता है। भावध्वनिमूलक लिपि में कुछ भावमूलक चित्रात्मक चिन्ह होते हैं, तो कुछ ध्वनि-

मूलक चिन्ह होते हैं। कुछ विद्वानों ने सिन्धु घाटी की लिपि को भी भाव-ध्वनिमूलक लिपि माना है।

लेकिन चित्रात्मकता के कारण भाषा के लिखित रूप के लिए भाव ध्वनिमूलक लिपि का भी सरलता से प्रयोग करना कठिन रहा। इसलिए मनुष्य की सरल तथा सहज लिपि की खोज जारी रह गयी।

(6) **ध्वनिमूलक लिपि**—मनुष्य ने भाषा के लिखित रूप के लिए जो लिपि खोज का प्रयत्न किया, वह ध्वनिमूलक लिपि की खोज के साथ पूर्ण हो गया। इस प्रकार मनुष्य के लिपि विकास की अन्तिम तथा सर्वाधिक उपयोगी कड़ी ध्वनिमूलक लिपि रही है। ध्वनिमूलक लिपि में ध्वनि चिन्हों के रूप में जिन रेखाचिन्हों को स्वीकार किया गया है, उनकी सहायता से बड़ी सहजता से भाषा लिखी जा सकती है और उसके माध्यम से संक्षेप में बहुत कुछ व्यक्त किया जा सकता है। इस लिपि में प्रत्येक रेखा चिन्ह एक-एक ध्वनि चिन्ह बनकर रहता है। हिन्दी, अरबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं की लिपियाँ ध्वनिमूलक ही हैं। इसलिए देवनागरी लिपि, फारसी लिपि, अरबी लिपि, रोमन लिपि आदि लिपियाँ ध्वनिमूलक लिपियाँ हैं।

ध्वनिमूलक लिपि के दो प्रकार हैं—(प) अक्षरात्मक लिपि (Syllabic script), (फ) वर्णात्मक लिपि (Alphabetic script)

(प) **अक्षरात्मक लिपि**—अक्षरात्मक लिपि में रेखाचिन्ह किसी अक्षर (syllabic) को व्यक्त करता है। देवनागरी लिपि अक्षरात्मक लिपि होने के कारण उसका प्रत्येक ध्वनि चिन्ह अर्थात् रेखाचिन्ह अक्षर ही होता है। नागरी लिपि में 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' ये सभी स्वर चिन्ह अक्षर ही हैं। साथ में सभी व्यंजन ध्वनियाँ भी अक्षर के रूप में ही लिखी जाती हैं। जैसे 'क' इस रेखा चिन्ह में 'क्+अ' इन दो वर्णों का मेल रहता है, इसलिए 'क' रेखाचिन्ह अर्थात् ध्वनि चिन्ह 'अक्षर' है। इस कारण से ही नागरी लिपि का अक्षर लिखने पर जल्दी यह मालूम नहीं होता कि उसमें कौन-कौनसी ध्वनियाँ मिली हैं। यही एक कठिनाई अक्षरात्मक लिपि में है। बंगला, गुजराती, उड़िया, तेलगू, अरबी, फारसी आदि लिपियाँ अक्षरात्मक ही हैं।

(फ) **वर्णात्मक लिपि**—वर्णात्मक लिपि में अक्षरात्मक लिपि जैसी कठिनाई नहीं होती, क्योंकि वर्णात्मक लिपि में प्रत्येक वर्ण स्वतन्त्र-स्वतन्त्र लिखा जाता है, जैसे रोमन लिपि में 'K' रेखाचिन्ह लिखा गया तो वह एकमात्र वर्ण होगा, न कि दो वर्णों का मेल। इसलिए ही देवनागरी में 'रानी' शब्द दो अक्षरात्मक होगा, लेकिन रोमन लिपि में वही शब्द चार वर्णों का (Rani) होगा। इसलिए वर्णात्मक लिपि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें जो भी शब्द लिखा जाता है, उस शब्द में प्रत्येक वर्ण स्वतन्त्र दिखाई देता है। इस कारण से ही वर्णात्मक लिपि को सर्वाधिक विकसित लिपि माना जाता है।

स्पष्ट है कि लिपि के विकास क्रम में सबसे पहली 'चित्रलिपि' है और सबसे विकसित अन्तिम 'वर्णात्मक ध्वनिमूलक लिपि' है, जिसे भाषा विज्ञान की दृष्टि से 'आदर्श लिपि' माना जाता है।

2. भारतीय लिपियाँ

प्राचीनकाल से ही भारत में लेखन-कला प्रचलित रही है, जिसके प्राचीनतम नमूने सिन्धु घाटी की लिपि के रूप में मिले हैं। पंजाब में मांटगोमरी जिले के हड़प्पा और सिन्धु के लरकाना जिले के मोहनजोदड़ो में प्राप्त सीलों पर सिन्धु, घाटी की लिपि के प्राचीनतम नमूने मिले हैं।

सिन्धु घाटी की लिपि के रेखाचिन्हों में से कुछ चित्रात्मक हैं, तो कुछ अक्षरात्मक हैं। इस कारण से सिन्धु घाटी की लिपि भाव ध्वनिमूलक लिपि रही है।

लेकिन प्राचीनकाल से ही भारत में दो मुख्य अक्षरात्मक लिपियाँ प्रचलित थीं, जिनके नमूने शिलालेखों और सिक्कों पर उपलब्ध हुए हैं, उनमें से एक का नाम 'खरोष्ठी लिपि' है और दूसरी का नाम 'ब्राह्मी लिपि' है। ये दो अक्षरात्मक लिपियाँ ही, अर्थात् खरोष्ठी लिपि और ब्राह्मी लिपियाँ ही भारत में सबसे अधिक प्रचलित रही हैं।

(1) खरोष्ठी लिपि—भारत की प्राचीन लिपियों में से खरोष्ठी लिपि एक महत्वपूर्ण लिपि रही है। प्राचीन भारत में लिखने के लिए खरोष्ठी लिपि का प्रयोग होता रहा, क्योंकि उसके प्रयोग के प्रमाण मिले हैं। प्राचीन भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग किये गये सम्राट अशोक के शिलालेख 'शहबाजगढ़ी' और 'मनसेरा' में उपलब्ध हुए हैं। आगे चलकर विदेशी राजाओं के ऐसे कुछ सिक्के, शिलालेख तथा कुछ और मिला है, उस सबमें खरोष्ठी लिपि का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के प्रमाणों के आधार पर खरोष्ठी लिपि को प्राचीन भारत की एक महत्वपूर्ण अक्षरात्मक लिपि के रूप में स्वीकार किया जाता है।

लिपि के 'खरोष्ठी' नाम के बारे में मतभिन्नता—एक लिपि-विशेष के लिए 'खरोष्ठी' नाम क्यों प्रचलित हुआ, इसके बारे में मतभिन्नता है। इस कारण से 'खरोष्ठी' नाम को लेकर जो विभिन्न मत मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं—

(1) 'फ़ा-वान-शु-लिन' नामक चीनी विश्वकोश के अनुसार किसी 'खरोष्ठ' नामक व्यक्ति ने इस लिपि को बनाया है, इसलिए उस व्यक्ति के नाम के आधार पर लिपि के लिए 'खरोष्ठी' नाम प्रचलित हुआ।

(2) 'खरोष्ठ' नामक सीमा-प्रान्त में यह लिपि अर्धसभ्य लोगों से प्रयुक्त की जाती थी, इसलिए इस लिपि के नाम के रूप में 'खरोष्ठ' शब्द के आधार पर 'खरोष्ठी' शब्द प्रचलित हुआ।

(3) कभी इस लिपि के प्रयोग का केन्द्र मध्य एशिया का 'काशगर' नामक प्रान्त था, उसी 'काशगर' शब्द ने संस्कृत में 'खरोष्ठ' रूप धारण कर लिया और उसी के आधार पर उस लिपि के नाम के रूप में 'खरोष्ठी' शब्द प्रचलित हुआ।

(4) ईरान में इस लिपि का प्रयोग गधे की खाल पर लिखने के लिए किया जाता था, इसलिए वहाँ उसका नाम 'खरपोश्त' रहा, जो आगे चलकर ध्वनि परिवर्तन से संस्कृत में 'खरोष्ठ' बन गया और उससे 'खरोष्ठी' शब्द बन गया जो उस लिपि के नाम के रूप में प्रचलित हुआ।

(5) 'खरोट्ठ' यह एक आर्मेइक शब्द था, जो भ्रामक व्युत्पत्ति के आधार पर संस्कृत में 'खरोष्ठ' बन गया, जिससे लिपि के नाम के रूप में 'खरोष्ठी' शब्द प्रचलित हो गया।

(6) डॉ० राजबली पांडेय के मतानुसार इस लिपि के बहुत-से अक्षर गधे (खर) के ओठ की तरह बेढंगे होने के कारण उस लिपि का नाम 'खरोष्ठ' प्रचलित हो गया।

(7) डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार हिब्रू भाषा में 'लिखावट' के अर्थ में 'खरोशेथ' (Kharosheth) शब्द प्रचलित था, जिसके आधार पर उस लिपि का नाम 'खरोशेथ' पड़ गया। फिर संस्कृत में 'खरोशेथ' से 'खरोष्ठ' शब्द बन गया और उससे ही लिपि के नाम के रूप में 'खरोष्ठी' शब्द प्रचलित हो गया।

इस प्रकार 'खरोष्ठी' लिपि के नाम के प्रचलन को लेकर कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। फिर भी जो विद्वान खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति को आर्मेइक लिपि से मानते हैं, उनकी दृष्टि से आर्मेइक शब्द 'खरोट्ठ' से संस्कृत में 'खरोष्ठ' शब्द बन गया और उससे लिपि का 'खरोष्ठी' प्रचलित हो गया।

खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति सम्बन्धी मतभिन्नता—'खरोष्ठी' लिपि की उत्पत्ति के बारे में भी विद्वानों में मतभिन्नता है। इसलिए एक प्रमुख मत है कि आर्मेइक लिपि से खरोष्ठी लिपि निकली है। दूसरा प्रमुख मत यह है कि खरोष्ठी लिपि शुद्ध भारतीय लिपि है।

पहला प्रमुख मत जी० बूलर नामक एक प्रसिद्ध लिपिज्ञ का है। अपने मत का समर्थन करने के लिए उनका कहना है कि (1) आर्मेइक लिपि के समान खरोष्ठी लिपि भी दाएँ से बाएँ लिखी जाती रही। (2) बनावट की दृष्टि से खरोष्ठी लिपि के भी 11 (ग्यारह) अक्षर आर्मेइक लिपि के 11 (ग्यारह) अक्षरों के साथ बहुत मिलते-जुलते हैं। इन दो लिपियों के मिलते-जुलते ग्यारह अक्षर इस प्रकार हैं—'क, ज, द, न, ब, य, र, व, प, स, ह' जो खरोष्ठी लिपि में इसी रूप में आते रहे और आर्मेइक लिपि में थोड़े अलग ढंग से इस तरह क्रमशः आते रहे—'काफ्, ज़ाइन, दालेथ्, नून, बैथ्, योघ्, रेश्, वाव्, शिन्, त्साध, हे।' (3) आर्मेइक लिपि खरोष्ठी लिपि से भी पुरानी लिपि है। (4) तक्षशिला में जो आर्मेइक लिपि में लिखा गया शिलालेख मिला है, उससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के साथ आर्मेइक लोगों का सम्बन्ध था।

इस प्रकार जी० बूलर के मत से यह स्पष्ट हो जाता है कि खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति का सम्बन्ध आर्मेइक लिपि के साथ ही है।

दूसरा प्रमुख मत डॉ० राजबली पांडेय का है, जो उनकी पुस्तक 'इण्डियन पैलोग्राफी' में व्यक्त हुआ है। इनके मतानुसार 'खरोष्ठी' शुद्ध भारतीय लिपि है, लेकिन उनका मत ठोस प्रमाण पर आधारित नहीं है, केवल तर्क पर आधारित है। इस कारण से ही भारतीय लिपियों के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० गौरीशंकर हीरानन्द ओझा और भाषा विज्ञानवेत्ता डॉ० भोलानाथ तिवारी पहले प्रमुख मत का ही समर्थन करते हैं।

खरोष्ठी लिपि का स्वरूप-विकास— यह वास्तविकता है कि एक समय खरोष्ठी लिपि भी (अरबी, फारसी तथा उर्दू लिपि के अनुसार) दाएँ से बाएँ की ओर लिखी जाती थी, लेकिन आगे चलकर खरोष्ठी लिपि पर ब्राह्मी लिपि का ऐसा प्रभाव पड़ा, जिससे नागरी आदि लिपियों के समान खरोष्ठी लिपि भी बाएँ से दाएँ की ओर लिखी जाने लगी। वास्तव में ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के कारण खरोष्ठी लिपि की कुछ अन्य बातों में भी विकास हुआ। खरोष्ठी लिपि में स्वर-चिन्हों का अभाव था, परन्तु ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के कारण ह्रस्व स्वर चिन्हों के लिए वृत्त, रेखा या इसी प्रकार के कुछ अन्य चिन्हों का प्रयोग किया जाने लगा। 'भ, ध, घ' के लिए आर्मेइक लिपि में तथा खरोष्ठी लिपि में भी रेखाचिन्हों (ध्वनि चिन्हों) का अभाव था, लेकिन ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के कारण खरोष्ठी लिपि में 'भ, ध, घ' के लिए भी विशिष्ट रेखाचिन्हों का प्रयोग होने लगा।

फिर भी खरोष्ठी लिपि में 'आ, ई, ऊ, ऐ, औ' इन दीर्घ स्वरों के लिए रेखा चिन्हों का अभाव रहा, मात्राओं तथा संयुक्त व्यंजनों के लिए भी रेखाचिन्हों का अभाव रहा। इस कारण से खरोष्ठी लिपि एक 'कामचलाऊ लिपि' बनकर रह गयी। इसलिए खरोष्ठी लिपि को अधिक वैज्ञानिक लिपि या पूर्ण लिपि नहीं माना जा सकता। खरोष्ठी लिपि में अक्षरों की मूल संख्या 37 (सैंतीस) रही है। ईसा पूर्व चौथी सदी से ईसा पूर्व तीसरी सदी तक ही इसके शिलालेख तथा सिक्के मिले हैं।

2. ब्राह्मी लिपि—ब्राह्मी लिपि को प्राचीन भारत की सर्वश्रेष्ठ लिपि माना जाता है। ब्राह्मी लिपि के बहुत पुराने नमूने बस्ती जिले में मिले पिपरावा के स्तूप में और अजमेर जिले के बडली नामक गाँव के शिलालेख में मिले हैं। ब्राह्मी लिपि के उपलब्ध पुराने नमूनों का समय ई० स० पूर्व पाँचवीं शती से ई० स० 350 तक का माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि उन शतियों में भारत में ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग होता रहा।

नाम के बारे में मतभिन्नता—विशिष्ट लिपि के लिए नाम के रूप में 'ब्राह्मी' शब्द के प्रचलित होने के बारे में निम्नलिखित अलग-अलग मत व्यक्त हो गये हैं :

(1) विशिष्ट लिपि का 'ब्राह्मी' नाम पड़ने के बारे में एक मत धार्मिक भावना के अनुसार व्यक्त हुआ है। हिन्दू धर्म में एक धार्मिक भावना यह है कि जगत् की सभी वस्तुओं का निर्माता ब्रह्मा' है, इसलिए 'ब्रह्मा' ही इस लिपि का निर्माता है और उनके नाम के आधार पर ही इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' प्रचलित हुआ है।

(2) 'फ़ा-वान-शु-लिन' (ई० स० 668) नामक चीनी विश्वकोश में 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मा' नामक किसी आचार्य को इस लिपि के निर्माता के रूप में स्वीकार किया गया है और उसी के नाम के आधार पर लिपि का नाम 'ब्राह्मी' प्रचलित हो गया।

(3) डॉ० राजबली पांडेय के मतानुसार भारतीय आर्यों ने 'ब्रह्म' (=वेद अर्थात् ज्ञान) की रक्षा करने के लिए इस लिपि को बनाया है। इसलिए इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' प्रचलित हुआ है।

(4) साक्षरों अर्थात् ब्राह्मणों से उस समय इस लिपि का प्रयोग किया जाता था। इस कारण भी इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' प्रचलित हो गया।

ये सभी मत अनुमान पर ही आधारित हैं, किसी उपलब्ध प्रमाण पर आधारित नहीं हैं। इसलिए लिपि के 'ब्राह्मी' नाम के प्रचलन को जानने की दृष्टि से ये मत स्वीकार करने योग्य नहीं है, फिर भी पहला मत विचार करने योग्य है।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के बारे में मतभिन्नता

'ब्राह्मी' लिपि की उत्पत्ति के बारे में भी विद्वानों में मतभिन्नता है। इस मतभिन्नता को दो प्रमुख मतों में विभाजित किया जाता है। एक प्रमुख मत के अनुसार 'ब्राह्मी' लिपि की उत्पत्ति किसी विदेशी लिपि के साथ सम्बन्ध रखती है। दूसरे प्रमुख मत के अनुसार 'ब्राह्मी' लिपि की उत्पत्ति और उसका विकास भी भारत में ही हुआ है।

(1) किसी विदेशी लिपि के साथ ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का सम्बन्ध

डॉ० अल्फ्रेड मूलर, जेम्स प्रिंसेप तथा सेनार्ट आदि विद्वानों ने यूनानी लिपि के साथ ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का सम्बन्ध जोड़ा है, लेकिन इस मत के समर्थन के लिए कोई ठोस प्रमाण इन विद्वानों ने नहीं दिया है। सेनार्ट ने सिकन्दर के आक्रमण का उल्लेख किया है, परन्तु उस आक्रमण (325 ई० पू०) के पहले से ही प्राचीन भारत में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता था।

डॉ० जी० बूलर और अपनी 'द अलफाबेट' नामक पुस्तक में डॉ० डेविड डिरिंजर ने उत्तरी सामी (सेमिटिक) लिपि के साथ ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का सम्बन्ध जोड़ा है। इन दोनों ने अपने मत के समर्थन के लिए जो तर्क दिये हैं, उनमें यह भी एक तर्क है कि ब्राह्मी प्राचीनकाल में सामी लिपि के समान दायें से बायें की ओर लिखी जाती थी, लेकिन डॉ० गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, डॉ० राजबली पांडेय तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने यह सप्रमाण सिद्ध किया कि उत्तरी सामी लिपि या अन्य किसी भी विदेशी लिपि से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति नहीं हुई है और

ब्राह्मी लिपि बायें से बायें की ओर नहीं बल्कि बायें से दायें की ओर ही लिखी जाती थी।

(2) भारत में ही ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई है

"भारत में ही ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई है" इस मत का समर्थन करने वाले विद्वानों ने निम्नलिखित चार प्रकार की उत्पत्तियों की चर्चा की है :

(क) द्रविड़ीय उत्पत्ति—एडवर्ड थॉमस और कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार भारतवासी द्रविड़ों ने ही ब्राह्मी लिपि का आविष्कार किया है। इस मत को इसलिए विचारणीय माना जाता है कि ब्राह्मी लिपि के पुराने सभी शिलालेख उत्तर भारत में ही मिले हैं और प्राचीनकाल में द्रविड़ भी उत्तर भारत में रहते थे, जिनकी उच्च संस्कृति का केन्द्र मोहनजोदड़ो जैसा विशाल नगर था।

(ख) सांकेतिक चिन्हों से उत्पत्ति—आर० रामशास्त्री ने देवनागरी लिपि की उत्पत्ति सम्बन्धी अपने लेख में कहा है कि देवताओं की मूर्तियाँ बनाने के पूर्व अनेक त्रिकोण तथा चक्रों आदि से बनाये गये यन्त्र (जिसे 'देवनगर' कहा जाता था) के मध्य में अनेक प्रकार के सांकेतिक चिन्ह लिखे जाते थे, वे ही कालान्तर में उन-उन नामों के अक्षर माने जाने लगे और उन सभी का नाम देवनागरी प्रचलित हुआ, लेकिन डॉ० ओझा जी ने इस मत को स्वीकार करने योग्य नहीं माना, क्योंकि उनके मतानुसार आर० रामशास्त्री का मत वैदिक साहित्य से पहले के या बहुत प्राचीन प्रमाणों (अवतरणों) पर आधारित नहीं है।

(ग) वैदिक चित्रलिपि से उत्पत्ति—'सरस्वती' (ई० स० 1913-15) में प्रकाशित अपनी लेखमाला में जगमोहन वर्मा ने प्रयत्न यह किया है कि चित्रलिपि या उससे निकली सांकेतिक लिपि से ब्राह्मी लिपि निकली है, लेकिन इस मत को इसलिए स्वीकार नहीं किया गया कि वह प्राचीन प्रमाणों के बदले केवल कल्पना पर आधारित है।

(घ) आर्य उत्पत्ति—डाउसन, कनिंघम, लासन, थॉमस, डॉसन आदि विद्वानों का मत है कि आर्यों ने ही भारत की किसी पुरानी चित्रलिपि से ब्राह्मी लिपि को विकसित किया, लेकिन ठोस प्रमाणों के अभाव में इस मत को भी स्वीकार करने योग्य नहीं माना गया।

इस प्रकार ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के बारे में निश्चित कुछ कहना सम्भव नहीं है। महत्व की बात यह है कि ब्राह्मी लिपि के जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, उनसे यही स्पष्ट होता है कि भारत में बहुत पहले से ब्राह्मी लिपि प्रौढ़ अवस्था में और पूर्ण व्यवहार में आती रही है।

ब्राह्मी लिपि का स्वरूप-विकास

भारत में ब्राह्मी लिपि के सबसे पुराने नमूने ईसा पूर्व चौथी शती के मिले हैं। उस समय ब्राह्मी लिपि का विकास एक प्रौढ़ लिपि के रूप में हुआ था। आगे चलकर

ब्राह्मी लिपि उत्तर भारत और दक्षिण भारत में अलग-अलग रीति से विकसित होती रही। ब्राह्मी लिपि अपने विकसित रूप के साथ भारत के बाहर भी गयी। वहाँ उसके कुछ रूपों का विकास भिन्न-भिन्न रीति से होता रहा। मध्य एशिया में पुरानी खोतानी तथा तोखारी आदि भाषाओं के लेख ब्राह्मी लिपि में ही मिलते हैं। ईसा पूर्व 5वीं शती से लेकर ई० स० 350 तक जो ब्राह्मी लिपि भारत में प्राप्त हुई है, वह थोड़े-बहुत भेद तथा विभिन्नताओं के होते हुए भी ब्राह्मी नाम से ही पुकारी जाती रही। ईस्वी सन् 350 के पश्चात् ब्राह्मी लिपि की दो शैलियाँ स्पष्ट रूप से प्रचलित हो गयीं। ब्राह्मी लिपि की एक शैली 'उत्तर शैली' रही है, जो उत्तर भारत में गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, शारदा लिपि और नागरी लिपि के माध्यम से विकसित होती रही। ब्राह्मी लिपि की दूसरी शैली 'दक्षिणी शैली' रही है, जो विभिन्न लिपियों के माध्यम से दक्षिण भारत में विकसित होती रही।

ब्राह्मी लिपि में आवश्यकतानुसार स्वर तथा व्यंजन ध्वनि चिन्ह बन गये और वह एक प्रौढ़ लिपि बन गयी। ब्राह्मी लिपि में स्वर, व्यंजन, संयुक्ताक्षर आदि का लेखन उच्चारण के अनुरूप करने की सुविधा रही। ब्राह्मी लिपि में स्वरों की मात्राओं का भी स्वीकार किया गया था और व्यंजनों के साथ मात्राओं को जोड़कर लिखने की व्यवस्था को भी स्वीकार किया गया था। ब्राह्मी लिपि प्रारम्भ से ही बायें की ओर से दायें की ओर लिखी जाती रही है। उत्तर भारत में और दक्षिण भारत में भी ब्राह्मी लिपि विभिन्न रूपों में से होकर विकसित होती रही है।

इस प्रकार ब्राह्मी लिपि भारत की सबसे प्रौढ़ और महत्वपूर्ण लिपि रही है, जो आज की नागरी अर्थात् देवनागरी लिपि की भी जननी रही है।

उत्तर भारत में ब्राह्मी लिपि के विकास क्रम में 'गुप्त लिपि' का पहला स्थान रहा जो ईसा की चौथी और पाँचवीं शती में गुप्त राजाओं के लेखों में तथा दान-पत्रों में प्रयुक्त होती रही है, जिसके कुछ नमूने भी उपलब्ध हुए हैं। उस समय मध्य एशिया में भी भारतीय धर्म प्रचार के साथ गुप्त लिपि का भी प्रचार हुआ। ब्राह्मी लिपि के इस रूप का प्रयोग गुप्त राजाओं से होता रहा, इसलिए उसका नाम 'गुप्त लिपि' प्रचलित हुआ।

'गुप्त लिपि' के बाद के ब्राह्मी लिपि के रूप को 'कुटिल लिपि' कहा गया, क्योंकि उस समय उसकी मात्राएँ और वर्ण कुछ टेढ़े-मेढ़े हो गये थे। ईसा की 6वीं शती से लेकर 9वीं शती तक उत्तर भारत में कुटिल लिपि का उपयोग होता रहा। यशोवर्मन के कुछ लेखों में कुटिल लिपि के नमूने उपलब्ध हुए हैं।

'कुटिल लिपि' के बाद के ब्राह्मी लिपि के एक रूप को 'शारदा लिपि' कहा गया है। ईसा की 10वीं शती में उत्तर भारत में शारदा लिपि का विकास हुआ। ईसा की 10वीं शती में पंजाब, सिन्ध, काश्मीर में शारदा लिपि ही भिन्न-भिन्न रूपों में प्रसारित होती रही। इस लिपि का प्राचीनतम लेख ईसा की 10वीं शती का उपलब्ध

हुआ है। चन्दराज्य के शिलालेखों और दानपत्रों में शारदा लिपि के नमूने उपलब्ध हुए हैं।

'कुटिल लिपि' के बाद के ब्राह्मी लिपि के दूसरे रूप को 'प्राचीन नागरी लिपि' कहा गया है। ईसा की 10वीं शती के बाद उत्तर भारत में सबसे अधिक प्राचीन नागरी लिपि का प्रयोग होता रहा। उस समय उत्तर भारत में हिन्दी, गुजराती, बंगाली आदि भाषाओं के लिए और महाराष्ट्र की मराठी के लिए प्राचीन नागरी लिपि' का ही विकसित रूप में प्रयोग होता रहा और दक्षिण भारत में भी कन्नड़, तेलुगू, तमिल और मलयालम इन भाषाओं की लिपियों के रूप में 'प्राचीन नागरी लिपि' के दूसरे एक विकसित रूप का प्रयोग होता रहा। इस कारण से 'प्राचीन नागरी लिपि' को सर्वश्रेष्ठ लिपि माना गया, जो ब्राह्मी लिपि का ही एक सर्वाधिक विकसित और महत्वपूर्ण रूप रहा है। आधुनिक भारत में भी इसी 'प्राचीन नागरी लिपि' से अत्यधिक विकसित नागरी लिपि अर्थात् देवनागरी लिपि को स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रलिपि का सम्मान दिया गया है।

इस प्रकार विभिन्न लिपि रूपों के माध्यम से ब्राह्मी लिपि प्राचीनकाल से आज तक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लिपि रही है।

3. नागरी लिपि (देवनागरी लिपि)

नागरी लिपि को 'देवनागरी लिपि' भी कहा जाता है। दक्षिण भारत में नागरी लिपि को ही 'नंदिनागरी लिपि' कहा जाता है। ईसा की 10वीं शती के आसपास कुटिल लिपि 'प्राचीन नागरी लिपि' विकसित हुई। यही आगे चलकर 'नागरी लिपि' या 'देवनागरी लिपि' कहलाने लगी। नागरी लिपि प्राचीन ब्राह्मी लिपि का सर्वाधिक विकसित रूप बनकर रह गयी। यही नागरी लिपि स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रलिपि के रूप में स्वीकृत हो गयी।

नागरी लिपि स्वर-चिन्हों, व्यंजन चिन्हों, स्वर मात्रा चिन्हों आदि पर आधारित है और वह बायें से दायें की ओर लिखी जाने वाली 'अक्षरात्मक लिपि' है।

नामकरण सम्बन्धी मतभिन्नता—लिपि विशेष का 'नागरी' या 'देवनागरी' नाम प्रचलित होने के आधार के बारे में मतभिन्नता है: (1) गुजरात के नागर ब्राह्मण विशेष रूप से इसी लिपि का प्रयोग करते थे, इसलिए उसका नामकरण 'नागरी' लिपि हो गया। (2) नगरों में इस लिपि का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता था, इसलिए उसे 'नागरी' लिपि कहा जाने लगा। (3) मध्ययुग में देवमूर्तियों की पूजा करने के लिए कुछ सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग किया जाता था, जिनको 'देवनगर' कहा जाता था। उन 'देवनागर' कहलाने वाले सांकेतिक प्रतीकों अर्थात् 'तांत्रिक चिन्हों' के साथ साम्य रखने के कारण लिपि को 'देवनागरी' और फिर

'नागरी' कहा गया। (4) 'देवनगर' अर्थात् 'काशी' में इस लिपि के प्रचार को देख कर इसे प्रथम 'देवनागरी' लिपि कहा गया और बाद में 'नागरी' लिपि कहा गया।

ये सभी मत केवल अनुमान पर आधारित होने के कारण 'नागरी' या 'देवनागरी' नामकरण के बारे में किसी मत को स्वीकार करना ठीक नहीं लगता, लेकिन वास्तविकता यह है कि इस लिपि का प्रयोग अधिकतर नगरों में ही किया जाता था।

4. देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

(1) देवनागरी ही एक ऐसी लिपि है जिसमें स्वर ध्वनियों के लिए अलग से रेखाचिन्ह (लिपि चिन्ह) हैं और व्यंजन ध्वनियों के लिए भी अलग से रेखा (लिपि) चिन्ह हैं। 'क्ष, त्र, ज्ञ' इन संयुक्त व्यंजनों के लिए भी अलग से रेखाचिन्ह (लिपि चिन्ह) हैं।

(2) नुक्ता प्रधान अर्थात् बिन्दु प्रधान फारसी लिपि के प्रभाव के कारण देवनागरी में 'क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ड़, ढ़' इन नुक्तावाली ध्वनियों के लिए भी लिपि चिन्हों की सुविधा की गयी है।

(3) अंग्रेजी भाषा के प्रभाव के कारण देवनागरी में 'ऑ' इस नये स्वर के लिए भी लिपि चिन्ह की सुविधा की गयी है।

(4) मराठी भाषा के प्रभाव के कारण देवनागरी में 'अ, आ, ओ, औ' इन स्वरों के लिए 'अ, आ, ओ, औ' इस प्रकार के लिपि चिन्हों के स्थान पर 'अ, आ, ओ, औ' इस प्रकार के सरल लिपि चिन्हों की सुविधा की गयी है।

(5) देवनागरी लिपि में सभी स्वरों के लिए मात्रा चिन्हों की भी व्यवस्था है।

(6) देवनागरी लिपि में सभी स्वर लिपि चिन्ह, मात्रा लिपि चिन्ह और व्यंजन लिपि चिन्ह इस प्रकार हैं—

स्वर लिपि चिन्ह—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अँ।

मात्रा लिपि चिन्ह—ा, ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ, ँ।

मूल स्वर लिपि चिन्ह—अ (आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अँ।)

कंठ्य व्यंजन लिपि चिन्ह—क्, ख्, ग्, घ्, ङ्

तालव्य ,, ,, —च्, छ्, ज्, झ्, ञ्

मूर्धन्य ,, ,, —ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्

दंत्य ,, ,, —त्, थ्, द्, ध्, न्

ओष्ठ्य ,, ,, —प्, फ्, ब्, भ्, म्

अंतस्थ ,, ,, —य्, र्, ल्, व्

ऊष्म ,, ,, —श्, ष्, स्, ह्

संयुक्त ,, ,, —क्ष्, त्र्, ज्ञ्

अन्य ,, ,, —क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ड़, ढ़।

(7) अंग्रेजी भाषा की लेकिन पद्धति के प्रभाव के कारण देवनागरी लिपि में लगभग सभी अंग्रेजी विराम चिन्हों के लिए अलग-अलग लिपि चिन्हों की सुविधा की गयी है—. (पूर्ण विराम), , (अल्प विराम), ; (अर्ध विराम), ! (विस्मय चिन्ह), ? (प्रश्न चिन्ह), "" / ' ' (अवतरण चिन्ह) आदि।

(8) देवनागरी लिपि में अंकों के लिए दो प्रकार के लिपि चिन्हों की व्यवस्था है— १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०
1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

(9) देवनागरी लिपि में प्रत्येक वर्ण तथा अंक के लिए स्वतन्त्र लिपि चिन्ह की सुविधा है। किसी वर्ण के लिए एक से अधिक लिपि चिन्ह नहीं हैं।

(10) देवनागरी लिपि में ध्वनि का जो लिपि चिन्ह (रेखा चिन्ह) होता है और उसका जो उच्चारण होता है, उन दोनों में समानता बनी रहती है। इसका अर्थ यह है कि देवनागरी के लिपि चिन्हों की लिखावट उच्चारण के अनुकूल है। इस कारण से ही देवनागरी लिपि में लिखे गये शब्द में कोई अनुच्चरित ध्वनि नहीं नहीं होती। लिखावट में सभी उच्चरित ध्वनियाँ ही होती हैं।

(11) गुजराती लिपि के प्रभाव के कारण कुछ लोग नागरी लिपि शिरोरेखा के बिना लिखते हैं। गुजराती लिपि शिरोरेखा विहीन लिपि है। इसके विरुद्ध देवनागरी लिपि शिरोरेखा वाली लिपि है।

(12) देवनागरी लिपि में कम जगह में गति के साथ शब्द लिखने की सुविधा है। इसलिए यह लिपि गत्यात्मक तथा व्यवहारोपयोगी है।

(13) देवनागरी लिपि में सुपाठ्य लेखन की सुविधा है।

(14) भारत में बहुत पहले से कई भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। सीखने के लिए भी देवनागरी लिपि बहुत ही सरल है।

(15) उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही देवनागरी एक आदर्श लिपि है। इस कारण से ही स्वतन्त्र भारत में 'राष्ट्र लिपि' के रूप में देवनागरी लिपि को स्वीकार हुआ है।

5. देवनागरी की वैज्ञानिकता

कुछ विशेषताओं के आधार पर देवनागरी लिपि को एक वैज्ञानिक लिपि माना जाता है, वे विशेषताएँ इस प्रकार की हैं—

(1) लिपि की वैज्ञानिकता की दृष्टि से उसमें निश्चितता का होना महत्वपूर्ण होता है। देवनागरी लिपि में निश्चितता है, इसलिए वह वैज्ञानिक लिपि है। नागरी लिपि में ह्रस्व स्वरों (अ, इ, उ) के लिए और दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ) के लिए स्वतन्त्र-स्वतन्त्र लिपि चिन्ह हैं। साथ ही साथ अल्पप्राण अघोष व्यंजनों (क्, च्, ट्, त्, प्) के लिए, महाप्राण अघोष व्यंजनों (ख् छ् ठ् थ् फ्) के लिए,

अल्पप्राण घोष व्यंजनों (ग्, ज्, ड्, द्, ब्, ङ्, ञ्, ण्, न्, य्, र्, ल्, व्) के लिए, महाप्राण घोष व्यंजनों (घ्, झ्, ढ्, ध्, भ्, ह्) के लिए और ऊष्म व्यंजनों (श्, ष्, स्) के लिए भी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र लिपि चिन्ह हैं। इस प्रकार नागरी लिपि में स्वर ध्वनियों और व्यंजन ध्वनियों की निश्चितता है।

(2) लिपि में भाषा विशेष की सभी ध्वनियों के लिए लिपि चिन्हों का होना अर्थात् प्रत्येक ध्वनि के लिए लिपि चिन्ह का होना उस लिपि की वैज्ञानिकता होती है। इस दृष्टि से भी देवनागरी लिपि 'वैज्ञानिक लिपि' है, क्योंकि देवनागरी लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए लिपि चिन्ह है। इस सन्दर्भ में देवनागरी लिपि में रोमन लिपि जैसी अनिश्चितता नहीं है। रोमन लिपि में 'क्' ध्वनि के लिए 'K' (Kid=किड्), 'C' (Coat=कोट्), 'Ch' (Chemist=केमिस्ट), 'Q' (Queen=क्वीन) और 'X' (Box=बॉक्स) इतने लिपि चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन देवनागरी लिपि में 'क्' ध्वनि के लिए केवल एक ही लिपि चिन्ह 'क्' का प्रयोग किया जाता है।

(3) लिपि की वैज्ञानिकता की दृष्टि से यह भी महत्व का होता है कि जैसा लिपि चिन्ह होता है, वैसा ही उसका उच्चारण होना चाहिए। इस दृष्टि से भी देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है। देवनागरी लिपि में लिपि चिन्ह के उच्चारण में अनिश्चितता नहीं है। देवनागरी में तो लिपि चिन्ह के उच्चारण के बारे में विज्ञान के अनुकूल निश्चितता है। जैसे देवनागरी में 'ज्' लिपि चिन्ह का उच्चारण तालव्य 'ज्' ही किया जाता है, लेकिन रोमन में 'ज्' और 'ग्' ध्वनियों के उच्चारण के लिए एक ही लिपि चिन्ह 'G' का प्रयोग होता है—Gentle=जेन्टल्, Good=गुड्। देवनागरी लिपि में इस प्रकार की अनिश्चितता नहीं है, इसलिए नागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि के रूप में सीखने के लिए बड़ी सरल है।

(4) लिपि की वैज्ञानिकता की दृष्टि से उसमें संक्षेप में लिखने की सुविधा का होना महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से भी नागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है। रोमन लिपि में अंग्रेजी शब्द 'Moody' संक्षेप में लिखा नहीं जा सकता, लेकिन देवनागरी में यही शब्द संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है, 'मूडि'। इसलिए देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है।

(5) देवनागरी लिपि में स्वरों का उपयोग मात्राओं के रूप में भी किया जाता है। इस दृष्टि से भी देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है, जिसके स्वर और मात्राएँ इस प्रकार हैं—

स्वर लिपि चिन्ह—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

मात्रा लिपि चिन्ह— , ा, ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ

मात्राओं की सुविधा के कारण ही अंग्रेजी शब्द 'Moody' देवनागरी लिपि में संक्षेप में लिखा जाता है—म्+ऊ+ड्+इ=म्+ू+ड्+ि=मूडि।

(6) लिपि में ह्रस्व स्वर के लिए स्वतन्त्र लिपि चिन्ह और दीर्घ स्वर के लिए अलग लिपि चिन्ह का होना, उस लिपि की वैज्ञानिकता है। इस दृष्टि से भी देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है, क्योंकि देवनागरी लिपि में ह्रस्व स्वरों के लिए अलग-अलग लिपि चिन्ह (अ, इ, उ) हैं और दीर्घ स्वरों के लिए भी अलग-अलग लिपि चिन्ह (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ) हैं।

(7) विज्ञान की दृष्टि से लिपि की लिखने की पद्धति सरल और सुपाठ्य होनी चाहिए। इस दृष्टि से भी देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है। शिरोरेखा के साथ भी देवनागरी लिपि बड़ी सरलता से तथा शीघ्र गति से लिखी जा सकती है और वह सुपाठ्य बनी रह जाती है। इस कारण से ही देवनागरी लिपि टंकण और मुद्रण के लिए भी एक सरल और सुन्दर लिपि है।

इस प्रकार उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है। स्वतन्त्र भारत सरकार ने देवनागरी लिपि को कुछ सुधारों के साथ अधिक से अधिक वैज्ञानिक लिपि बनाया है और उसे राष्ट्र लिपि का सम्मान प्रदान किया है। राष्ट्र की राजभाषा हिन्दी देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है।

6. देवनागरी लिपि के दोषों का सुधार

स्वातन्त्र्यपूर्व तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल में देवनागरी लिपि को अधिक से अधिक वैज्ञानिक लिपि, आदर्श लिपि तथा निर्दोष लिपि बनाने के लिए उसके दोषों का सुधार करने के प्रयत्न हुए हैं, जिनसे देवनागरी लिपि अपनी त्रुटियों को मिटाकर एक परिपूर्ण लिपि बन गयी है। इस दृष्टि से स्वतन्त्र भारत की सरकार की ओर से भी महत्वपूर्ण प्रयत्न हुए हैं, क्योंकि स्वतन्त्र भारत के संविधान ने देवनागरी का स्वीकार 'राष्ट्र लिपि' के रूप में किया है। राष्ट्र लिपि के रूप में देवनागरी को अधिकाधिक सरल लिपि बनाने के उद्देश्य से उसके दोषों का सुधार निम्नलिखित रूप से किया गया है :

(1) टंकण की सुविधा के लिए देवनागरी को अधिक सरल बनाने के प्रयत्न में 'अ' लिपि चिन्ह को मूल स्वर के रूप में और अन्य स्वरों को मात्राओं के रूप में स्वीकार करने का और फिर मूल स्वर 'अ' के साथ मात्राओं को जोड़कर अन्य स्वरों के प्रयोग का सुधार किया गया है। इसलिए 'अ' मूल स्वर है और अन्य स्वरों की मात्राएँ इस प्रकार हैं—ा (आ), ि (इ), ी (ई), ु (उ), ू (ऊ), े (ए), ै (ऐ), ो (ओ), ौ (औ)। मूल स्वर के साथ मात्राओं को अन्य स्वरों के प्रयोग के लिए टंकलेखन में इस प्रकार सुधार किया गया है—अ, आ, अि, अी, अु अू, अे, अै, अो, अौ।

(2) संयुक्त व्यंजन लिखने की दृष्टि से देवनागरी लिपि में ऊपर-नीचे भी लिखे जाने का दोष था। उस दोष का सुधार इस प्रकार किया गया है—

(क) दाहिने पाई वाले व्यंजनों की पाई हटाकर उनको संयुक्त व्यंजन के योग्य रूप दिया जाय—जैसे ग→ग, ख→ख, घ→घ, च→च, ज→ज, झ→झ, ञ→ञ, ण→ण, त→त, द्य→द्य, न→न, प→प, व→व, भ→भ, म→म, य→य, ल→ल, व→व, श→श, ष→ष, स→स।

(ख) मध्य पाई वाले व्यंजनों की पूँछ का लटकता भाग हटाकर उनको संयुक्त व्यंजन के योग्य रूप दिया जाय—जैसे क→क (पक्व), फ→प (मुफ्त)।

(ग) गोल व्यंजनों के नीचे हलन्त चिन्ह लगाकर उनको संयुक्त व्यंजन के योग्य रूप दिया जाय—जैसे ङ→ङ् (वाङ्मय), छ→छ्, ट→ट् (चिट्ठी), ठ→ठ् (सुपाठ्य), ड→ड् (गड्ढा), ढ→ढ्, द→द् (पद्म), र→र् (कार्य→कार्य), ह→ह् (वाह्य)।

(3) देवनागरी लिपि में कुछ ध्वनियों के लिए एक से अधिक लिपि-चिन्हों का प्रयोग करने का दोष था, जिसका सुधार करके सरल लिपि के लिए योग्य लिपि-चिन्ह का स्वीकार किया गया। जैसे अ—अ, अ—आ, ओ—ओ, अ—औ: इस दोष के सुधार के लिए केवल 'अ, आ, ओ, औ' इन लिपि चिन्हों का ही स्वीकार किया गया। झ—झ: इस दोष के सुधार के लिए 'झ' लिपि चिन्ह का स्वीकार किया गया। ण—ण: इस दोष के सुधार के लिए 'ण' लिपि चिन्ह का स्वीकार किया गया। ृ (क्रम)—र्म (कर्म)—ष्ट्र (राष्ट्र)—ृपा (कृपा)—र: इस दोष के सुधार के लिए केवल 'र' लिपि चिन्ह का स्वीकार किया गया—क्रम→करम, कर्म→कर्म, राष्ट्र→राष्ट्र, कृपा→किरपा, रजनी। ल—ल: इस दोष के सुधार के लिए 'ल' लिपि चिन्ह का स्वीकार किया गया। श—श: इस दोष के सुधार के लिए 'श' लिपि चिन्ह का स्वीकार किया गया।

(4) देवनागरी लिपि में 'र' और 'व' इन दो लिपि चिन्हों के योग से 'ख' यह एक लिपि चिन्ह प्रयोग में लाया जाता है। इससे 'खाना' इस शब्द के उच्चारण में दोष यह उत्पन्न होता है कि इसका उच्चारण 'खा+ना' इस रूप से या 'र+वा+ना' इस रूप से करना चाहिए? इस दोष का सुधार करने के लिए 'खा+ना' ऐसा ही उच्चारण हो, इसलिए 'र' लिपि चिन्ह का निचला हिस्सा 'व' लिपि चिन्ह की रेखा के नीचे के हिस्से के साथ जोड़ने को स्वीकार किया गया—ख।

(5) देवनागरी लिपि में यह भी दोष है कि कुछ लिपि चिन्ह 'थ, ध, भ, म' इस तरह लिख जाने से सहज समझ में नहीं आ पाते। इसलिए इस दोष का सुधार करने के उद्देश्य से इन लिपि चिन्हों के इस तरह के लेखन को स्वीकार किया गया है—थ, ध, भ, म।

(6) देवनागरी लिपि में 'क्ष, ज्ञ, त्र, श्र, द्य, ह्य' इन संयुक्त व्यंजनों को स्वतन्त्र अक्षर जैसा लगने का दोष है। इस दोष का सुधार करने के लिए इन संयुक्त

व्यंजनों में जिन दो व्यंजनों का मेल बना रहता है उनको स्पष्ट रूप से लिखने को इस प्रकार स्वीकार किया गया—क्ष=क्ष/क्श, ज्ञ=ग्य/ज्ञ, त्र=त्र, श्र=श्र, द्य=द्य, द्म=द्म।

(7) अनुस्वार के बदले अनुनासिक पंचम वर्णों का संयुक्ताक्षर के रूप में प्रयोग करने से शीघ्र गति से देवनागरी लिपि लिखने में बाधा पड़ने का दोष आता है। इस दोष का सुधार करने के लिए अब अनुनासिक पंचम वर्णों के स्थान पर अनुस्वार के प्रयोग को ही स्वीकार किया गया है—जैसे अङ्क, गङ्गा के स्थान पर 'अंक, गंगा' का प्रयोग हो रहा है। चञ्चल, डण्डा, तन्तु, पम्पा के स्थान पर 'चंचल, डंडा, तंतु, पंपा' के प्रयोग को स्वीकार किया गया है।

(8) जिस 'इ' की मात्रा (f) का उच्चारण व्यंजन के बाद में होता है, लिखने में व्यंजन से पहले उस मात्रा का प्रयोग एक प्रकार का दोष ही है। इस दोष को सुधारने के लिए कई सुझाव आ गये जिनमें से एक को इस प्रकार स्वीकार किया गया था—f=ि। परन्तु यह सुधार भी अब प्रयोग में नहीं रह पाया।

(9) शीघ्र सुपाठ्य तथा सरल लिखने की दृष्टि से देवनागरी लिपि में संख्या चिन्हों के बारे में दोष थे, जिनका सुधार इस प्रकार किया गया—५→5, ६→6, ७→7, ८→8, ९→9। अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग की दृष्टि से देवनागरी लिपि में संख्या चिन्हों को इस प्रकार स्वीकार किया गया है—1,2,3,4,5,6,7,8 9,0।

इस प्रकार उपर्युक्त दोष सुधार के आधार पर देवनागरी लिपि अधिक से अधिक सरल, सुपाठ्य तथा शीघ्र गति से लिखने योग्य आदर्श लिपि बन गयी।



नाम तथा पद—डॉ० ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़
एम. ए., पी-एच. डी.

प्रपाठक एवं अध्यक्ष, स्नातक तथा स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी-413411, जि० सोलापुर (महाराष्ट्र) सोलापुर जिले में पिता काशीनाथ व माता लक्ष्मीबाई के देहाती परिवार में दि० 25 सितम्बर 1938 को जन्म।

लेखन—1. आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व, 2. साहित्य रूप : शास्त्रीय विश्लेषण, 3. उपयोगी हिन्दी व्याकरण, 4. भारतीय काव्य-सिद्धान्त, 5. पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्त और विविध वाद, 6. हिन्दी भाषा विज्ञान परिचय (प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रम में सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है), 7. ध्वत्व (हिन्दी कविता-संग्रह), 8. गीत-गुंजन (मराठी कविता-संग्रह), सह-सम्पादित मराठी कहानी-संग्रह, 9. नवरंग, 10. रंगधारा/पत्र-पत्रिकाओं में विविध लेख प्रकाशित, आकाशवाणी, पुणे केन्द्र से रेडियो नाटक तथा साहित्यिक कार्यक्रम प्रसारित।

विशेष—गत 29 वर्षों से छात्रप्रिय, वक्तृतानिपुण, अध्ययनप्रिय प्राध्यापक/पी-एच. डी. उपाधि के सफल मार्गनिदेशक/सदस्य, हिन्दी अध्ययन मण्डल, वाङ्मय विद्या शाखा, विद्वत सभा, विधि सभा, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की ओर से गुवाहाटी (आसाम) में अहिन्दी भाषाभाषी हिन्दी लेखक-शिविर में सहभाग।